

यक्षों की भारत को देन

सुसुभाञ्जलि प्रकाशन के प्रमुख इतिहास ग्रथ
 ए रिलिजस हिस्ट्री आव ए श्पेण्ट इण्डिया (दो एण्डो म)
 श्रीराम गोयन
 बौटिल्य एण्ड मेगास्थेनिज
 श्रीराम गोयन
 ह्य एण्ड बुद्धिजम
 श्रीराम गोयन
 ए हिस्ट्री आव इण्डियन बुद्धिजम
 थोगम गोयन
 स्मात रिलीजस ट्रडीशन
 बी एस पाठक
 जन यक्षज
 ज० पी नर्मा
 मेडीवल भक्ति भूषण
 सुस्मिता पाण्ड
 विंग चन्द्र एण्ड द मेहरीली पिलर
 (स) एम सी जोशी
 इण्डिया एज नोन टु हरिभद्र सूरी
 भार० एम शक्ता
 इवोनोमिक् स्टेट्स आव वुमेन इन ए श्पेण्ट इण्डिया
 सविता विश्नीई
 गुप्तकालीन अभिलेख
 श्रीराम गोयन
 प्राचीन भारत का इतिहास (तीन खण्डा मे)
 श्रीराम गोयन

शोध प्रकाश्य ग्रथ

ए हिस्टोरिकल एण्ड कल्चरल स्टडी आव दि नाट्यशास्त्र आव भरत
 अनपा पाण्ड
 वराहमिहिर एण्ड हिज टाइम्स
 अजयमिह शास्त्री
 पोलिटिकल हिस्ट्री इन ए चर्जिंग क्लड
 (स) जी सा पाण्ड
 भक्ति काव्य की परम्परा मे मीरा
 रमा भागव
 फणीश्वरनाथ रेणु का कथा ससार
 मूरज पानीवाल

यक्षो की भारत को देन

अरण

राजस्थानी ग्रन्थालय, जोधपुर

- राजस्थानी भाषाशास्त्र
 यह एक एक पुस्तक है
 जिसकी कीमत १०००

प्रकाशक १९७६

एक ही पृष्ठ पर

© १९७६

कुल एक ही पृष्ठ पर प्रकाशक के द्वारा प्रकाशित एक
 विषय पर ही प्रकाशक द्वारा प्रकाशित

प्रिय पिता

श्री मदन मोहन 'निष्काम'

जिनके प्रास्ताहन से मैंने लिखना जाना

को समर्पित

आरम्भ

इस पुस्तक के बीज का वपन आज से पचास वष से पूव हो हा गया था जब एक बालक ने दिवाली के दिन पिता से पूछा था— दिवाली को लक्ष्मी और गणेश की पूजा क्या करते हैं लक्ष्मी और विष्णु की करनी चाहिये, वे पति पत्नी है ।

पिता संस्कृत के विद्वान् थे उहान जाई सी एस प्रतियोगिता मे वदिक संस्कृत विषय लिया था । उहोने अरुण को उत्तर दिया— मैने जितना पढा है, उसमे इस प्रश्न का उत्तर नहीं है । है तुम्हारी शका विल्कुल वाजिब । जाग चलकर खूब पढना और इस शका को दूर करने का प्रयास करना ।

डाट पड जाती तो शका की असमय हत्या हो जाती बढावा मिला तो समय समय पर मस्तिष्क मे उमडती घुमडती रही । प्रोत्साहन मिला तो प्रश्नो के बगूल उठते रहे और पनाई की वर्षा से उह शा त करने का प्रयास करता रहा ।

खजुराहो मे गणेश और लक्ष्मी की आलिङ्गित मूर्ति ने फिर इस हवा दी । मथुरा मे पाई कुबेर और कुबेर की पत्नी लक्ष्मी की यक्ष प्रतिमा न इसे एक नया आयाम दिया ।

पूजा के विषय मे अय प्रश्न उठा था क्या गाँव क्या नगर, क्या शीतला क्या होलिका वृक्षा के चारो ओर घूमकर पूजा करना, उन पर पानी, फूल और अन्न चढाना । पहाड हा था मदान किसी किसी विशाल वृक्ष की टहनियो पर रंग विरगे कपडो के टुकडे बधे दिखाई दे जाते थे । बौद्ध चत्या पर दिखाई दिये मुस्लिम मजारो पर ।

फिर लोक मे फली बीर पूजा से सामना हुआ । लोक मे पूजित पचवीरो के नाम पता चले । फिर पाँच वृष्णि बीरा की पूजा का पुस्तका से पता चला । साथ ही उत्तर पश्चिम मे फली मुस्लिम पचपीर की पूजा का अनुभव हुआ । क्या मुस्लिम जगत मे भारत के अतिरिक्त अयन वही पीरो की पूजा होती है ? क्या उनकी मजत मे कपडे या तागे बाधे जाते है यक्षपूजा के समान ? क्या बीर ही पीर मे नहा वल गये ? मेरठ मे ही कई पीरो के मजार हैं— शाहपीर भण्ड पार, उठान पीर नौगजा पीर । दत्त कथाओ मे ये सब विशाल शरीर वाले थे— क्या यह उनका यक्ष मूल नहीं दिखाता ? जमाष्टमी के दिन अम्मा घो से भर हाथ का निरजन पीर का थापा मारती थी और वृष्ण की पूजा होती थी । लखनऊ के आस पास आज भी कसम उठाई जाती हैं— मगलू पीर को दुहाई, हरसू पीर की दुहाई ।

चत्प, मूर्ति, मन्दिर सबसे पहले यथा व बनाय मिलन हैं । कुबर के चार हाथ है, वही गणेश के ह विष्णु व हैं । गिल्य म समान वस्तुए उनक हाथो म दिखाई गई हैं । वही वही वृष्ण का चक्र विष्णु व हाथ म आ जुडा है । चत्प और स्तूप भी बुद्ध और महावीर स पूव व है । व जब प्रवचन करन जान थे तो चैत्या म ठहरत थ । बुद्ध ने मरने के बाद पुरान समय के भवन के समान अवसथ स्थान बनान का कहा था । बौद्ध स्तूपा म बीचो बीच वृक्ष का तना गाडा जाता था और चारों ओर प्रश्रिणा पय बनाया जाता था यथा वृक्ष-पूजा व समान । पत्थर और इटें आज तक स्थिर हैं लेकिन लकड़ी लुप्त हो गई है । हर हिन्दू मन्दिर म स्तम्भ जिस पर ध्वज फहराता रहता है, क्या वृक्ष-पूजा का ही परिवर्तित रूप है ?

यही नहीं, अय प्रश्न भी समय-समय पर कौश्लत रह । बृहस्पति वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि के दाडियाँ हैं नारद गौतम बुद्ध, महावीर के क्या नहीं ? एक, दो तीन या प्रथम द्वितीय तृतीय के बाद दो के लिय चारह बाइस वत्तास क्या ? क्या अक्कड बक्कड से कुछ सम्बन्ध है ? बट्टीनाथ से आगे माणा गाँव (अलकमदा) के सिर पर जो कलास का प्रतिरूप दिखाई दिया क्या वहा असली कैलास है ? अजीबोगरीब, बिखरे बिखरे ।

मैन इन प्रश्ना का उत्तर ढटना आरम्भ किया । उसका फल है यह पुस्तक । विश्लेषण सश्लेषण और समन्वय करके ऐसा लगता है कि यह मैन अंतिम शब्द कह दिया है । परन्तु जानता हू कि यह सोचना आकाश कुमुमवत् है । हो सकता है यह परिधम भी प्रोटियन (यूनाना दबता प्राटियस व समान इतिहास भी अपना रूप बदलता रहता है) सिद्ध हो सकता है । यह अत नहीं आरम्भ है । इस पुस्तक म दिए सुझावो पर अयतम गवपणा आवश्यक है ।

विषयानुक्रमिका

भूमिका— डा० श्रीराम गोयल

XIII—XXVII

१ भारत में प्रजाति और जाति

१-६

यूरोप एशिया का पश्चिम में निकला भाग १, सबसे प्राचीन मानव १ आय वाहर से आय २ 'आय जाति' के सिद्धांत के विरुद्ध मैक्समूलर का कथन २, द्रविडों की देन २, जनजातियों का टकराव २ प्रजाति ३ भारत में अनेक प्रकार के जन ४, जनजाति ४, टोटम ४, प्राचीन साहित्य में जनजातियाँ ५ नाग जाति ५, यक्ष जाति ५, आवागमन ५, भारत में अस्ती ६ ३१०२ ई० पू० की भयंकर प्रलय ६

२ प्राचीन तिथिक्रम

७-११

भारत का प्राचीन तिथिक्रम ७ उसके आधार— चंद्रगुप्त मौर्य का राज्यारोहण ७, उपनिषद् और ब्राह्मणों में वर्णित वंश सूची ७, पुराणों में बब्रुवत मनु या प्रलय का समय ८ बबिलोनिया के रिवाज ८, आइने अकबरी ८ मलाबार का कोल्लम आण्डु ८, 'सुमतित्र' का प्रमाण ९, वेद-वेदांग का समय ९, अठारहवीं सदी का प्रमाण १० मय सभ्यता का कण्ठर १० ज्यातिष का दूसरा मत १० लोहे का मिलना १०, डायनासियस का प्रमाण १० प्राचीन कात क्रम ११

३ सुसंस्कृत और समृद्ध यक्ष जाति

१२-२७

यक्ष जाति की उत्पत्ति १२, यक्षों की उत्पत्ति १३ बर्दिक ग्रन्थों में यक्षा का वर्णन १३ बौद्ध साहित्य में यक्ष १४, महाकाव्यों में यक्ष १५ स्वरूप वर्णन १६, यक्ष जाति के अन्य नाम १७, ब्रह्मा १७ महत् १८, राज १८, महाराज १९ अलका २० यक्षों की विशेषताएँ २०, अमृत २० सुवर्ण २०, तुन्दियल सेठ २१, गगन २१ यक्ष मूर्तियाँ २२, यक्ष पूजा २२ चतुर्धर और आयतन २२ यक्षा की सम्पन्नता २४ मानसरोवर और रावण हृद २४, यक्ष, रूप बदलने वाले २५, गुह्यपति २६, निर्माता २६ यक्षों की दुबलता २६ यक्षों का विलास २६, यक्ष आज २७

कुछ परिशिष्ट

२८-४२

यक्ष कौन है (केनोपनिषद्) २८, यक्ष पर डा हजारीपमान द्विवेदी के विचार २९, महाकाव्यों में वर्णित जनजातियाँ ३० बौद्ध ग्रन्थों में वर्णित जनजातियाँ

भूमिका

यथा की उत्पत्ति एवं भारतीय संस्कृति एवं धर्म में उनका स्थान प्राच्य-विद्या विशारदा में पर्याप्त चर्चा का विषय रहा है। एच. जकोबी, लाल बारी, पूर्ण जे. पी. एच. फोगल, जे. पगुसन, ए. के. कुमारस्वामी, जीमर तथा डी. डी. कसाम्बी के नाम इस प्रसंग में सार उल्लेख्य हैं। इनमें कुमारस्वामी का ग्रन्थ 'यथा' सर्वाधिक अध्येय है एवं अनद्विषयक साहित्यिक तथा पुरातात्विक माध्यम का साक्षात्कार एवं विषय अध्ययन प्रस्तुत करता है। कुमारस्वामी पगुसन के इस मत में विश्वास करते थे कि यथा और नागा की उपासना जा उबरता और दृष्टि की शक्तियों का देवीकरण थे, भारत की प्रागयुगीन आर्योत्तर जातियों में प्रचलित थी। उनका कहना था कि हिन्दू धर्म के अनेक मूल तत्त्व प्रारम्भिक वैदिक साहित्य में नहीं मिलते। मन्वप्रथम ब्राह्मण और उपनिषद् में सत्त्वावाद, कामवाद और भक्ति आदि अवधारणाओं का आविर्भाव होता है और यही बात सामान्य रूप से शिव, कृष्ण यथा, नागा असह्य देविया तथा विशिष्ट प्रदेशों में पूजित अनेक देवताओं पर लागू होती है। इसमें कुमारस्वामी ने निष्कर्ष निकाला है कि ये विचार और देवी देवता जिनका प्राकट्य उत्तर वैदिक काल में हुआ, प्रकृत्या और मूलतः वैदिक न होकर प्रागय और आर्योत्तर थे।¹

कुमारस्वामी का उपर्युक्त मत आजकल बहुप्रचलित और बहुमान्य है। ऐसी स्थिति में अरुणजी का प्रस्तुत ग्रन्थ यथा इतिहास के अध्ययन को नई दिशा प्रदान करता है। अरुणजी ने यथा की प्राचीन भारत की एक प्रमुख जाति और विशिष्ट यथाओं को लोक पूजित देवता माना है और इस दृष्टि से उनकी भारतीय संस्कृति का देन का अध्ययन किया है। उनकी कुछ मान्यताओं के विषय में ग्रन्थ विद्वानों को शक हो सकती है परन्तु इसमें किसी को शक नहीं हो सकती कि उनका विवेचन प्रायः सतक और यथा इतिहास का शालोचित करने वाला है।

अरुणजी भाषा में यथा (पालि 'यथ' तथा प्राकृत 'यथ') का पर्यायवाची शब्द नहीं मिलता। श्रीमती रीज डेविडस के अनुसार इसका निकटतम पर्याय 'जिन' (geni jinn) है।² यथा शब्द की व्युत्पत्ति भी अनिश्चित है। कथन में इसको यज धातु (पूजा करना) से निष्पन्न किया है। हिलेब्रांत ने प्रयथा (सम्मानित करना) का सम्बन्ध वैदिक 'यथा' से जोड़ा है। वह यथा का अर्थ सगीतज्ञ भी मानते

1 यथा, 1 पृ. 3

2 बुक ऑफ इण्डियन स्टडीज 1 | 1957 पृ. 262

थे। कुमारस्वामी के अनुसार 'यज' शब्द का सम्बन्ध 'अथर्ववेद' में उल्लिखित 'यक्ष' उच्चर से हो सकता है और यह भी सम्भव है कि 'यक्ष' शब्द और यक्षा की कल्पना होना ही प्रायःतः हो।¹ वायु (9 29) और ब्रह्माण्ड (3 7 60) पुराणा में यक्ष शब्द का अर्थ 'क्षी घातु' को माना गया है जिसका अर्थ 'क्षीण करना या विनाश करना' है। कुछ प्राचीन ग्रन्थों में कहा गया है कि यक्षा को वश्यप न उपासना के लिए उत्पन्न किया था। कुछ ग्रन्थों के अनुसार वे प्रचेता के पुत्र थे। पद्म पुराण के अनुसार उन्हें ब्रह्मा ने अपनी मन सामर्थ्य से उत्पन्न किया था। वायु और ब्रह्माण्ड पुराणा में कहा गया है कि ब्रह्मा से उत्पन्न होने पर यक्षा ने जला को क्षीण करने की चेष्टा की थी इसलिये वे यज्ञ कहलाये। त्रिपुण्ड्र पुराण (1 5 59) में यक्षा को प्रजापति से उत्पन्न माना गया है। रामायण (उत्तराकाण्ड सर्ग 4) में कहा गया है कि प्रजापति ने जला का निर्माण करके उनकी रक्षा के लिए कुछ सत्वों का निर्माण किया। उन्होंने ब्रह्मा से पूछा 'हम क्या करें?' ब्रह्मा ने कहा 'रक्षध्वम'। इसके उत्तर में कुछ ने कहा 'वयं यक्षाम' और कुछ ने कहा 'वयं रक्षाम'। इनमें 'वयं यक्षाम' कहने वाले यक्ष कहलाये (यक्षाम इति यक्षवत् यक्षा एव भवतु च) और वयं रक्षाम कहने वाले रक्षसः। कुमारस्वामी ने यक्षाम का अर्थ खाने वाले माना है परन्तु वा० श० अग्रवाल का कहना है कि भोजन के अर्थ में यक्ष घातु ता है यक्ष नहीं। पुराण-दिग्गजों में एक यक्ष घातु है परन्तु यह वाद की जान पड़ती है।²

यक्ष शब्द के कई पर्याय प्राचीन काल में प्रचलित थे। इनमें महत्तम पर्याय ब्रह्म है। महाभारत में यक्षमह के लिए ब्रह्ममह शब्द का प्रयोग अनेकत्र मिलता है। आज भी नाक में यक्ष पूजा का और बरह्म पूजा कहा जाता है। अथर्ववेद में अमृत से घिरी और विशालकाय यक्षा से संकुल ब्रह्मपुरी का उल्लेख है। अमृत में सम्मिश्रित होने के कारण इस नगरी को अपराजिता कहा गया है। महाभारत के एक श्लोक में राजा (= यक्ष) के अवस्थ ब्रह्मपुर का उल्लेख है।³ रामायण में यक्षत्व और अमरत्व पर्यायवाची माने गये हैं।

यक्षा की एक सत्ता राज भी थी। इसीलिये उनके राजा कुवेर का महाराज कहा जाता था और कुवेर को दी जान वाली बलि को महाराज बलि। पाणिनि के अनुसार महाराज एक देवता था जिसके भक्त महाराजिक कहलाते थे। पालि साहित्य के अनुसार चार यक्ष चार दिशाओं के लोकपाल (चत्वारो महाराजानां) कहलाते थे—गणधरपति धतराष्ट्र पूव दिशा का कुम्भाण्डराज विरूढक दक्षिण दिशा का नागराज विरूपाक्ष पश्चिम दिशा का तथा यक्षेश्वर

1 पद्म 2 पृ 2

2 अग्रवाल का श प्राचीन भारतीय लोकधर्म पृ 120

3 अग्रवाल का श पूर्वो पृ 124

वैश्वण उत्तर दिशा का । परंतु वास्तव में ये चारो ही यक्षा के रूप में पूजे जाते थे । भरतुत वेदिका अभिलेखों में इनको यक्ष ही बताया गया है ।

वदिक और वेदोत्तर साहित्य में सुंदर, अमृत अपूर्व और महद्भूत आश्चर्य— यह यक्षा की सर्वस्वीकृत कल्पना है । 'ऋग्वेद में मरुदेव का यक्षा के समान सुंदर बताया गया है । 'अथर्ववेद में यक्षों के समान (यक्षदृश) युवकों की चर्चा है । परवर्ती साहित्य में किसी सुंदर पुरुष या स्त्री को उसकी सुंदरता के कारण यक्ष या यक्षी मानने की बात प्रायः आती है । महाभारत के यक्ष युधिष्ठिर सवाह में यक्ष का महावाय, ताड वृक्ष के समान ऊँचा, पवतसम महाबली अघ्न्य (जिसे मृत्यु न देवा सके) तथा अग्नि और सूर्य के समान देदीप्यमान बताया गया है । शुंग कुपाण काल की विशांत यक्ष प्रतिमाओं में भी उनका ऐसा ही चित्त्व अंकित है ।

महाभारत में कहा गया है कि पितामह ब्रह्मा न वैश्वण कुंवर को अमरत्व धनेशत्व और लोकपालत्व—ये तीन वरदान दिये थे (आरण्यक पर्व, 258-15) । उद्योग पर्व में इस अमृत को एक प्रकार का पीना मद्य बताया गया है जो घड़े में बंद है और सप जिसकी रक्षा करते हैं । इस पीकर मत्स्य पुरुष अमर हो जाता है, वृद्ध युवा और अधा चक्षुवान् । यक्ष मूर्तियों में उनके बाएँ हाथ में अमृतघट प्रायः लिखाया जाता है । जन्म की साधना करने वाले पुजारीगण लोगों को इस अमृत का प्रलाभन दत्त थे । बौद्ध यथा में कुंवर का जन्म देवता सम्भवतः इसी लिये कहा गया है क्योंकि उसके पास जन्म नामक गुह्यविद्या का ज्ञान था ।

यक्षों का घनिष्ठ सम्बन्ध राक्षसों गंधर्वों गुह्यकों और विद्याधरों आदि से बताया गया है । इन सब का वास उत्तर दिशा में था । इन सभी के पास अतिमानवीय शक्तियाँ बताई गई हैं । जन घम में यक्षों राक्षसों किन्नरों किंपुरुषों और गंधर्वों आदि की गणना व्यतर देवताओं में की गई है । बौद्ध और ब्राह्मण ग्रंथों में भी ऐसे देवताओं की सूचियाँ मिलती हैं । तपण और धाद पर प्रयुक्त मंत्र में यक्षों सहित अधिकांश व्यतर देवता अनुसूचित हैं (देवा यक्षास्तथा नागा गंधर्वाप्सरसो सुरा । क्रूरा सपा सुपणाश्च तरव जिह्मगा खगा । विद्याधरा जलाधारास्यवाकाशगामिन) ।

राक्षसों की उत्पत्ति प्रायः यक्षों के साथ मानी गई है । वे मानवों के शत्रु और अत्यंत क्रूर बताये गये हैं । यक्ष सामान्यतः मानव शत्रु नहीं होते यद्यपि दुष्ट यक्ष और दयालु राक्षसों के उदाहरण सर्वथा अज्ञान नहीं हैं । यक्षा और राक्षसों दोनों को पुण्यजन कहा गया है और यह शब्द 'अथर्ववेद में कुंवर के अनुगामियों के लिये आया है । गुह्यक भी कुंवर के अनुगामी कहे गये हैं । वे गुहावासी और निधिया के रक्षक हैं । देवी सगीतज्ञ किन्नर (अश्वमुखी नर) तथा

विपुण्य (नरमुखी अश्व) भी कुबेर के अनुगामी हैं। विद्याधर यथा के निकटतम हैं। वस्तुतः जो स्थान पालि और प्रारम्भिक संस्कृत साहित्य में यथा का है वही ईसवी सन् की प्रारम्भिक शतिका के संस्कृत साहित्य में विद्याधरो का दिखाई देता है। व अपन राजाओं और चक्रवर्तियों के अधीन उत्तर दिशा में पवत प्रवेश व नगरो में रहते हैं। उनका मनुष्य से सम्पर्क रहता है और दोना में विवाह सम्बन्ध भी होते हैं। इसमें विपरीत यक्षो और मानवो के विवाह सम्बन्ध (जसे सिंहल में विजय का यक्षिणी कुबेणी से विवाह) विरलत ही उल्लिखित हैं। वे कामरूपी इच्छारूपधारी तथा आकाशगगन में समथ बताय गये हैं। विमलसूरि व 'पद्म चरित' में राक्षसा, वानरो और यक्षो को विद्याधरो की शाखायें बताया गया है।¹

यथा का राजा कुबेर है। उसका दूसरा नाम वश्रवण (पालि वेस्सवन) है। वह वित्तेश धनेश यशेश आदि कहा गया है। वह नवनिधियो का स्वामी तथा उत्तर दिशा का लोकपाल है। 'अथर्ववेद' में वह पुण्यजनता या इतरजनो का स्वामी बताया गया है। कनासिकल संस्कृत साहित्य में पुण्यजन शब्द का प्रयोग यक्षो और राक्षसो के लिये हुआ है। 'तत्तिरीय आरण्यक' में उसके आश्रमजनक वाहन (परवर्ती पुष्पक यान) की चर्चा है। परवर्ती साहित्य में राक्षसो का स्वामी उसके भाई गवण को बताया गया है और स्वयं कुबेर को यथा गुह्यको और विघ्नरो आदि का। रामायण में वह प्रजापति के पुत्र पुलस्त्य का पौत्र और विश्रवस का पुत्र है।

कुबेर की राजधानी अन्कापुरी है और चक्रवर्ष उसका रमणीय उद्यान। वह नरवाहन नरधर्मा और 'श्रीद' है। उसके पुत्र का नाम नलकुबेर है जिसकी स्त्री रम्भा के ऊपर रावण ने कुण्टि डाली थी। वायु पुराण (41 26) में कुबेर का सम्बन्ध कलाश से बताया गया है। विष्णु पुराण में कहा गया है कि सुमेरु व पवत अन्तराला में यक्ष ब्रीडा करते हैं। इसी ग्रंथ में अथर्व (2 5 4) यथा को पातालवासी कहा गया है।

यक्षा की ब्रह्मपुरी में सुवर्ण कौश होने का उल्लेख है। उत्तर दिशा में सुवर्ण पवत मेरु है। जाम्बुनद सुवर्ण पपीलिक सुवर्ण तथा अष्टापद सुवर्ण— ये सब उत्तर दिशा में ही होते हैं। कुबेर शख, पद्म आदि निधिया का स्वामी है और कुषाणकालीन मूर्तियों में लक्ष्मी कुबेर पत्नी के रूप में अंकित है। दीपावली का पुराना नाम यक्षरात्रि था उसमें कुबेर और लक्ष्मी की पूजा होती थी। दान में दीपावली (यक्षपूजा) के अवसर पर लक्ष्मी गणेश के साथ पूजित होने लगी। सुवर्ण के कारण ही कुबेर के वस्त्र पीले चमकते हैं। यही कल्पना विष्णु और कृष्ण के पीताम्बर में आई। अथर्ववेद में सहस्रवीयमणि की महिमा का वर्णन

आता है। यह निब्यमणि युधिष्ठिर के कोश में थी। सम्भवतः मणिभद्र यक्ष उसका स्वामी माना जाता था। वह बहुत ही लोकक्याजी में यक्षेश्वर के रूप में कुवेर का स्थान ले लेता है। 'रामायण' (7 15) में भी उसका उल्लेख है।

यस शब्द का प्रयोग 'ऋग्वेद' 'अथर्ववेद' एवं ब्राह्मणों तथा उपनिषदों में अनेकत्र मिलता है।¹ प्राचीनतर ग्रंथों में उनके प्रति द्वेषभाव मिलता है— एक ओर उनके प्रति भय और घृणा की भावना है और दूसरी ओर सम्मान की। वे बहुरूपियों के मन में आश्चर्य भी पैदा करते हैं और भय भी। कुछ मिलाकर उनके प्रति आश्चर्य रहस्यमयता, अलौकिकता, अजेयता आदि भावनाएँ जुड़ी हुई हैं। उनके प्रति यह द्वेषभाव भारतीय जनमन में परवर्ती युगों में बना रहा और आज भी बना हुआ है। 'ऋग्वेद' में यक्षों का सुन्दर, महान् व अद्भुत स्वरूप वाला परंतु आर्यों के अपाँ दैवताओं से हानतर माना जाता था। एक मात्र म ऋषि विश्वास प्रकट करता है कि जिनकी बुद्धि अविकसित होती है वही यक्ष जैसे अद्भुत आश्चर्यभय दबो में विश्वास करते हैं। एक अर्ध मात्र म अग्नि से अनुराध किया गया है कि यदि हमारा कोई पड़ोसी (अनाथ जन) यक्षसदन में जाये तो हे अग्नि तुम वहाँ छिपकर मत जाना। अग्नि! यक्ष में सम्बन्ध मत रखो," 'हे सर्वशक्तिमान् देवता कहीं हम यक्ष न मिल जाए,' 'यस्यदृषो यस्य को देख पाना क्याकि यक्ष अदृश्य है'— ऐसे वाक्यों से भी लगता है कि आर्य यक्षों से भयभीत रहते थे। लेकिन इसके साथ यह भी स्पष्ट है कि वे यक्षों से अत्यधिक प्रभावित भी थे। 'ऋग्वेद' के एक मंत्र में कहा गया है कि यक्षान् अग्नि इतना शक्तिशाली है कि लोग उसे यथा वा अयस्य माननं लग थ। 'अथर्ववेद' में 'एक महान् यक्ष, सृष्टि के मध्य जलतार पर तपसुनिरत, उसी में, सत्र देवता निहित, जैसे तने में पेड़ की शाखाएँ — की चर्चा है। 'बृहदारण्यक उपनिषद्' में कहा गया है कि जो महान् यस्य को आदिजन्मा मानता है वह विजय प्राप्त करता है। 'बिन्दु उपनिषद्' में यस्य रूपी ब्रह्म देवताओं का गव खव करत हैं। 'मन्त्रो उपनिषद्' में भी यक्ष देव-सूची में गिनाय गये हैं।

पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में गुह्यकपनि वंशवर्णन का कई बार उल्लेख किया है। वह उसे शिव के साथ लौकिक देवताओं की कोटि में रखते हैं और पिताद्वेष का उमका गण बताते हैं। पिशाचों से पतञ्जलि का आशय स्पष्टतया से है। वे वंशवर्णन की प्रतिमाओं का तो उल्लेख करते ही हैं, धनपति नाम से उनका प्रासादा (मन्दिर) की चर्चा भी करते हैं जहाँ उपासकों की उपस्थिति में

¹ कुमारव्यासी यज्ञ 2 पृ 1

² अथर्ववेद पूर्वो पृ 120-21

भृदग शख, तूणव आदि बजाये जाते थे ।

महाकाव्यों में यक्षों की चर्चा में उपयुक्त भक्ति भाव भी मित्रता है और कहीं-कहीं उनकी अवमानना भी की गई है । 'रामायण' के अनुसार रावण की लका में यक्ष भी वास करते थे । राक्षसी ताड़का जिसका राम ने वध किया था, यक्ष पुत्री है । इसी ग्रंथ में एक स्थल (3 11 94) पर 'यक्षत्व शब्द 'जावन शक्ति' अर्थ में प्रयुक्त है । 'महाभारत' में यक्षों का उल्लेख अनेकत्र मिलता है । इसमें एक स्थल पर यक्षा को क्षुद्र दक्षता' कहा गया है और कुबेर को इनका राजा । ये लोग कुबेर की सभा में लाखा की सख्या में रहकर उसकी उपासना करते थे । वनपर्व में एक यक्ष युधिष्ठिर से तत्त्वज्ञान विषयक अनेक प्रश्न पूछता है । इस प्रसंग में धर्म ही यक्ष रूप में आते हैं । एक अन्य स्थल पर इस ग्रंथ में उग्रश्रवा वताते हैं कि यक्ष कामपूजक थे और रावण महादेव के उपासक । प्रस्तुत ग्रंथ के लेखक अरुण ने कुन्ती द्वारा शतशृंग (उत्तर कुंभ) में नियोग द्वारा तीन पुत्र पदा किये जाने का सम्बन्ध यक्षवाद से जोड़ा है (पृ० 66) । अपनी दिग्विजय के दौरान अजुन ने उत्तर दिशा में यक्षों के द्वारा सुरक्षित हाटक प्रदेश को सामन्ति से जीता था । भीम का भी एक बार यक्षों से युद्ध हुआ था । युद्ध के बाद हुए अश्वमेध सम्बन्धी पर्व के अध्याय 62 तथा 64 में यक्षा की चर्चा आती है । द्रुपद की पुत्री शिखण्डिनी को स्थूणाकृण यक्ष ने पुरप— शिखण्डी— बना दिया था । 'महाभारत' में मुञ्जवट तथा राजगृह में दूर दूर तक प्रसिद्ध यक्षिणी मंदिरो का उल्लेख है जहाँ प्रतिदिन पूजा (नृत्यक पूजा) होती थी । राजगृह की यक्षी का मूल नाम जरा था । सभापत्र में उसे मासशोणितभोजना कहा गया है । उसी ने जरासन्ध के शरीर के दो टुकड़ा को जोड़कर उसे जीवित किया था । इससे प्रसन्न होकर जरासन्ध के पिता ने आदेश दिया था कि मगध के घर घर में उसकी पूजा हो और उसके सम्मान में वार्षिक महोत्सव मनाया जाय ।

उस युग में जत्र जातक बचाएँ चिन्ती जा रही थी यक्षा का रक्तिम नेत्र वाले मानवमक्षी प्राणी माना जाने लगा था । इतना ही नहीं उनकी गणना राक्षसों के साथ की जाने लगी थी ।¹ इस दृष्टि से उनका पतन ईरान में जरथुष्ट्री प्रभाव से देवा के और यूरोप में ईसाई धर्म के प्रभाव के कारण प्राचीनतर यूरोपीय पुराकथाओं के देवगणों के पतन से साथ तुलनीय है । इसके बावजूद बौद्ध साहित्य में ऐसे भी मन्त्र उपलब्ध हैं जिनमें यक्षों की गरिमा और मानवा के प्रति उनकी कृपा और अनुग्रह तथा मानवों का उनके प्रति भक्तिभाव प्रतिस्वनित हैं ।

बौद्ध साहित्य में देवता और यक्षों में भेद करना कठिन है । इसमें ये सभी

कम और पुनजन्म के बंधन से बंधे हैं। मनुष्य का पुनजन्म देवता या यक्ष के रूप में हो सकता है और देवता तथा यक्ष का मनुष्य रूप में। लगभग सभी देवताओं को साहित्य में कहीं न कहीं यक्ष कह दिया गया है और वहाँ इस शब्द का प्रयोग सम्मानजनक अर्थ में हुआ है।

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य में 'यक्ख' शब्द अनेकत्र प्रतिष्ठासूचक है। उह प्रायः 'अमनुस्स' कहा गया है और इनकी गणना देवा राक्षसा गंधर्वों, किन्नरा आदि के साथ की गई है। 'मज्झिम निकाय (1 252) में सक्क (शक्र = इंद्र) तथा मज्झिम' (1 3383) में स्वयं बुद्ध को यक्ख कहा गया है। लेकिन 'अगुत्तर निकाय (2 37) में एक स्थल पर बुद्ध कहते हैं कि वह न देव हैं न गन्धर्व और न यक्ख। एक स्थल पर देव पुत्र कबुद्ध को यक्ख बताया गया है तथा अन्यत्र देव नगरी अलकमन्दा को यक्खों से परिपूर्ण कहा गया है। उनके पास भी देवताओं के समान ऋद्धिया (अतिमानवीय शक्तियाँ) होती हैं।

लेकिन बौद्ध धर्म में अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के यक्ष हैं। 'दीघनिकाय' के 'आटानाटीय सुत्त' में यक्षों के राजा वेस्सवण बुद्ध को बताते हैं कि यक्ष लोग प्रायः बुद्ध और उनके धम्म का नहीं मानते। बुद्ध के उपदेश लोगों को पाप कम से बचन का आग्रह करते हैं इसलिये वे यक्षों को प्रिय नहीं हैं। कुछ यक्ष बौद्ध भिक्षुओं को दुष्ट देते हैं पर तु महायज्ञ सद्धर्म में सहायता करते हैं और दुष्टात्मा यज्ञों पर अक्रुश लगाते हैं। वेस्सवण ने एक मात्र की ओर इंगित किया है जिसका जप करने से दुष्ट यक्षों से बचा जा सकता है। उसने इंद्र, सोम, वरुण प्रजापति, मणिभद्र, आडवक इन सभी को यक्ष बताया है। 'अगुत्तर निकाय' के 'पञ्चक निपात' में कहा गया है कि मधुरा (मधुरा) में भिक्षुओं को जिन पाँच सक्खों का सामना करना पड़ता था, वे थे सडका का उबड़ खाबड़ होना, धूल का आधिक्य, भयकर श्वान क्रूर यक्ष एवं भिक्षा की कमी। ऐसे दुष्ट यक्षों की नियुक्ति भी जो भिक्षुओं को परेशान करते हैं विभिन्न प्रदेशों में वेस्सवण ने ही की थी। वे अपने क्षेत्र में भटककर आए हुए व्यापारियों और अथ यात्रियों की मार कर खा जाते थे। उनका निवास प्रायः गाव के बाहर वृक्षा और कुन्जों में, चौराहा पर या सरोवरों की ओर झरना के निकट बताया गया है। व्यापारी और यात्री उनको प्रसन्न करने के लिए बलि देते थे। एक जातक कथा में व्यापारियों द्वारा चौराहों पर मत्स्य, मांस तथा मुरा अर्पित की जाती है। एक अथ जातक कथा में एक वृक्ष राजा क्षत्रिय जाति के बन्धियों को निग्रोध देवता के सम्मुख बलि देता है जिससे वह तक्षशिला पर विजय प्राप्त कर सके। 'महाभारत' में जरासन्ध द्वारा विजित राजाओं का बलि देना और कृष्ण, भीम और अर्जुन द्वारा उसको इस घृणित काम से रोकने के पीछे भी जरासन्ध द्वारा जरासन्धी की पूजा और भागवता द्वारा उसका विरोध हो सकता है। एक अथ जातक कथा में कम्मास-

धम्म नगर के बाहर स्थित निप्रोध देवता ऐसी बलि पाते हैं। बुद्ध द्वारा कम्मास धम्म में धमदेशना की गई थी। बहुत से यक्ष अजनवियों से प्रश्न पहलियाँ पूछते थे जिसका सही उत्तर न देने पर या तो अजनबी मर जाता था और या उसकी बलि दे दी जाती थी। 'महाभारत' में युधिष्ठिर यक्ष सवाद इसका अच्छा उदाहरण है। लेकिन धीरे धीरे बौद्धों ने यक्षों को पूजा से नरबलि जैसे तत्त्व निकालकर और उनको बलि में निरामिय भोजन दिये जाने का प्रचार करके उनकी पूजा को सम्मानित मानवीय रूप दिया। बहुत सी जातक कथाओं में बोधिसत्व दुष्ट यक्षों को धम के मार्ग पर लाते हैं।¹ अगुलिमाल पहिले एक नर भक्षी वृक्षवासी यक्ष था, जो बाद में बुद्ध के प्रभाव से द्वारपाल हो गया।²

लगभग तीसरी शती ई० में रचित बौद्ध ग्रन्थ 'महामयूरी' में विभिन्न स्थलों पर पूजित यक्षों की एक लम्बी सूची दी गई है।³ इनमें कुछ यक्ष ये थे— राजगृह में वज्रपाणि और वकुल कपिलवस्तु में काल और उपकालक, विराट में महेश्वर धावस्ती में वृहस्पति, साकेत में सागर वशाली में वज्रायु चम्पा में सुदशन, धाराणसी में महाकाल, द्वारका में विष्णु ताम्रपर्णि में विभीषण उरगा (पाण्ड्य देश की राजधानी उरगपुर) में मदन बहुधायक में कपिल उज्जयिनी वसुशत अवति में वसुभूति, भरुकच्छ में भरिक अग्रोदक (पूर्वी पंजाब का जप्रोहा) में मात्यधर सुवास्तु (स्वात) में शुक्लद्रष्ट गिरि नगर में महागिरि विदिशा में वासव रोहितक में कुमार कान्तिकेय कलिग में वृहद्रथ सुधन में दुर्योधन अजुनावन (अजुनायन) में अजुन मालवा में गिरिकूट शाकल में सबभद्र वणु (बनू) में कपिल, गंधार में प्रमदन, तक्षशिला में प्रभजन भद्रशल में खरपोस्ता रोहक (सौवीर की राजधानी) में प्रभकर लम्पाक में बलहप्रिय, मथुरा में गदभक पाण्डमथुरा (दक्षिण भारतीय मदुरा) में विजय और वजयत मनय में पूणक केरल में विघ्न नासिक में सुंदर बनवासी (दक्षिण कनाडा) में पालक अहिच्छना में रतिक काम्पल्य में कपित पाचाल में नगमेश हस्तिनापुर में प्रसव योधेया में पुरञ्जय कुरुक्षेत्र में तराक और कुतराक (महाभारत के तरतुक और अरतुक) एवं उलूखल मखला नाम की यक्षी कोन्विप (बंगाल) में महामेन, कौशाम्बी में अनायास चम्पा में पुष्पदत्त पाटलिपुत्र में भूतमुख काशी में अशोक, महभूमि में जम्भक दरद देश में देवशर्मा कश्मीर में प्रभकर कश्मीर के सीमा प्रदेश में पाचिक और उसके 500 पुत्र चीन भूमि में पाचिक का ज्येष्ठ पुत्र कापिथी (बेग्राम) में लकेश्वर रुसदेश में धमपाल, बाहलीक में महाभुज, तुपार देश में

1 कौशाम्बी मिथ एण्ड रीयलिटी पृ 124

2 कुमारस्वामी यक्षत्र 2 पृ 8

3 दे० लेवी सिन्हा जे० ए० 5 1915 भाग I पृ० 19-138 अत्रवान बी० एम्० प्राचीन भारतीय लोकधर्म पृ० 127-28

वृष्णव का पुत्र युवराज जिनपन्न, सिंधुसागर म सातगिरि और हैमवत द्रविड देश म पञ्चालगड, सिंहल म घनशंकर, पारस देश म पाराशर शकस्थान म शंकर, पहलव देश म वेमचित्र, उड्डियान म कराल गापकाण (बखान) म चित्रसेन, रमठ (हीरा का प्रदेश, जामुड या मजनी) म रावण। इस लम्बी सूची से स्पष्ट है कि यक्ष पूजा अफगानिस्तान और ईरान से लेकर पूव म बगाल तथा दक्षिण म सिंहल तक प्रचलित थी। इस सूची म आए यक्ष नाम शंख वृष्णव आदि विभिन्न धार्मिक परम्पराओं म लिये गये देवनाम हैं। इनमे कुछ महाकाव्या म वर्णित वीरों के भी हैं यथा दुर्योधन, अजुन आदि। कुछ नामों का उल्लेख अथ दृष्टि से रोचक है। यथा इस सूची म द्वारका का यक्ष विष्णु को बताया गया है वृष्ण को नहीं। अजुनायना म अजुन नामक यक्ष की पूजा के प्रचलन से इस जाति का अजुन पादव से सम्बन्ध सकेतित माना जा सकता है।

पाचिक यक्ष की पूजा को, जो कुवेर का ही दूसरा नाम था महायान बौद्ध धर्म म बहुत लोकप्रियता मिली। मध्य देश म पाचिक और उसकी पत्नी हारीति की उपासना प्रचलित थी। किसी समय उसकी उपासना मध्य एशिया म भी फली। हारीति के सम्बन्ध मे कहा गया है कि वह पाँच सौ यक्षों की माता थी। उसका सम्बन्ध मूलतः राजगृह से था। 'महाभारत वनपर्व म जरा नाम की जिस यक्षी का उल्लेख है वही बौद्ध धर्म म हारीति नाम से विख्यात हुई। वह बच्चा का हरण कर लेती थी। अपनी इस प्रकृति के कारण वह जातहारिणी या हारीति कहलाई। जिस समय बुद्ध राजगृह आय तो उन्होंने उसे सुधारने के लिये उसके पुत्र को छिपा दिया। इस पर वह बहुत व्याकुल हुई और उसके हृदय म मातृ प्रेम उत्पन्न हुआ। तब से वह बच्चों की रक्षिका देवी बन गई। कुपाण युग म मथुरा उसकी पूजा का केन्द्र था। बौद्ध ग्रंथों के अनुसार वह चेचक द्वारा बच्चा का हरण करती थी। आज भी शीतला के रूप मे उसकी पूजा होती है।

ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियाँ में बौद्ध सभाज म यक्षपूजा के प्रचलन के प्रमाण भरहुत के प्राचीन स्तूप के वेदिका स्तम्भा पर उत्कीर्ण यक्षमूर्तियों के रूप मे पाया जाता है। इनके नाम हैं— सुचिलोम, कुपिर (कुवेर) अजकालक, गंगित, सुपवस विरुधक, सुत्सना चदा सिरिमा देवता चुलकाका देवता तथा महाकोका देवता। इनमे अन्तिम पाँच नाम यक्षियों के हैं। 'चुलकाका का अर्थ है छोटी काका और 'महाकोका का अर्थ है 'बड़ी काका। अग्रवाल के अनुसार नामों के ऐसे युगल काशी के वीरों के नामों म जब भी मिलते हैं, यथा लहरावीर और बुलनाबीर (विपुल > बुल्ला = बडा)। अशोक ने अपन अभिलेखा म दावा किया है कि उसने उन देवों का, जो पहिले अमिथित थे मिथ्य कर दिया (अमिसा देवा मिसा कटा)। डॉ० अग्रवाल के विचार म यहा अशोक का तात्पर्य यह है कि लोभपूजा के जो देवता पहिले बौद्ध धर्म के साथ मिले हुए नहीं थे और जिनकी

मायता पृथक् थी उह बौद्ध धर्म में स्वीकार कर लिया गया। फलतः बौद्ध कला में जहां एक जोर बुद्ध के जीवन सम्बन्धी नाना दृश्य जकित किये जाने लग गये वही यक्ष-यक्षी और नाग नागी आदि व्यततर देवताओं का अवन भी होने लगा।¹

‘मिलिंद पञ्चाहा में जिन तत्कालीन सम्प्रदायों की सूची दी गई है उनमें देवताओं में मणिभद्र पूरणभद्र चण्डिम, सूरिय, सिरि (श्री) कलि (=काली) शिव तथा वामुदेव सम्मिलित हैं। इस ग्रंथ में यह कहा गया है कि ये सब सम्प्रदाय गुह्य थे। लेकिन सिंहली टीकाकारों ने इन देवताओं के उपासकों का भक्त बतयाया है (पृ० 17)।

बौद्धों के समान जनो ने भी यक्षों को अपने देवसमूह में स्थान दिया। प्रारम्भ में जन धर्म में यक्ष यक्षिया की प्रतिष्ठा बहुत नहीं थी लेकिन बाद में विश्वपत गुप्तोत्तर दक्षिण भारत में जन यक्षा की लाजप्रियता तीर्थङ्करों से भी बढ़ गई। भगवती सूत्र में जन कुबेर के आनानुवर्ती तरह यक्षा की सूची मिलती है। इनमें मणिभद्र और पूणभद्र भी सम्मिलित हैं। उमास्वाति के तत्त्वायभाष्य में तेरह प्रकार के यक्षों को अनुसूचित किया गया है। भद्रात नाम वाले यक्ष शुभ माने जाते थे। बाद में जन धर्म में हर जिन या तीर्थङ्कर का एक यक्ष-यक्षी युगल रूप में शासन देवता माना जाने लगा। इनमें बहुत से हिन्दू पुराणों से अपनाये गए देवी देवता थे।² हेमचन्द्र के ग्रंथ त्रिपिटकशास्त्राकाराणुचरित में इन यक्ष यक्षियों के विषय में विशद सामग्री मिलती है।

यक्षपूजा को अर्थ सम्प्रदायों के घोर विरोध का सामना करना पड़ा। जसा कि पीछे देखा जा चुका है ऋग्वेद काल में भी अनेक वैदिक ऋषि यक्षों के विरोधी थे। उसके उपरान्त बौद्धों और जनो ने भी दुष्ट यक्षा की पूजा का विरोध किया। भले यक्षा को उन्होंने अपने देवसमूह में स्थान अदश्य दिया परन्तु उनका यत्नित्व परिवर्तित करके और मात्र गौण देवता के रूप में। बुद्ध ने महदुपद्धान या यक्षपूजा को तिरच्छान विजा या मिच्छाजीवा कहा है जो सामान्य जनो (पुत्रुज्जन = पृथक् जन) में फली हुई थी। उन्होंने यह घोषित किया था कि जन साधारण यह जान ले कि गौतम आत्मियपूजा यक्षपूजा, सिरिदेवता का आवाहन वन में जनत भारी प्रकाश में विश्वास आदि बातों से ऊपर उठ चुके हैं।

बौद्ध साहित्य में मार को भी यक्ष बतयाया गया है। महावस्तु में उसकी सेना में यक्ष सम्मिलित कहे गये हैं। इन यक्षा का नेता साधवाह था जो मार का पुत्र था। उसने मार को सलाह दी थी कि वह बुद्ध से हार मान लें। इससे

1 अग्रवाल पूर्वो० पृ० 129

2 विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए शर्मा जे पी पूर्वोक्त पृ 5

अहण ने निष्कप निकाला है कि बुद्ध की शिक्षा सबप्रथम यक्ष जाति के साथवाह व्यापारियों ने स्वीकृत की थी (पृ० 69) ।

यक्षपूजा को बौद्ध धर्म ने किस प्रकार परिवर्तित किया इसका रोचक उदाहरण हारीति की कथा है जिसे बुद्ध यक्षों का हरण करने वाली यक्षी के बजाय उनकी रक्षिका देवी बना देते हैं। बोधिसत्व द्वारा इस प्रकार दुष्ट और मासाहारी यक्षों को बल्याणकर और निरामिषभोगी बनाए जाने की कथाएँ बौद्ध साहित्य में भरी पड़ी हैं।

जन धर्म ने भी इसी प्रकार यक्षों का व्यक्तित्व परिवर्तित किया। लेकिन बाद में जनाने यक्ष-यक्षिया के युगला को तीर्थङ्करों का शासन देवता बना दिया जिससे ये देवता जन धर्म में महत्त्वपूर्ण हो उठे और प्रभाव और लोकप्रियता की दृष्टि से तीर्थङ्करों के समकक्ष हो गये।

ब्राह्मण सम्प्रदायों ने भी यक्षपूजा को आत्मसात् करने का प्रयास किया। उन्होंने कुबेर का एक दिक्पात बना दिया। 'महाभारत' में विष्णु के साथ कुबेर को भी 'भागवत' कहा गया है। यक्ष मणिभद्र की पवाया मूर्ति के नीचे उत्कीर्ण लेख में भागवत कहा गया है तथा उस मूर्ति के निर्माता का मणिभद्र का भक्त। ब्राह्मण सम्प्रदायों ने किस प्रकार यक्षपूजा को अपने साँचे में ढाला इसका एक उत्तम उदाहरण 'मत्स्यपुराण' (अध्याय 180) में प्रदत्त हरिकेश यक्ष की कथा है। वह अपने पिता पूषभद्र यक्ष के क्रोध की परवाह न करके शिव की आराधना करता है और उनसे नित्य वाशीवास का वरदान पाता है। इसी पुराण के अध्याय 183 में बहुत से यक्षों को शिवगणों में गिनाया गया है। इन तथ्यों से संकेतित है कि किसी समय वाशी में यक्ष और शिवपूजा में सघन चला था जिसमें शिवपूजा को विजय मिली और हरिकेश यक्ष, जो आजकल हरमू बरह्य नाम से पूजा जाता है, तथा अन्य यक्ष शिव के गण मान लिए गए।

भारत की इन्द्रधनुषी सृष्टि के विविध वर्णों की गणना करना और हर रंग का महत्त्व निर्धारित करना असम्भव-सा है। जैसे प्याज में छिलकों की परतों के ऊपर परतें चढ़ी रहती हैं उसी तरह भारतीय सृष्टि के विकास में नाना प्रजातियाँ, धर्मों आदि की देन की परतें चली हुई हैं। इन परतों को छील कर उनकी व्यञ्जना करना दुष्कर है। अहणजी के प्रस्तुत ग्रंथ में यक्ष जाति की देन की परत का अध्ययन है। उन्होंने यह सायास दिखाया है कि परवर्ती साहित्य एवं आधुनिक साक्ष्यशास्त्रों से यक्षा और यक्षिया के विषय में जो धारणा बनती है उससे उनकी उस प्रतिष्ठा का अनुमान नहीं लगाया जा सकता जो उन्हें प्राचीन साहित्य में दी गई है। इसी प्रकार उनकी अद्भुत विकसित प्राणाय और आर्योत्तर जातियों के देवता मानकर लिखे गये शोध प्रवृत्तों व निवृत्तों से उनकी भारतीय

इतिहास में महत्ता का भी सही अनुमान नहीं हो सकता जिसका ज्ञान हम तब होता है जब हम उनका अध्ययन यह मानकर करते हैं कि वे प्राचीन भारत की एक प्रमुख जाति थे जिसकी महत्ता को दब जाति के उत्कर्ष को प्रतिध्वनित करने वाले साहित्य में दबा दिया गया। लेकिन फिर उन्होंने विजय प्राप्त की और जाज की मंदिर पूजा यक्षपूजा का विकसित रूप है। अर्धण का यह मत कहीं तक समीचीन है इसका निणय करने में पूर्व अभी और अनुसंधान कर्तव्य है परन्तु उनके इस आग्रह को सवथा अस्वीकृत करने का कोई कारण नहीं है कि किसी समय यक्षपूजा भारतीय समाज में बहुप्रचलित थी और उसके साथ एक विशिष्ट सांस्कृतिक परम्परा जुड़ी थी जिसका इस देश की संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

जसा कि पूर्वगामी पृष्ठा में किये गये विवेचन से स्पष्ट है यक्षपूजा और उसके साथ जुड़ी सांस्कृतिक परम्परा का अस्तित्व वैदिक काल में भी था। वैदिक आय भारत में ऐसी अनेक जातियाँ, समूहों या सांस्कृतिक परम्पराओं के सम्पर्क में आएँ जिनसे वे एक ओर उनकी भौतिक प्रगति और समृद्धि तथा आध्यात्मिक शक्तियों के कारण प्रभावित हुए और यत्र तत्र उनकी प्रशंसा— स्पष्टतया या प्रच्छन्नतया— करने के लिये बाध्य हुए परन्तु दूसरी ओर उनकी परम्पराओं से असहमत होने के कारण उन्होंने उनकी आलाचना— यथाथ अथवा अतिरिञ्जित— भी की। मुनियों, केशियों तथा ऐसे ही अनेक जनों के प्रति आयों में यह द्वेष भाव मिलता है।¹ हमारे विचार से यक्षा के साथ भी यही बात लागू होती है। आय अपने देवताओं को यक्षा से श्रेष्ठतर मानते थे और उनकी पूजा करना अनावश्यक समझते थे लेकिन इसके साथ ही वे यक्षा के सौन्दर्य, शक्ति और सम्पदा से प्रभावित भी थे। वे उन्हें इच्छारूपधर दयालु, ऐश्वर्यवान् और महायोद्धा मानते थे। कुल मिलाकर यक्षों के प्रति उनके मन में आदरमिश्रित आश्चर्य का भाव था। इसलिये ब्राह्मण साहित्य में हर देवता को किसी न किसी प्रसंग में यक्ष कह कर गौरवावित किया गया है। कुछ उपनिषदों में तो स्वयं ब्रह्म को भी यक्ष बताया गया है।

लेकिन यक्ष धार्मिक संस्कृति वैदिक धर्म परम्परा से अनेकशः भिन्न थी। यह अन्तर विशेष रूप से इस बात में था कि वैदिक आय अपने देवताओं को मानव रूपधारी मानते हुए भी उनकी न मूर्ति बनाते थे और न मंदिर।² इसके विपरीत यक्षधर्म में इन दोनों को ही स्थान प्राप्त था। यद्यपि इसका वैदिक साक्ष्य में अब संकेत मात्र ही अवशिष्ट है। अब इस बात से इकार नहीं किया जा सकता कि प्रतीक पूजा और मूर्ति-पूजा दोनों का श्रीगणेश यक्ष धर्म में ही हुआ था।

1 गोयल एस आर ए रिजिजस हिस्ट्री ऑफ एशियेटिक स्टडीज 1 पृ 93 अ

2 वही भाग 2 पृ 128 अ

तिब्वती ग्रंथों के अनुसार शुद्धोदन अपने शिशुपुत्र सिद्धाथ गौतम को लेकर कपिल वस्तु के बाहर अपने कुलदेवता शाक्यवृद्धन की मूर्ति के सम्मुख शीश भुक्वान गये थे । जन कथाओं में भी वृद्ध्या स्त्रिया द्वारा यन्त्र मूर्तिया की पूजा किय जाने का उल्लेख है । स्मरणीय है कि भारत के ऐतिहासिक युगीन प्राचीनतम मूर्तियाँ यक्ष मूर्तियाँ ही हैं । ये मूर्तियाँ आकार में आठ से बारह फुट तक बड़ी हैं और इनकी प्राचीनता चौथी शती ई० पू० तक जाती है । वा० श० अग्रवाल के अनुसार इन्हीं का अनुसरण करके विष्णु और बोधिसत्व की प्रतिमाओं का निर्माण हुआ था । सबसे प्राचीन यक्षमूर्ति परखम स प्राप्त हुई है । यह मणिभद्र यक्ष की है । पद्मावती में उसकी उपासना का केन्द्र था । वह साथवाहा का रक्षक माना जाता था ।

मूर्ति-पूजा का घनिष्ठ सम्बन्ध मन्दिर निर्माण से था । जसा कि सबज्ञात है कि आर्यों के अपने यज्ञ धर्म में देवायतना की स्थान प्राप्त नहीं था । परन्तु ऋग्वेद के मन्त्र 4 3 13 में यक्षसदन का उल्लेख है यद्यपि इसका रूप स्पष्ट नहीं है । बुद्ध और महावीर के समय यक्षभवन यक्षायतन या चत्य कहलाते थे । आरम्भ में चत्य का अर्थ 'पवित्र वृक्ष था और वृक्षों पर वास करने वाले यन्त्र रक्षकदेवता कहलाते थे । इसके बाद वृक्षों के नीचे चबूतरे बनाकर उस पर आयगपट्ट या पूजाशिला रख कर पूजने की परम्परा चली और तदुपरान्त निमित्त चत्य भवना का विकास हुआ यद्यपि रक्षकदेवता की अवधारणा भी बनी रही । क्योंकि यन्त्रों के चत्य भवन यात्रियों के विश्राम स्थला और वर्षावास के समय बुद्ध महावीर और उनके भिक्षुओं के निवास के उपयोग में भी आत थे इसलिय बहुत से यक्षायतन निमित्त भवन रहे होंगे । जैसे भगवती मूत्र में ऐसे 18 यक्ष चत्यों का उल्लेख मिलता है जहाँ महावीर ने वर्षावास किया था । बुद्ध के द्वारा भी अनेक यक्ष चत्यों में ठहरने की चर्चा आती है । अरुण के अनुसार कुल मिलाकर बौद्ध और जन स्रोत ऐसे शताधिक चत्यों का उल्लेख करते हैं (पृ० 35) । यष्टिवन में स्थित सुपतिट्ट चत्य रक्षक देवता सुपतिट्ट का भवन बताया गया है । वज्रिया के जिस सारदद चत्य में बुद्ध ने लिच्छवियों के लिये कल्याणकर सून बताये थे उसे बुद्धघोष ने सारदद यक्ष का चत्य कहा है । 'सयुक्त निकाय के अनुसार यक्ष मणिभद्र का भवन मणिमाल चत्य कहलाता था । इन तथ्या स स्पष्ट है कि यक्ष भवनों के रूप में चत्य निर्माण की परम्परा बुद्ध के आविर्भाव से बहुत पहिले विकसित हो गई थी ।

जन धर्म में भी यक्षों का घनिष्ठ सम्बन्ध नगर योजन व वास्तुकला से माना गया है । आज भी लोककथाओं में यक्षों द्वारा रातोंरात राजप्रासादों के निर्माण का प्रतीक प्रचलित है । बुद्ध के कुछ शताब्दी उपरान्त पतञ्जलि ने भी अपने महाभाष्य में सूचित किया है कि कुम्बर (यक्षेश्वर) राम तथा केशव के मन्दिरों

के सम्मुख गायन होता था और वाद्य बजाय जाते थे। अरुण का तो यह भी सुभाव है कि वास्तुशला के कारीगरों के लिये प्रयुक्त राज शब्द का मूल 'यक्ष' शब्द के पर्याय 'राज' में हो सकता है।

देवता को प्रसन्न करने की यक्ष विधि भी बहुरिक्त आयों की यक्ष विधि से भिन्न थी। यक्ष पूजा के मुख्य अंग थे पुष्प माल्य धूप दीप चन्दन गन्ध, नवेद्य या प्रसाद और सगीत। धीरे धीरे यह विधि विभिन्न पौराणिक सम्प्रदायों में स्वीकृत हो गई और 'गीता ने इसका अपना कर इस हिन्दू धर्म का अभिन्न अंग बना दिया (पत्र पुष्प फल तोयम्)। इसीलिये महाभारत में कुबेर को भागवत कहा जा सका।

लेकिन यक्षा में केवल पुत्र पुष्प फल तोयम् वाली भागवती पूजा ही प्रचलित नहीं थी वरन् परवर्तीयुगीन वाममार्गी हिंसात्मक पूजाविधि का आदिम रूप भी प्रचलित था। इसीलिये शिव कार्तिकेय आदि 'महामाधुरी' की सूची में यक्ष कह जा सके। बौद्ध और जन कथाओं में यक्षों को मानव और पशु बलि दिये जाने की चर्चा अनेकत्र मिलती है। जन कथाओं में आया है कि बध्या स्त्रियाँ पुनवती होने के लिये यक्षा को भस्म की बलि देती थी। वे उनकी मूर्तियों को मयूरपिच्छ से साफ करके और स्नान करवा कर उनको पुष्प, माल्य धूप दीप आदि अर्पित करती थी। यक्षा को भेड बकरी, सूअर आदि की बलि भी दी जाती थी। आडवक यक्ष की कथा में यक्षा द्वारा कच्चा मांस खाने और बौद्ध भिक्षुओं की हत्या करने का उल्लेख है। यक्ष पूजक जादू में विश्वास करते थे और नरबलि तथा कुक्कुट बलि देते थे। वे सुरापान के भी 'यसनी' थे। यक्षिणियाँ यक्षों से अधिक ड़ूर मानी जाती थी और मानव और पशु हत्या से आनन्दित हाती थी।

बौद्ध परम्परा में यक्षपूजा का प्रायः ड़ूर रूप ही चित्रित है। बौद्धों के अनुसार वेस्तवतः विभिन्न यशो को विभिन्न प्रदेशों में नियुक्त करते हैं। वे वहाँ भूले भटके आने वाले यात्रियों और 'यापारियों' को मार कर खा जाते थे। उनका वास वृक्षों चौराहों कुओं वनों में या सरोवरों और झरनों के समीप बताया गया है। उनसे बचने के लिये यापारी और यात्री उन्हें मत्स्य मांस सुरा आदि की बलि देकर प्रसन्न करते थे जिससे उनकी यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो जाये। जन ग्रंथों में भी दुष्ट यशो का वर्णन मिलता है। वर्धमान नगर के समीपस्थ आस्थिक ग्राम का शूलपाणि यक्ष ऐसा ही था। जन 'वृहद्कल्पभाष्य' में भी जन साधुओं को परेशान करने वाले यशो की कथाएँ आती हैं। यक्षपूजा का यह पक्ष शक और तार्त्रिक सम्प्रदायों की अतिमार्गी उपासना का आदिम रूप अनायास माना जा सकता है। बौद्ध और जन लेखकों ने यक्ष संस्कृति के इस रूप पर विशेष बल दिया यद्यपि वे इस बात को भी बराबर कहते हैं कि यक्षा में कुछ सुन्दर होते हैं कुछ कुरूप कुछ दयालु होते हैं कुछ ड़ूर। उदाहरणार्थ जन

'उत्तराध्ययन' के अनुसार वाराणसी का गड्ढितदुग यक्ष मातंग ऋषि के उपवन की रक्षा करता था। यक्षों के विषय में यह भी धारणा थी कि वे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वालों का सम्मान करते थे और कुलटा स्त्रियों का पता नगा लेते थे। बौद्धों के अनुसार वे अपने पुण्य कर्मों के कारण सुन्दर होते थे और उनके व्यक्तित्व की विचित्रता उनके पूर्वकालीन दुष्कर्मों का परिणाम होती थी।¹ वे स्वभाव से शर्मालु होते हैं और ताड़पत्र और लोहे से डरते हैं। अगर यक्ष सस्कृति कास्य-कालीन थी तो उनमें आर्यों के लौह आयुष्य से डरने का संस्कार अनायास बोधगम्य है। बौद्धों ने यक्षा के हिंसात्मक पक्ष को शायद इमलिये उभाड़ा जिससे वे यह दिखा सकें कि उनका धर्म कितना प्रभावशाली है और ब्रूर जना को भी दयालु बना देता है जैसे बुद्ध ने हारीति को बना दिया था।

यक्ष सस्कृति के अर्थ पक्ष बहुत स्पष्ट नहीं है। लेकिन जसा कि अरुण ने साग्रह दिखाया है कुछ छिन्पुट सकेतो से विभिन्न क्षेत्रों में भारतीय सस्कृति को उनकी देव का अनुमान लगाया जा सकता है। एक, यक्ष शब्द का एक पर्याय राज है। इससे अरुण ने अनुमान किया है कि कदाचित् राजयोग या राजविद्या का अर्थ राजाओं का ज्ञान नहीं यक्षों का ज्ञान है। गीता में इस विद्या का जनक ब्रह्मा को बताया जाने से इस अनुमान का समर्थन होता है क्योंकि यक्ष शब्द का पर्याय ब्रह्म है और ब्रह्म की प्रकृति का प्रथम आविर्भाव ब्रह्मा है जैसे सागर में लहर।

यक्षों का सम्बन्ध मुण्डक बृहदारण्यक, प्रश्न आदि उपनिषदों में उपलब्ध दशन और गुह्य ज्ञान लेखन की प्रश्न विधा से भी जोड़ा जा सकता है। महाभारत, जातक कथाओं तथा अथाय ग्रन्थों में आता है कि किसी वृक्ष या सरोवर पर वास करने वाले यक्ष के पास से गुजरने वाले यात्रियों और व्यापारियों से यक्ष प्रश्न पूछता है और सही उत्तर न मिलने पर वह यात्री मृत्यु को प्राप्त हो जाता है या उसकी बलि दे दी जाती है। 'महाभारत' का युधिष्ठिर-यक्ष संवाद इस प्रसंग में उदाहरणीय है। बहुत सी बार प्रश्न पूछने वाले लोग होते हैं और यक्ष उत्तर देता है। वा० श० अग्रवाल के अनुसार 'महाभारत' का युधिष्ठिर-यक्ष संवाद लोक साहित्य में प्रचलित भण्डार से लिया गया था। ऋग्वेद के ब्रह्मोच्च प्रकरण में होता और महिषी के मध्य हुए संवाद में कुछ प्रश्न बर्ती हैं जो यक्ष युधिष्ठिर से पूछता है।² ये यक्ष प्रश्न पहेलियाँ एक साहित्यिक विधा के रूप में उपनिषदीय प्रश्न पहेलियों के भी बहुत निकट हैं और हो सकता है उपनिषदीय चिन्तकों को इस विधा का ज्ञान यक्ष सस्कृति से हुआ हो। इस प्रसंग में अरुण का यह अनुमान भी उल्लेख्य है कि स्वयं ब्रह्म की आत्मा से षड्विधान की अवधारणा भी

1 शर्मा जे पी पूर्वोक्त पृ 47

2 अग्रवाल पूर्वोक्त पृ 140-41

मूलतः यज्ञ सस्कृत की देन थी (पृ० 69) ।

प्रस्तुत ग्रंथ में अरुणजी ने आग्रह किया है कि भारतीय सस्कृत का अर्थ अनन्त क्षेत्रों में भी यज्ञों की महत्त्वपूर्ण देन रही है । सर्वप्रथम भाषा के क्षेत्र को लें । भाषाशास्त्रियों के अनुसार उत्तर भारत की आधुनिक भाषाओं की जननी सस्कृत है, प्राचीन यूरोपीय भाषाएँ सस्कृत जननी की पुत्रियाँ हैं, सुदूर दक्षिण भारत की द्रविड भाषाएँ, जो आर्यों के आने के पूर्व उत्तर में भी फली हुई थी और बहुत विकसित हो चुकी थी शब्द भण्डार की दृष्टि से त्रानी और सामी परिवार की भाषाओं के निकट हैं तथा भारत में उस द्रविड जाति द्वारा लाई गई थी जो कभी भूमध्यसागर के पास रहती थी । इसका विपरीत किशोरीदास बाजपयी और रामविलास शर्मा ने सतक सिद्ध किया है कि पहिले एक मूल भाषा थी पुरानी प्राकृत जो अनेक बोलियों को अपने में समाये हुए थी । उसे शुद्ध, सुसस्कृत और परिमार्जित करके सस्कृत भाषा बनाई गई जो राजदरबारों में सिमट कर रह गई । मूल प्राकृत साधारण जनो में फलती फूलती रही । उसे फिर पालि में और तत्पश्चात् साहित्यिक प्राकृत में परिष्कृत किया गया । इस बीच में मूल प्राकृत कुछ परिवर्तनों के साथ चलती रही । उसी से अपभ्रंश और आज की द्रविड आदि भाषाएँ निकली । इस भाषात्मक इतिहास की रूपरेखा की पृष्ठभूमि में अरुण ने यह रोचक सुझाव रखा है कि यह मूल प्राकृत यज्ञा की भाषा थी और यह अवधी खड़ी बोली और ब्रजभाषा के प्रदेश से होती हुई दक्षिण गई थी । उन्होंने अनेक उदाहरण देकर दिखाया है कि सस्कृत के शब्दों से मूल प्राकृत अर्थात् यज्ञ भाषा के शब्दों और उससे मिलने जुलने द्रविड शब्दों प्राचीनतर हैं । अरुण के अनुसार मध्यकाल में जो प्राकृत पालि, अपभ्रंश भाषा प्रचलित हुई वे सस्कृत का बिगड़ा रूप नहीं थी । वे एक नसगिक भाषा प्राकृत का रूप थी जो वदिक भाषा से भी पूर्व विद्यमान थी । उसी मौलिक प्राकृत से पाँच तरह की प्राकृत अपभ्रंश पालि आदि निकली । उसी ने द्रविड भाषाओं का उनका वर्तमान रूप दिया । उसी लोकभाषा का संस्कार किया हुआ रूप सस्कृत कहलाया जो साहित्यिक भाषा रही किन्तु प्राकृतिक नसगिक नहीं । सस्कृत साहित्य की भाषा रही, उच्च वर्ग की भाषा रही, राजदरबार की भाषा रही क्या उत्तर में क्या दक्षिण में लेकिन वह लोकभाषा नहीं रही । लोकभाषा पुरानी प्राकृत या उसकी अनेक बेटियाँ ही रहीं । ब्राह्मणों ने उसे सौतेला व्यवहार दिया किन्तु बुद्ध महावीर की क्रांति ने इस जनभाषा को भी साहित्यिक भाषा बना दिया और इसी से आज की सारी भारतीय भाषाएँ निकली सस्कृत से नहीं । (पृ० 119) ।

अपनी उपयुक्त धारणा के प्रकाश में थी अरुण ने हिन्दी और हिन्दू शब्दों की उत्पत्ति पर भी एक सवथा नवीन सुझाव रखा है । उनके अनुसार यह तक

बिल्कुल गलत है कि क्योंकि ईरानिया को 'स' बोलने में कठिनाई होती थी इस लिये वे 'स' को 'ह' बोलते थे और तदनुसार 'सि धु' को 'हिं दु' उच्चारित करते थे जिससे 'हिं दू' और 'हिं दी' शब्द बने। उन्होंने ध्यान दिलाया है कि फारसी में सक्डो शब्द 'स' से शुरू होने वाले हैं जैसे सादगी 'सामान', 'सब्जी', 'सिपाही' 'सरकार', 'सुरमा' आदि। इसके अतिरिक्त अनेक धातुएँ भी 'स' से शुरू होती हैं। फारसी में अरबी से भी ऐसे सक्डो शब्द आए जो 'स' से प्रारम्भ होते हैं यथा 'सराय' 'सफर', 'सिफर' 'साहित्य' आदि। दूसरी तरफ भारत की अनेक भाषाओं में 'स' की जगह 'ह' का प्रयोग आता है। कश्मीरी में 'शाक' का 'हाक', 'श्वसुर' का 'हिंहर', 'साकल' का 'हाकल' हो गया है राजस्थान में 'सवा' को 'हवा' कहते हैं। ऐसी ही प्रवृत्ति बंगला, असमिया सिंधी लहन्दी तथा मराठी की कुछ बोलियों में परिलक्षित है। स्वयं हिंदी में भी यह अनात नहीं है। 'दस दहम् सौ। ताश के पत्ता में दहला। गिनती में छह पप की जगह आया है। ग्यारह से अठारह तक ह का प्रवेश है। इकहत्तर से आगे सत्तर की जगह हत्तर हो गया। ब्रजभाषा और अवधी में स्नान का हनान या नहान, पापाण का पाहन, पुष्प का पुहुप, कृष्ण का काह केसरी का केहरी। (पृ० 124)। यह प्रवृत्ति संस्कृत में भी दिखाई देती है। 'अस्मद् स' 'अहम्' बना है। अतः यह मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि 'हिं दी', 'हिं द' और 'हिं दू' शब्दों का निर्माण भारत में ही हुआ था।

प्राकृत भाषा की तरह ब्राह्मी लिपि को भी अरुण जो यक्षों की देव मानते हैं। उनका मत है कि ब्राह्मी लिपि का विकास यक्षों ने किया था। यक्ष जाति का मूल जनजाति नाम 'अमा' था जिसका संस्कृतिकरण ब्रह्मा हुआ। हमारे साहित्य और शिल्प आदि में पान का मूल ब्रह्मा को बताया गया है। लिपि के विषय में यह बात विशेष रूप से लागू होती है। क्योंकि लिपि का प्रचलन व्यापार से सम्बन्धित है और यक्ष व्यापारी थे। जब उन्हें हिसाब रखने के लिये लिखने की आवश्यकता प्रतीत हुई तो उन्होंने ब्राह्मी लिपि बनाई। यह सर्वप्रथम अशोकिय ब्राह्मी के रूप में दिखाई देती है परन्तु भारतीय परम्पराएँ इसे एक मत से ब्रह्मा द्वारा आविष्कृत बताती हैं। नारद स्मृति, मनु पर बृहस्पति के वार्तिक शुभान च्वाग के यात्रा वर्णन, जन 'समवायाम सुस्त' तथा पणवनासुस्त आदि में ब्रह्मा को ब्राह्मी का आविष्कर्ता माना गया है। बाल्मीकी की एक स्मृति में ब्रह्मा को ताड-यज्ञो का यज्ञ लिए दिखाया गया है तथा चीनी महाकाव्य फान-वान शू लिन में लिखा है कि लिपि का आविष्कार सर्वप्रथम पान या ब्रह्मा ने किया था। 'महाभारत' में कहा गया है कि व्यास द्वारा रचित 'जय' को गणेश ने लिपिवद्ध किया था। इसका तात्पर्य है कि व्यास ने इसके लिये यक्ष लिपिकारों की सहायता ली थी।

भारत में प्रजात आर जात

भारत एशिया महाद्वीप का दक्षिण में निचला हिस्सा भाग है जहां यूरोप एशिया महाद्वीप का पश्चिम में निचला हिस्सा भाग है और गंगा का क्षेत्र भी समान है। महाद्वीप की परिभाषा है वह विशाल भूभाग जिसे सागर और सागर है। इस परिभाषा से यूरोप और महाद्वीप की कसौटी पर धरा नहीं उतरता। अपने को अधिक सम्य समझने के कारण यूरोप के विद्वानों ने एशिया महाद्वीप का नाम बदलकर यूरोशिया कर दिया। फिर सम्यता के कुछ वर्षों बाद वह दो महाद्वीपों में बंट गया यूरोप और एशिया— महाद्वीप की परिभाषा का भूटाना हुआ।

एशिया को आरम्भ में ही एक मानव पुष्पा आदि में वर्णित हजार भूगोल में स्थित मिला है। उसमें तीन पूर्य यूरोप पश्चिम माश्रिया उत्तर और भारत दक्षिण में स्थित किया गया है। यहां मिडल एरन के लिए एशिया का प्राचीन तथा मध्ययुगीन इतिहास भी माशा है। जहां मध्य एशिया की जातियां ने दक्षिण में उत्तर भारत तक घाना बना है वहां के यूरोप में भी घुसे चल गये हैं। आरम्भ में असुरग मुग दानवा न आर ऐतिहासिक युग में शत्रु, हूणा और मगाना न तथा उनके बाद तुर्कों ने यूरोप का एशिया का पश्चिमी भाग मानकर अपना साम्राज्य फैलाया। हूणा न तुर्गारी और तुर्गारिया दश बसाए।

सबसे प्राचीन मानव

समार के सबसे प्राचीन मानव का इस शताब्दी के आरम्भ में रावलपिण्डी के पास मानव नर के बाड़े में पाया गया— कुछ हड्डियाँ और प्रयोग में लाए जाने वाले पत्थर के हथियार। इसका नाम बचानिका न रामपिथकस रखा जो आज से लगभग १ करोड़ ६० लाख वर्ष पहले रहता था।

स्वतंत्रता के कुछ वर्ष बाद विदेशी पुरातत्त्व विज्ञान की टोली ने अम्बाला जिले में शिवालिक पहाड़ों में भारकण्डा नदी की घाटी में बसस भी पुराने मानव-अवशेष ढूँढ निकाले जिनको शिवपिथकस का नाम दिया गया।

हैंसी की बात है कि ये प्रमाण पाने के बाद भी प्राचीन भारतीय सम्यता की हर कड़ी को बाहर से जाया बताया जाता है। शिवपिथकस और रामपिथकस के वशत्रु वहां खो गये जो बाहर से जातियां न जानकर भारत के इस शूय का भरा।

पर यहाँ युरोपियन आप तत्र उहने पाया कि भारत की सम्बन्धनी पुराणा है। यह बात उनर मत स नहा उतरा जीर उतान यह गिद्ध वरन का प्रयोग किया कि भारत क जातिशासी द्रविड थ जा तिलुन जगना थ। उा बातर म (उत्तरी उमनी / हगरी / लियुआनिया / शिणा म्म / या मय्य म्मिया क म्मना म) आतर आयो न सम्बन्धता गिगाई। यर गान उतान वर जीरतुनामर भाषा तासत्र के आधार पर गमभाई।

म्म रय्य प्रनिपातिन रन्म वान र बात् म गना यनाया। एक जग्रन विद्वान नगरीट का नया धा भारता म जा ताग र्ना ह उनम एमा वार् म्म नही पाया जाता कि जाय ताग विजेता हैं आर वार् र चात्तिनामी वर जान वान लोग विजित हा। वहाँ ब्राह्मण ताग अधिवार श्याम रग व लिगाई दन ह व प्लन या गारे रग ते नहा है जीर न उतर गरीर वा हटिया का बनावट भिन्न हे।

जाय जानि क सिद्धात क विग्द स्वय मयसमूतर का सन् १८८८ २० म यह लिखना पडा कि मैं बार-बार इस बात की स्पष्ट कर घुना हू कि जग्र मैं आय शब्द का प्रयोग करता हू ता मरा मनलव न रधिर स हाता है न हटिया स न सिर की वनावट से जीर न वाना म। मरा आय शब्द म अथ कवा जाय भाषा बोला वाले मे है। मरी हटि म शरीर विनान वान जा आध जानि राय रधिर आय नत्र जीर जाय वेशा की बात करत है वे उनन ही बड पापा हैं जग भाषा विनान वाले जो शब्द कोप क व्याकरण की रचना की बात करत हैं।

मजे की वान यह हुई कि रस शताब्दी म इस तथ्य की छात्र हर्द कि तथा कवित आय (देव) घुमकवड जीर चरवाह थ जम आज के कश्मीर के बकरवाल हैं या पुराने अय आक्रमणकारा शक दुपाण आभीर हूण जाति थे जा मत्र उसी प्रजाति क थे। भारतीय ससृति की ८० प्रतिशत देन तथाकथित र्विड जाति की थी। इसी हिसाब से पश्चिमी इतिहासकारा ने अपनी वांसुरी पर नए स्वर निकाल— द्रविड भी बाहर मे जाए थे शायद भूमध्य सागर म। उनसे पटले कोल भील आदि रहत थ जो आज भी भारत म जगह जगह असभ्य जीवन जिता रहे ह।

परन्तु जाय जीर द्रविड कोई प्रजाति या जनजाति हमारे यहाँ नही पाई जाती जसा कि हम आग चलकर देखग। पूर भारत म विभिन्न जनजातियाँ (कबील) रहती था (आज भी भारत म सकडा कबीले पाण जाते हैं) जीर उननी आपस की टकराहट मेल मिलाप म ससृति आरम्भ हुई और समृद्ध होनी चली गई। जसे दा पत्थरा क टकरान से अग्नि पदा होती है उसा प्रकार विभिन्न जनजातिया के टकराने से नान की ज्योति प्रज्वलित हुई। महान् इतिहासन टायनवी का कथन भारत पर अशरश लागू होता है— 'यह तो भारतीया का बडप्पन था कि उहने जनवध (Genocide) जसे पाप नही किए बल्कि कबीले एक दूसर म

मिन्न रह एक दूसरे से अच्छी बान अपना रह और सुमस्त हान गए ।

प्रजाति

यूरोपीय वृत्त वृत्त और भाषात्व वृत्त न मानव को पांच जातियां म बाटा है— (i) नाग्रोयड (Negroid) (ii) ऑस्ट्रिया या ऑस्ट्रो एशियाटिक (Austrian or Austro Asiatic) (iii) द्राविडियन (Dravidian) (iv) सीना टिबेटन या चीनी भाट (Sino Tibetan) अथवा इण्डो मांगोलोयड (Indo Mongoloid) और (v) आर्यन (Aryan) या इण्डो यूरोपीयन (Indo European) । इन भारतीय इतिहासकारों ने हथी निपाद द्रविड जाति और आर्य नाम दिया है ।

कहा जाता है कि मध्य पूर्व हथी जाति के लोग अभीवा में सम्भवतः दक्षिण और दक्षिण इरान वनाचिन्तान दक्षिण सिंधु प्रदेश से हात हुए भारतवर्ष में आए । ये लोग भी दक्षिण भारत जन्मान में कई कबीलों के रूप में पाए जाते हैं ।

इनके बाद में निपाद प्रजाति के मनुष्य आए । यह प्रजाति दक्षिण चीन से उत्तरी हिन्द चीन में रहने के बाद जंगल में जंगल की राह में भारत में आए ।

तीसरी द्रविड प्रजाति है जो पश्चिम से भारत में आई थी । यह भूमध्य सागर के निकट रहने वाली थी जिसमें भारत आते समय जर्मनियन सदृश दूसरी विशिष्ट जाति का मिश्रण हुआ था ।

चिरात प्रजाति पश्चिमी चीन में यांग त्जि-क्यांग नदी के उद्गम स्थान की मूल निवासी थी । इसकी दो शाखाएँ दक्षिण में गई । एक द या थाई जिहाने हिन्द चीन बसाया । दूसरी बाल आमा या भाट-ब्रह्म जिसमें भोट ब्रह्मावासी को मिलाकर सब चिरात जनजाति आ जाती है ।

पाँचवाँ जाय प्रजाति का सिद्धांत सब विख्यात है । अपना उद्गम इससे मानकर यूरोपीयों ने इस ज्ञान पर ध्यान दिया है । अनेक जगह इसका आदि निवास-स्थान बताया गया है जंगल में उत्तर पश्चिम में हिमालय का पार करके भारत में आए थे ।

दूसरा यह कहा हुआ कि उपर्युक्त जलवायु, मिट्टी जल आदि के हात हुए भी भारत में मानव के नाम पर शुरू था । रामदिशम और शिवपिपिनस की कड़ी पुष्टि हो गई थी । जितनी भी जनजातियाँ यहाँ थीं वे सब वाटर से आई थीं । प्रत्यक्षत यह सिद्धांत विरुद्ध नहीं जमता ।

आखिर भारत में बाहर से आई विभिन्न प्रजातियाँ दिखाने का लाभ क्या है ? एक पिता की दो सतानें एक ही नहा गाना तो एक प्रजाति में विशेष गुण कम देख जा सकते हैं । प्रजाति और राष्ट्रीयता के नाम पर कम खून वह है यह

हम अच्छी तरह जानते हैं। भारतीय सभृति म इसका प्रितुक्त उतना है। यह बात नहीं कि यह पत्र जनजातिया म युद्ध न हुए हा।

विग्यान पृथिवीमूक्त के ऋषि ने अनुसार य् हमारी मातृभूमि अनेक प्रकार के जन का धारण करती है। यह जन अनेक प्रकार की भाषाएँ रोचन बाल है और नाना धर्मों का मानन वान है।

जन विभक्ति ऋधा विधावस नाना धमाण पृथिवा यथोक्तम्।

(अथर्ववेद १२ | १ | ४५)

इस विविधता स भारत की जनता कभी आत्रान नहा हुई वनि इसमे भारतीय जावन और सभृति म सम्पनता जा सभृति जा। जनवध (Genocide) के खान पर हमन भाइचार को अपनाया।

जनजाति

जाजाति खाला tribe यह हर देश का एक सवभिद्ध तथ्य है और भारत इसस अछूता नहीं है। भारत का प्राचीन साहित्य (जा सवसम्भनि स विश्व का प्राचीनतम साहित्य है) इन जनजातिया के वणन स भरा पना है। और आज भी भारत म सक्ल जनजातिया मौजूद है। भारत म प्रसिद्ध है कि जर्डी काम चलने पर घानी बदल जाती है। इहा जनजातिया द्वारा भारतीय सभृति जमीनार करन पर आज भारत म ३००० म अधिक्त जातिया (castes) हैं जिह किसी भी प्रकार धार वणों म वर्गीकृत नहा किया जा सकता है।

जाजातिया (जा स दृष्ट जातिया निखग tribes कशील क रूप म castes के रूप म नहा) वनन ने कई कारण है। वस्ती का कोई वृत्त पशु या प्राइतिक साधन उपासना की वस्तु वन जाता है और जाति उसका नाम धारण कर लेती है। इसे टाटम (totem) कहन है। कई जाति पापन क पास रहनी है उमका तना उलागा है उसके पत्ते काम म वाली है अर्थात् उसी पर निभर हा जाती है तो वह जाति पीपन का नाम धारण कर लेती है।

कई जाति नाम स भय छाती है उसके कान स अपना जन मरते लखती है। वह उसकी पूजा करन लगती है। नाग क नाम स प्रसिद्ध हा जाती है। कोई वायु का प्रकोप देखती ह तो वायु का पूजन लगती है।

इस प्रकार भय आवश्यकता निरीक्षण जादि मानव मनोवगा से जातिया का जन्म हाता है।

एक टोटम या गणचिह्न हमर गणचिह्न का विरोधी होता है तो उनके मानने वान गण भी आपस म लडते हं। जस नाग गरड मूपक विडान हाथी मगर आनि। पर यह हमारा सभृति का षड्यपन है कि शीघ्र ही पुरा इतिहास वान म ही इन टोटमा म सम्बन्ध हो गया। विष्णु की पूजा न नाग और गरड को मित्ता लिया। शिव की उपासना म सप मूपक और भयूर सब मिल गए।

हमारे प्राचीन इतिहास में सक्डा जनजातियाँ का वर्णन है जिनमें प्रमुख हैं— नाग गुरु, सुपण श्यन, देव अमुर दत्य, दानव, यक्ष गंधव, किन्नर, त्रिपुर्य राक्षस ऋक्ष वानर निपाद, आदि। नाग मुख्य जाति के अंदर भी पचासियाँ उपजातियाँ के नाम हैं। यही हाल अन्य जातियों के साथ है। संस्कृति के सुदूर प्रभात में इनमें खूब युद्ध हुए किंतु धीरे-धीरे हमारे मुनि-तपस्वी ऋषियों का ज्ञान इन सबकी मायताएँ एक करके एक मानव जाति खड़ी कर दी।

नाग जाति सबसे पहले प्रसिद्ध हुई थी क्योंकि यह जल के किनारे रहती थी। जब देव घुमक्कड़ पामीर (पायमेरु—सुमेरु) के पठार से उतरे तो सबसे पहले उनका सम्बन्ध नागा और गहडा से पड़ा था। नीचे मत पुराण के अनुसार प्राचीन काल में कश्मीर में ५०० से अधिक नाग जातियाँ रहती थीं।

यक्ष जाति भी बड़ी प्राचीन जाति थी जो हिमालय में अन्य किरात वंशी जातियाँ गंधव किन्नर वानर ऋक्ष आदि के साथ रहती थी। यक्ष जाति की विशेषता यह थी कि यह सबसे पहले सम्यक् हुई थी। जब अन्य जातियाँ शिकारी या जालार सप्रहर्ता की स्थिति में थीं उस समय यह जाति संस्कृति की प्रथम पदान पर पहुँच चुकी थी। वृक्ष के विभिन्न उपयोग करने जान लिये थे। कुंवर पहला व्यक्ति था जिसने स्वर्ण और उसका उपयोग दूध निकाला था। यह बड़े धनी थे बड़े व्यापारी थे, वृक्षा और चत्वा की पूजा करते थे।

माना जाता है कि चान में सबसे प्रथम मानव दक्षिणी चीन में रहता था जिनका स्रोत भारतीय था।¹ यह किरात (यक्ष) ही थे।

यक्ष जाति का हमारे दिन प्रतिदिन जीवन पर प्रभाव तथा हमारे धर्म को देने का स्थान वर्णित है।

आवागमन

इन जनजातियों के आवागमन के तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता। आरम्भिक अवस्था में ये सब यायावर थीं और भोजन की तथा अपने पशुजा के चरागाह की तलाश में इधर उधर घूमती रहती थीं। उस समय उनके मस्तिष्क में अपने देश की मत्पना भी नहीं थी। कुछ जनजातियों का सीमावर्ती था कि वे नदी और पहाड़ की उपजाऊ भूमि पर पहले जा पहुँची और वहाँ पेट भरने के प्रचुर साधन पाकर वहाँ स्थिर हो गईं। उस आदिम भूख से समय मिलान पर उन्होंने इधर उधर का सोचना आरम्भ कर लिया और संस्कृति का आरम्भ हो गया।

पर यह आवागमन रुका नहीं गत और न आज तक यह रुका है। जनसंख्या वृद्धि पर, और भूमि की भूख के कारण, व्यापार के कारण यह लगातार चलता रहा। जनजातियों का टकराव हुआ रहा, मिश्रण होना रहा और संस्कृति बढ़ती

रही ।

पामीर के दक्षिण में असुर और देव जनजातियाँ रहती थीं । भारत के मदानी भाग और कश्मीर में नाग निपाद आदि जनजातियाँ फली थीं । हिमालय की तीनों श्रेणियों में किरात जनजातियाँ बसी थीं । असुर फारस और पश्चिमी भारत में अपने पश्चिमी जामीर, शक जत कुषाण, सपेद हूण (हूण) की तरह उतर गए थे और बस गए थे । जनसंख्या बढ़ने के कारण देव जनजाति का एक भाग स्वायम्भुव मनु के नेतृत्व में हिमालय के सहार उतरता उतरता हरियाणा में जा बसा था ।

भारत में प्रचुर भूमि थी प्रचुर भाजन के साधन थे । यना स भूमि पना पडी थी असुर्य पशु पक्षी व । अपने जैसे दा परो के प्राणी स कोई डर नहीं था, न नडाई का कारण था । और तभी ३१०० ई० पूव का भयकर प्रलय आई । मरुती भाग में जलप्लावन हो गया । समस्त जनजातियाँ हिमालय में शरण ली । वहाँ यक्ष गंधर्व आदि किरात जनजातियाँ पहले रहती थीं । मदानी और पर्वती जन जातियाँ एक दूसरे के घनिष्ठ सम्बन्ध में आई । उनका सौभाग्य था कि उन्हें सातव मनु ववस्वत मनु जसा महान् नता मिल गया । वह जीनियम था अद्भुत बलशाली था अनुपम प्रतिभावान् था । उसने सब जनजातियाँ की ससृति की जात्मसात् किया नई मानव जाति मानव सभ्यता दा । वही धीरे धीरे विकास करके आज की भारतिय ससृति और सभ्यता बना गई ।

इसमें जाय और द्रविड प्रजाति का कोई सवाल नहीं उठता । चाहे कोई प्रजाति हो उनकी जनजातियाँ में ससृति और सभ्यता भारत भूमि पर ही उत्पन्न हुई और फली । भारत भूमि मुगता क्या जगजा के जमान तक अफगानिस्तान से श्रीलंका तक फली हुई थी ।



प्राचीन तिथिक्रम

यस जाति का वर्णन करने से पहले भारतीय इतिहास का अनुमानित तिथि क्रम समझना आवश्यक है। इससे हमारा विषय आसानी से प्रत्यक्ष हाता चला जायगा।

यूरोपीय इतिहासकारों के अनुसार भारत की पहली ज्ञात तिथि सिक्न्दर के भारत आक्रमण की है। उससे पहले सब गणोडशखी है। फिर बाद में कुछ अनुवात दूरी (leeway) देने के उपरांत यह समय बुद्ध की जन्मतिथि तक खिंच गया।

पुराणा, वेद और महाकाव्यों में जो घटनाएँ वर्णित हैं वे व्यक्ति दर्शित हैं वे सब काल्पनिक हैं मिथ हैं। उनका भारत के इतिहास में कोई स्थान नहीं है। धर्म की विशेषता दिखाने के लिये उन्हें घड़ लिया गया है। यह आज हर पढ़े लिखे का मतय बन गया है क्योंकि हम शिक्षा इसी प्रकार दी जाती है।

लेकिन यह वास्तविकता से कौसा दूर है।¹ जपन प्राचीन साहित्य के आधार पर हम भारत के प्राचीनतम इतिहास का तर्जोचित कालक्रम बना सकते हैं।

चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यारोहण

आधुनिक इतिहासकारों के अनुसार भारतीय कालक्रम का आधार सिक्न्दर का भारत पर आक्रमण और सण्ड्रिनाटस का चन्द्रगुप्त से मिलान है। इस आधार पर महापद्मनन्द, जिहाने नन्द वंश का आरम्भ किया की राज्यारोहण तिथि ३८० ईसा पूर्व आती है। पुराणों के अनुसार महाभारत का युद्ध नन्द के राज्यारोहण में १०१५ या १०५० वर्ष पूर्व हुआ था। सो भारत युद्ध की तिथि लगभग १४०० ईसा पूर्व आती है।² काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार भी कृष्ण का समय १४०० ईसा पूर्व था।³

उपनिषदों और ब्राह्मणों में वर्णित वंश सूची

उपनिषदों और ब्राह्मणों में सुरक्षित गुरु शिष्य-परम्परा के वंशों के अनुसार डा० जन्टेकर ने भी महाभारत युद्ध की यही तिथि ठहराई है। शतपथ ब्राह्मण, साधायन आरण्यक, वृहदारण्यक उपनिषद् और जमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में पाए जाने वाले वंशों में जनमेजय के पुराहित से लेकर इन वंशों के रचयिताओं

1 देविये अरण्यक भारतीय पुरा इतिहास कोश आर एतिहासिक धर्मियों का कोश

2 पार्श्वर द डायनस्टोन्स ऑफ द कलि एज पृष्ठ 58 तथा 74

3 एन्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली १ १९२६ पृष्ठ 268

८ यक्षा की भारत का दन

के समय तक २० पीढ़ियाँ बीती हैं। प्रत्येक गुरु की पीढ़ी का आसन ४० वष (ऋषि होने के कारण) और इन ग्रन्थों का रचना का अनुमानित अंतिम समय ५५० ईसा पूर्व से अर्थात् $४० \times २० + ५५० = १३५०$ ई० पूर्व, जनमजय का समय निकल जाता है जो जजुन का पडपाना था।¹

पुराणों में बवस्वत मनु या प्रलय का समय

पुराणों में बवस्वत मनु से आगेत युद्ध के नायक तक ८५ पीढ़ी के नाम दिए हुए हैं। विश्व भर में एक पीढ़ी का समय १८ वष आँसा और माना जाता है। $६५ \times १८ + १४०० = ३११०$ ईसा पूर्व की तिथि बवस्वत मनु के लिए प्राप्त होती है।

आथभट द्वारा प्रतिपादित ज्योतिष परम्परा के अनुसार ३१०२ ईसा पूर्व कलियुग का आरम्भ माना गया है। ११वीं शताब्दी के पुनर्विशिन द्वितीय के एंगेल अभिनव म ११०२ ईसा पूर्व का महाभारत युद्ध का काल बताया जिसके बाद कलियुग आया। ८००० वष के अनंतराल में यह भुला दिया कि ३१०२ ईसा पूर्व में क्या हुआ था लेकिन यह निश्चित है कि उस वष कोई महत्वपूर्ण घटना घटी थी। बहुत सम्भव है कि उस वष शतपथ ब्राह्मण में वर्णित प्रलय आई थी। प्रलय का नायक बवस्वत मनु था और इस प्रकार दाना उल्लेखों के मिलान से ३१०२ ईसा पूर्व प्रलय की तारीख पता चल जाती है।

बबीलोनिया के रिनाड

यह प्रलय विश्व व्यापक थी और इस प्रलय का ससार की समस्त प्राचीन सभ्यताओं में वणन पाया जाता है। बबीलोनिया में आदि प्रलय का समय भा लगभग ३१०० ईसा पूर्व बहा पाए गए कीताहृत लखा में मिलता है।

जाइने जकबरी

आदिने जकबरी में जजुत फजल सबत् १६५२ में लिखता है कि नगर बल्प (बाह्लीक) का ग्रन्थकार जजु मशर जल-प्लावन की जा तिथि निखता है उसक अनुसार जल प्लावन का ४६८६ वष हा गए हैं। $६६६६ - १६५२ = ५०१४$ विज्रमी सबत् पूर्व + ५७ = ३१०१ ईसा पूर्व।

मलाबार का कोल्लम आण्डु

मलाबार में कोल्लम आण्डु या परशुराम काल प्रचलित है। काल्लम का अर्थ पश्चिमी और आण्डु का अर्थ काल है। इसका आरम्भ परशुराम के केरल जाने पर हुआ था। इसमें १००० वष के चक्र है। एक सबत् ७८७ में चतुर्थ

1 गुरु शिष्य की वंश सूची जो शतपथ ब्राह्मण साखाययन आरण्यक और बृहदारण्यक उपनिषद् में दी गई है का सूक्ष्म अध्ययन करके डा० अलेक्जर ने महाभारत युद्ध का समय लगभग बताया है। - डा० पुलकर एनके एण्ड पुराणम पृष्ठ 47-49

चक्र का प्रथम कोल्लम वष था। इसका आरम्भ अर्थात् परशुराम या उक्त वंशज का करल में आगमन ३००० - ७४७ = २२५६ शक पूर्व हुआ। तथा प्रलय के ३१०२ ईसा पूर्व की तिथि मानने से परशुराम का समय पुराण-वशानुक्रम के अनुसार लगभग २६६० ईसा पूर्व जाता है। (i) परशुराम जन्म-दीर्घायी के। (ii) उनका समय मैन जात्र माय हर पीढी की जागत १८ वष से लगाया है जा कमती उनी हा सजता है और (iii) साठ चार हजार वष के अंतराल में १२०-२०० वष का अंतर जय नहीं रखता।

‘सुमतित्र’ का प्रमाण

नेपाल के रागुण ५० हमराज शमा के पास एक ग्रन्थ सुमतित्र है। यह ग्रन्थ सन् ५७६ के आसपास लिखा गया था। उसकी एक प्रति ब्रिटिश म्यूजियम में भी है।¹ उसमें लिखन की तारीख वर्णित है— युधिष्ठिर राज्याद २००० नद रायाद ८००, चन्द्रगुप्त राज्याद १३२ बुद्धजन्म राज्याद २६७ वष, शक राज्याद ४६८। शक सवत् सन् ७८ से आरम्भ हुआ सा ग्रन्थ लिखा गया ७८ + ४६८ = ५३६ ई। इस हिसाब से युधिष्ठिर का राज्यारोहण २००० - ५७६ = १४२४ ईसा पूर्व हुआ।

वेद वेदागो का समय

यदि हम वेद वेदागा पर विचार कर ता भी यह कालक्रम कसौती पर खरा उतरता है। इसके लिय हम नीचे में चलें।

बुद्ध और महावीर छठी शताब्दी ईसा पूर्व के हैं। बौद्धा और जना न उपनिषदा और वेदागा का निदेश किया है इनमें पता चलता है कि उनसे पहले व लिख जा चुके थे। उपनिषदा को लगभग आठवां शताब्दी ईसा पूर्व में रखा जाता है। उसी समय यास्क ने वेदा के जय जानने के लिए प्राचीन निघण्टु का आधार पर अपना निरुक्त जोर निघण्टु रचा। उसके समय में ही वेद मन्त्रा का जय बठिन हो गया था (समय बातने के कारण) यहा तब कि जमा यास्क ने अपनी पुस्तक में उद्धृत किया है कि उसमें पटन के एक निघण्टुकार ने यह निघ मारा कि वेद निरर्थक है।

उपनिषदा से कुछ पहले आरण्यक और कल्पसूत्र आदि लिखे गए थे। उनसे पहले ब्राह्मण लिखे गए थे और ब्राह्मणा से पहले वेद एकत्रित किए गए थे। हरक में १००-२०० वर्षों का समय देकर हम १६५० ई० पू० के पास पहुँच जाते हैं जो पुराण के अनुसार महर्षि वेदव्यास का समय है।²

1 नेपाल का कालक्रम विन्डर उड़ीसा रिस्च सोसायटी का जनस भाग 22 अंक 3 पृष्ठ 191-95

2 डा० भगवन शरण उपाध्याय प्राचीन भारत का इतिहास पृष्ठ 36-45

१० यक्षा की भारत का दन

जठारहवा सदी का प्रमाण

सर विलियम जोम व गुर प० राधानाथ शमन ने एन पुस्तक 'पुराण अथ प्रकाश भागवत पुराण व आचार पर लिखा थी। एमम भागवत मिन' जा किसी गास्थामी का रचित था वा एन श्लोक लिया है कि भगवान बुद्ध व प्रगट हाने स १००२ वष पूव कलियुग तगा था ।

मय सभ्यता का कलण्डर

कलण्डर रयन का सत्रमे पहला साभास्य अमरीका का कनासिनो मय सभ्यता का है। उनकी लम्बी गिनती का कलण्डर एक शून्य तागद्य स जारम्भ होता ह जो गणना करने पर ३११३ दसा पूव की तारीख पर पहु चती है।

ज्योतिष का दूसरा मत

ज्योतिष के हिमाय स दा मत भारतीय कााक्रम के विषय म प्रचलित हं। एक तो प्राचीन परम्परात्मक मत ३१०२ ई पू से कलियुग का जारम्भ हुआ का समयक है। दूसरा मत कलियुग का आरम्भ चौत्हवी शतादी इमा पूव मे होन का समयक है। इस मत के कुछ प्रमुख विद्वाना क नाम है— श्री एस वी राय १४८६ इ पू श्री एस डी शर्मा ११६७ ई पू श्री कालबुक १३२६ इ पू डा जार पी पोद्दार १८२२ ई पू आदि।

लोहे का मिलना

रायचौदरी के एम मुशी प्रभृति ऋतिहामकार महाभारत युद्ध को जाठवी सदी ई पू म मानते ह कयाकि एमम लार व अस्ता का वणन ह जोर लोहे का प्रयाग भारत म १००० ई पू क पाम हाना खुदाई म मिला था। किन्तु जय अतरजीघटा भगवानपुर जादि जतव स्थाना म खुदाई म लोह व मिनन स यह समय १४०० ई पू स पहल चला गया है।

टायनोसियस का प्रमाण

यूनानी लेखवा न चन्द्रगुप्त मौर्य को टायनोसियस का १२३ वा पीनी म धताया है। मेगास्थनीज द्वारा वर्णित प्राचीन भारत पृष्ठ ११५ पर यह उद्धरण है— उस (वक्स) म सिक्कर महान तक ६ ४५१ रुप ३ माम गिनाय जाते ह। इस बीच म १२२ राजाजा न राज्य किया। यह मन्महापाध्याय काण न हिंदू धमनास्त्र भा ३, पृ २०१ पर उद्धृत किया है। पिना न १२८ राजा प्रतापे हैं। मरिडव द्वारा अनूत्ति दूसरा शती ईमधी की एरियन की दृष्टिा पृ २०३ म उद्धरण है— टायनोसियस स सण्काटस तक भारतीय १२२ राजा गिनते हैं। टायनोसियस किसी ऋद्र का नाम था जम वरम भी था। दद्रा का स्वण युग प्रलय स पहल था। प्रलय न उनका शक्ति ताड दी था और मिनो जुली मानव ससृति बनी जा। एक पाती का जामा २० वष लगा कर १५२ X २० + ३२२

ई पू चन्द्रगुप्त को राज्याराहण की तारीख मिलाकर डायनासियस द्वात्र का समय लगभग ३३८३ ई पू (सौ दो सौ बष इधर उधर) है ।

प्राचीन कालक्रम

इस प्रकार हमार पुरा इतिहास का कालक्रम ठीक बँठ जाना है । मसार की सभसे पुरानी तीन सभ्यता ह— भारतीय, मिस्री और मसापोटामियन । इनम स दा म प्रलय की तारीख ३१०२ ईसा पूब है । जल ऊपर चन्ता है सारा समतल जल म निमग्न हो जाता है । बवस्वत मनु अपन साथिया के साथ पवता म यश नगरी म शरण पाता है । यही भारतीय इतिहास का सभ्रानि कान है । जतक ससृटिया ब जन एव जगत् शरण लेने हैं । और एव नई ससृति जम लती है— सबकी अच्छाइयाँ लेकर विशेषपर यश ससृति स प्रभावित— जा मनु क कारण मानव ससृति नाम स प्रसिद्ध होती है ।

इस आधार पर हमार इतिहास के हर चक्रवर्ती और सावभाम गजा का समय सरलता से लगभग निश्चित किया जा सता है —

लगभग ३१०२ ई पू	बैवस्वत मनु	
, ३०१० ,	ययाति	(पात्रवी पीढी)
„ २७४० ,	भाघाता	(थीमवी पीढी)
„ २४४२ स	जजुन कातवीय अगस्त्य,	(इनत्तामवी स
२५०० ई पू	बसिष्ठ, विश्वामित्र जमदग्नि,	(ततीसवी पीढी)
	परशुराम और हरिश्चन्द्र	
„ २२५० ,	सगर	(४१वी पाढी)
„ २३०० „	दुष्यन्त और भरत	(८८वी पीढी)
„ १६३० ई पू	राम	(६५वा पीढी)
„ १६०० „	ऋग्वेद का सुनाम और	(६८वी या
	दशरान युद्ध	६६वी पीढी)
„ १४२० „	महाभारत	(८८वी पीढी) ^१

१ इसका क्रमबद्ध इतिहास पढ़िए— अरण भारतीय पुरा इतिहास काश् ।



सुसंस्कृत और समृद्ध यक्ष जाति

भारतीय तान में यक्ष और जारो पूजा किसी समय सबसे ज़रूरी कली हुई थी। एक ओर यक्षा का उत्पन्न ऋग्वेद यजुर्वेद अथर्ववेद, ब्राह्मण उपनिषद्, शुद्धमूल पुराण जातक दशनिनाम पालि के जय ग्रन्थ जन आगम माहिन्य भाष्य त्रुणिकथा संहृत के अनकानेन कायो और यक्षा ग्रन्था में जाता है, दूसरी ओर आज भी अनेकी पूजापगत से गुजरात सिंध, विलाचिस्तान तक और हिमालय से कमाटुमारी पर्वत वीर वरह्य के रूप में कली हुई है। इस प्रमुख जन जाति के ऊपर सबसे पहले डा० आनन्द कुमारस्वामी ने यक्ष नामाग्रन्थ दो भागों में लिखा था। पहला भाग १९०८ में और दूसरा भाग १९२१ में छपा था जिनमें जनक चित्र भी थे। इस स्टडी को जामे किमी ने नहीं बनाया।

एक समय यक्ष सबसे प्रमुख जाति मानी जाता थी। जब देव जाति का मान्दित्य प्रकाशित हुआ तो यक्ष को दना दिया गया। परन्तु जसा हम जामे देखते जाइ इन्द्र अग्नि वायु का कोई नहीं पूछता और यक्ष जनजातिके देवताआ कुंवर गणेश स्वयं देवता लक्ष्मी ने एकछत्र साम्राज्य स्थापित कर लिया है।

यक्ष का पाल में यक्ष और प्राकृत में जकष कहा गया है। लोक में इतने जाय जयया शब्द प्रचलित है। (शिमला का जाय का टिन्ना और रियाणा का जायन नगर क्या यक्षों से सम्बन्धित है?) यक्ष शब्द की उत्पत्ति के विषय में बहुत मतभेद है। रामायण के अनुसार प्रजापति ने जल उत्पन्न किया और उगकी रक्षा के लिए कुछ सत्त्व बनाए। उनमें से कुछ ने यक्षों का वस्तव्य अपना बताया। ऐसा महान बात यक्ष हुए।¹ कुछ ने वय रक्षामि का वस्तव्य। वे रक्ष या रा इस कहलाय।

यक्षों का अर्थ कुमारस्वामी ने खाने वाला या गटनन वाला बताया परन्तु वह भूत और यक्षों में गटुमटु कर गए। बल्कि यक्ष धानु का जय भाजन न हाकर पूजा या रिसा का सम्मान करना है। वीथ यक्ष धानु में यक्ष शब्द उनात हैं जिमका अर्थ हुआ यजन करने योग्य। तिल्लेश्वर बल्कि यक्ष का पन्थ से सम्बन्ध बताया है जिसका अर्थ है मान दना।

वास्तव में हम उल्टा चलते हैं। संहृत को पुराना भाषा मानकर उसका अर्थ दान का प्रयत्न करने हैं जा जसा हम अपने भाषा और यक्ष के अध्ययन में

लिखायेंग, निरयज्ञ है। असली यज्ञ किरात भाषा का यक्ष या जक्ख है जिसे मुसृष्ट कर यज्ञ बनाया गया। किरात शब्द यक्ष या जक्ख का अर्थ अभी हम मालूम नहीं।

यज्ञ की उत्पत्ति के बारे में चार मत हैं —

(१) ब्रह्मदेव के सकेत से यक्षा की उत्पत्ति हुई।

(२) कश्यप ने उपासना के लिए यज्ञ उत्पन्न किए।

(३) यक्ष प्रणेता के पुत्र थे।

(४) जैसा हम पहले कह चुके हैं प्रजापति ने जल और प्राणी का निर्माण किया। उनके संरक्षण के लिए उनमें मानव से ममान जीव उत्पन्न किए। उनमें से कुछ ने कहा “वय रक्षाम।” व राक्षस हुए। जिन्होंने कहा “वय यज्ञाम” वे यक्ष हुए।¹

वैदिक साहित्या में यक्षा को अद्भुत सुंदर स्वरूपवान् महान् और पुजारी देव माना गया। उनमें ब्राह्मण में उपनिषद् में बौद्ध साहित्य में, कहा नहीं है हर वैदिक देवता का यक्ष कह कर पुकारा गया है। आम चल्तकर बुद्ध और महावीर को भी यज्ञ का सम्मान दिया गया है।

ऋग्वेद में उनके विलक्षण रूप का वर्णन है— ह मित्र और वरुण तुम्हारी वे प्रजाए सब बुद्धि से अमूर्च्छित हैं जिनमें न कोई बिचित्र आश्चर्य और न यक्ष देखा जाता है।” दूसरे मंत्र में कहा गया है— ह अद्भुत शक्तिवाले मित्र और वरुण, हम अपने शरा में यज्ञों का आविर्भावन देखें।²

यह अपने से सभ्य पड़ासी जन के प्रति आदर और आश्चर्य का भाव था। एक अर्थ सूत्र से पता चलता है कि कुछ देव पथभ्रष्ट होकर यज्ञ की मायता मानने लगे थे और उनमें जा मिले थे। यदि कोई पड़ानी या हमारा सम्बन्धी यज्ञ सदन (स्थान) में जाता है तो वह जग्नि तुम नहीं उसके यहाँ छिपकर मत जाना।³ यक्षा को नीचा दिखाने के लिए एक मंत्र में जग्नि को इतना शक्ति शानी बताया है कि लोग उसे यक्षा का भी अध्ययन मानने लगें।⁴

यक्ष शब्द ऋग्वेद अथर्ववेद ब्राह्मणों तथा उपनिषद् में आया है। उसमें अर्थ कुछ भयानक या अद्भुत है या जादूगर या अदृश्य वैदिक देव शत्रु।⁵ ऋग्वेद ४ ३ १३ अग्नि! यज्ञ से सबध न रखो ५ ७० ४ हे सबशक्ति मान् देवता! कहा हमें यज्ञ न मिल जाय। ७ ५६ १६ या इहो यक्ष का देख पाना क्याकि यक्ष अदृश्य है, इस उल्लेख है। ७ ६५ २ तथा ८८ ६, और शीघ्र निवाय २ २०४ में यक्षा का उल्लेख है। वरुण यक्ष कहा गया है। अथर्व

1 भारतीय संस्कृति कोश (मराठी) खण्ड 7 पृष्ठ 591

6 यज्ञ 2 पृष्ठ 1

2 7।6।5

4 ऋग्वेद 4।3।13

3 5।70।4

5 ऋग्वेद 10।88।13

२१ २ २४ म भी यथा का उत्तर है।⁷ १० ३ २८ जयवन्त म वरण, ग्रह अथवा प्रजापति के संबध म कहा गया है एव मन्त्र यथा, मृत्वि मध्य म जनता म तपसनिरत उमी म समस्त देवता निहित जग तन म पड का शाखा ।

य म वनस्पति का स्वामी है।⁸ गापथ १ १ तन्निरीय ३ १० २ १ ब्राह्मणा म उत्तर है— म तप वरन यथा वन गया।⁹ वृहदारण्यक उपनिषद् ५ ८ म मन्त्र गया है— जा महान् यथा का आन्विजमा जानता है कि ग्रहा मत्य है— व म विजय प्राप्त करता है। वेनापनिषद् २ जमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ४ म भी यथा का उत्तर है।¹⁰

यथा दृच्छान्पधर है त्यानु तथा मन्त्रायाद्वा है। वा म द्वाग्पान (पुण्यजन) मन्त्र गया है। य थापाग्न्या के रक्षक हैं। गुण वन्ता ४०० ईमवी म वृहतायत म वर्णित गणना भा यथा की त्रिस्व ना देवता है।¹¹

कुवेर मुह्यपति है। कुछ यथा स्वद क अनुचर हैं जिम वती-वहा गुन् कहा गया है।¹²

कुवेर मोत को मरम पान पिघलान वाता था। मदुरा की मीना की पहा कुवेर का पुत्री था यतिणी हूँ। मातृवा, जागिनी डाकिनी इत्यादि स्त्री दवना यथा म संबधिन है।¹³

यतिणी अस्त्रमुषी जर्थात् जम्बमुषी कही गई है।¹⁴ बौद्ध साहित्य म इद्र मी यस्त्र कहा गया है।¹⁵ बौद्ध महावक्त्र म लका के आन्विवासी यथ्व कहे गए हैं।¹⁶ सताना का विश्वास है कि अच्छ आदमी मरकर वृथ बनते हैं।¹⁷ (ऊपर वृदा म यथा का संबध बताया गया है।) यथा वेदी आयतन चत्या पड के नीचे पात्र रखकर ही धन जाना है। संभव है महाभारत १२१ २१ म वर्णित चाण्डान मन्त्रि जिमम मूर्तिया तथा घटा का धनन है यथायतन ही था। यथाघ दन चत्या का पवित्र वृथ है।¹⁸

यथा वृथ देवता कह गये है। द्रविड तथा सुमेर म भी वृथ से सतान कामना की जानी थी।¹⁹

चत्या पर यथा यधव नाग का पुष्पाचन किया जाता था।²⁰ यथा तथा यथा की वृत्ति मन्त्रि मर मर है। यही मनु ने भी कहा है।²¹ (यथावाद

7 वही पृ० 2

8 वही पृ० 2

9 वही पृ 3

10 वही पृ० -

11 वही पृ० 7

12 वही पृ० 8

13 वही पृ० 9

14 वही पृ० 10

15 वही पृ० 11

16 वही पृ० 13

17 वही पृ० 14

18 वही पृ० 17

19 वही पृ० 32

20 वही पृ० 24

21 वही पृ० 25

भक्तिवाद है °) कुवेर भागवत कहा गया है (महाभारत)। उस बुद्ध भी कहा गया है।³ यश मूर्ति मदिरा को देखकर गध, फूल वस्त्र चढाया जाता था। घटाना नौला नाटन तीव्र मन्त्रिग धम, पशु-वृत्ति का भी उल्लेख है।⁴ शिव गकर कान्तिदेय इत्यादि महामायूरी सूची में यश कह गय है।⁵ यश भी बुद्ध की भानि पद्मपाणि कहा गया है। बाद्ध वज्रपाणि जत्र इद्र से भिन्न मिलता है तत्र वह यश का हा वणन है।⁶ वज्रपाणि यश है एसा गाजार चित्रा में मथुरा में मिता है।

वदिन कान व अतन में देवा ने यशा का सम्मान व आमन में उताण कर भय और घृणा की वस्तु बना लिया। यह सब जलन के कारण था सूक्ता में साफ भनवता है। '(हृ जग्नि) किसी चापलूस ठग चानराज पडासी आनि के यश में सहगमन मन करना। —ऋग्वेद ५ ७० ४ 'जा महान् शक्ति के देवता हमारो किसी यश से पाला न पडे। —ऋग्वेद ७ ५६ १६ यश का अदृश्य बताया उस दुभाग्य वाने वाला प्राणी कहा। यह स्वाभाविक है जत्र अपने जन दूसरे जन से अधिक् प्रभावित होन लग ता हर प्रकार का बुरा भला कहा जाता है।

अपनी पडोमा जनजाति असुरा स लडन के निय पहले यश जाण जाय गणा से सनायता मागी गई। स्वप्न के नंतृत्व में यक्षा व एत भाग न बय राशम कहकर देवा का सनापनित्व करके असुरा का दुगी तरह हराया तो वह यश का भाग राश या राशम आन्त्र के प्राणी होगय, स्वप्न को स्वप्न पद पर भी चुन लिया गया। लज्जित राशमा की शक्ति वत्न पर उनम भी लडाई हागई। व भी असुरा व पयायवाची होगए। वेद के एक स्थल पर स्वप्न का चारा का राजा बताया है। यश शीर राशस सम्मान व पद स गिर गग।

किन्तु यह कही कही है। धन्वि साहित्य में यश के सुन्दर रूप का अनन्त स्वता पर वणन है। ऋग्वेद में⁷ उल्लेख है— 'जो मरुत्तदव जशवा व समान धग में गमन करत ह वे य ता व समान सुन्दर सुशीभित हात है। शृह्य सूत्रा में कहा है — 'वन्वि चरण में नय प्रवश करता हुआ ब्रह्मचारी इस प्रकार की भावना कर कि मैं भी परिपद् की दृष्टि में यश व समान प्रिय बनू। बाद के साहित्य में यश के समान मुन्दर लगन वाल की कल्पना जगह जगह पाई जाती है। किसी भी अपरिचित मुन्दर नागी का देखकर पूछा जाता था— यथा तुम यशी हो ?⁸ जमिनीय ब्राह्मण में यश का 'अद्भुत जीव बना गया है।

महाराष्ट्रिया में यशा का वणन अधिन है। रामायण में देवता का आशीर्वाण

2 वही पृष्ठ 27

24 वही पृष्ठ 27

26 वही पृष्ठ 30

23 वही पृष्ठ 27

25 वही पृष्ठ 27

27 7 56 16

28 महाभारत आरण्यक पर्व 50 13 61 114

या जन्ति त्व देया जा सन्ता है, जिनका जल स निक्ट सबध है।¹ यक्ष तथा मियुन का बहुत सबध है।² मिलिदपह म देवमप्रदाया की सूची ली गई है जो इस प्रकार है मणिभद्र, पुराणभद्र, चदिम, सूय्य, सिरि (श्री) देवता कलि दयता (५ १ नानी), शिव, तथा वामुदेव और ये समस्त सप्रदाय गुप्त है। इनके रहस्य सप्रदाय के लोगो को ही बताया जात है, तथा बाहर वाला ने छिपाये जाते है। सिन्ली टीकाकारा न इन देवताजा के उपासका को भक्ता की श्रेणी बताया है। मनी उपनिषद् म भी (१ ४, ७, ६ तथा ८) यक्ष देव सूची म गिनाये गय है।³ कुवेर का लक्ष्मी से भी सप्रध बताया गया है (महाभारत, ३ १६८ १२)⁴ कुवेर की पत्नी भद्रा (महाभारत १ १६६ ६) तथा त्रिद्वि (म० १३ १४६ ४) भा कहा गई है।

शनपथ ब्राह्मण म वरुण के गधवों का उल्लेख है। गधन सोम के रश्म कह गये है (शनपथ ब्रा० ३ ३ ३ ११ काण्व शाखा)। द्रुद्र गधवों का विरोधी बताया गया है (ऋग्वेद ८ १ ११ तथा ६६ ५)। गधवकृपानु सोमपान है (ऐत ब्रा ३ २६ ३ २)। यद्रोध, उदुवर, जश्वत्थ प्लक्ष आदि वृक्ष गधवों तथा अप्सराजा के घर कहे गय है (यजुर्वेद ३ ४ ८)। यक्ष और नागा को अमृत माम का रश्म कहा गया है। वरुण का वाहन मकर है। कामनेतन गगावाहन, यक्ष यशी वाहन का उल्लेख है।⁵ यक्षा का मकर स विशेष सम्बन्ध है। जमराजती के एक चित्र के दृश्य मे एक यक्ष न मकर का दना लिया है। दूसरा और तीमरा यक्ष मकर को बमन खाने स गेक रहे ह। चित्र के दाहिने हाथ पर एन आदृति है। यह विचित्र पशु है। इसका मुख गरुड जसा है। माटी चाच तथा शरीर सिंह जसा है। इसका समय लगभग २०० ईसवी माना गया है। गरुड का सप्रध भी इही जातिया के सबध म आता है। सुपण श्यन अनव नामा मे गरुड को सम्बाधित रिया गया है।⁶

यक्ष जाति के अय नाम

यक्ष जाति का सबसे महत्वपूर्ण पर्याय ब्रह्मा है। किरात प्रजाति की ली जनजातियाँ जो दक्षिण का और बने उनका नाम था वोद 'ब्रमा' या 'भाट व्रद्ध'। भाट तिबत और भूटान म वस हुए थ। भूत उही का पर्याय था। यक्ष पर उनकी छाया बड़ी लिखाई दती थी। यक्ष पर ही पर के निशान म आगिरी ली उगतिया के निशान जल्दी मिट जाते थे मा भूत का तीन उगतिया के पर याता बताया गया है। कुछ दर म वे भी गायन हो जात थ, केवल एटा का गीता फना हुआ रह जाना था, सो जनता म भूत उल्ले पर बाना और रिगान तयव

1 वही पृष्ठ 16

2 वही 23

3 यक्ष 2 पृष्ठ 6

4 वही 4

5 वही पृष्ठ 35

6 यक्ष 2 चित्र 37

वाला प्रसिद्ध हुआ। यथा जानि ब्रह्म जानि का दूसरा नाम था। सम्भवतः इसी कारण बौद्धों ने यथा और भूता का एक साथ बणन किया है। इनक नता कुबेर ने सत्तार म सबप्रथम व्यापार आरम्भ किया और सोना चाँद निकाला। ब्रह्मपुर और ब्रह्मा (बरमा) (Burma) म य र जानि का नाम जकित है। इम बष 1989 म ब्रह्मा सरकार ने अपन देश का नाम बदलकर मय-मा (ब्रमा) कर दिया है।

महाभाग्य म यथमह (आज तक मनाया जाता मेला जिसम यथा का पूजा जाता है) क निये ब्रह्ममह शब्द आया है। एक नामक राक्षस के मरने पर एक चक्रा नगरी मे सत्र चारा बणों क निवासियो न भितरर ब्रह्ममह का जापोजन किया था। विराट दश म भी ब्रह्म का उतूत बडा उमब मनाया जाता था जिसका पूरा प्रबध राजा विराट करने थ।

आज भी लोक म यथा पूजा का वीर बरह्य पूजा कहा जाता है। काशी जनपद म हरिकेश यथा का बडा स्थान आज हरनू ब्रह्म क नाम म विख्यात है।

अथर्ववेद म यथा के निवास स्थान को ब्रह्मपुर कहा गया है। इम पुरी की विशेषता यह थी कि इसम अमृत का निवास माना जाता था। य र का सम्बन्ध अमृत स है इसा कारण ब्रह्मपुरी को अपराजिता भी कहा गया है। माना गया है कि इस पुरी म हरिण्य का वीश था। कुबेरपुरी म सुवण का अमथ वीश माना जाता था। इम ब्रह्मपुरी म विशान शरीर वाले यथा रहन थे।¹

'महत् विशेषण भी यथा क निय प्रयोग म लाया जाता था। अथर्ववेद का सूक्त है— महद् यथा भुवनस्य मध्य तस्म बलि राष्ट्र भूता भरन्ति।² (भवन के बीच म कोर् महत् यथा भरा है उसे सभी राष्ट्रघर बलि दन हैं।) अथर्ववेद म ही महद् ब्रह्म महद् यथा के लिए आया है।³ दीघनिकाय म महत् नामक देवता क उपस्थान का बणन है। (भागवत कृत देवनागरी सस्करण पृष्ठ १३) गौतम बुद्ध न महदुपदान या यथापूजा का निरच्छान विज्ञा और भिच्छाजीवा बताया जा जनसाधारण म फली हुई थी।

यथा का तीसरा पर्याय राजा था। इम शब्द का सबसे प्रसिद्ध प्रपाय कालिदास के मघदूत म है जहाँ उसन कुबेर को राजराज अथात् यथा का राजा कहा है।

आत्मविद्या ही का नाम राजविद्या राजगुह्य है जसा स्वय कृष्ण न जनुन स गीता म कहा है—

1 अथर्ववेद 10 | 2 | 29 33

2 अथर्ववेद 10 | 8 | 15

3 अथर्ववेद 1 | 32 | 1 | 4

इदं तु तं गुह्यतमं प्रदक्ष्यामि अनसूयक,
 ज्ञानं विज्ञानसहितं, यत् तात्वा भाषयनेऽणुभात् ।
 राजविद्या राजगुह्यं पवित्रं नन्द उत्तमम्,
 प्रत्यग्भावगमं धम्मं सुमुखं वक्तुमययम् ॥

राजयाग का अर्थ राजाआ द्वारा प्रदत्त ज्ञान नहीं है— राज यक्ष के लिए जगह जगह प्रयुक्त हुआ है— यक्षा का ज्ञान । गीता के चौथे अध्याय में लिखा है कि आदि काल में ब्रह्मा ने यह ज्ञान विवस्वान् का दिया और विवस्वान् ने अपने पुत्र बवस्वत मनु को ।

योगवासिष्ठ¹ में भी राजविद्या का महत्त्व दर्शाया है । और ब्रह्मा का नाम राजविद्या का जनक का रूप में आया है ।

पौराणिक रूप में ब्रह्मा का नाम उस पत्न्य का है जिसका साम्य में महत्त्व और बुद्धि-तत्त्व भी कहते हैं ।²

ब्रह्म की प्रकृति का पत्नी आविर्भाव हुआ ब्रह्मा जैसे सागर में लहर ।

अपारे ब्रह्माणि ब्रह्मा, स्वभाववशत स्वयं
 जातं स्पन्दमयो नित्यम्, उर्मि अबुनिधौ एव ।

(योगवासिष्ठ)

जानका में वर्णित 'स्थापत्य सम्राटा तथा वास्तु विद्याचार्या' को भीय युग में राज तक्ष' या राज शिल्पिन् कहा गया है । क्या राज शब्द उनका यक्ष सम्बन्ध दिखलाना है जो महान् शिल्पी प्रसिद्ध थे ? क्या इसीलिये आज भी घर बनाने वाले को राज कहा जाता है ?

इसी प्रकार महाराज शब्द है जिसका अर्थ है महा (बड़ा) यक्ष । यह भी कुंवर के लिए प्रयुक्त हुआ है । कुंवर का दी जाने वाली बलि महाराज बलि नाम से वर्णित है । पाणिनि ने अपने ग्रन्थ में महाराज नाम के देवता का वर्णन किया है ।³ इस देवता की भक्ति करने वाले भक्त 'महाराजिन' कहलाते थे ।⁴ पालि साहित्य में चारों दिशाओं के लोत्रपाल, चार महाराजिन कहलाते थे । उनमें गन्धर्वों के अधिपति घृतराष्ट्र पूव दिशा के रक्षक, वृभाण्डा के अधिपति विरुद्धक दक्षिण दिशा के रक्षक, नागा के अधिपति विरुपाक्ष पश्चिम दिशा के रक्षक और यक्षा के अधिपति वश्रवण (कुंवर) उत्तर दिशा के रक्षक थे । वस य चारों यक्ष के रूप में ही पूजे जाते थे । भरद्वाज की वर्णिता पर इह वर्ण यताया गया है ।

1 2 11 16 17 18

2 महाभारत शर्तित पत्र अ० 308 वायु पुराण पूर्वार्ध अध्याय 4; अनुगीता अ० 26

3 पाणिनि अष्टाध्यायी 4 | 2 | 35

4 पाणिनि अष्टाध्यायी 4 | 3 | 97

अलक

यक्ष लोच का शासन-केंद्र अत्रकनन्दा पर वसा अलकापुरी था। कुबेर वहाँ के गणपति थे। त्रिमालय में जाज भी अलकापुरी का नामक प्रदेश है। अलकनन्दा की धारा ने इस तीन ओर से घेरा हुआ था। अलकापुरी के निवासियों की आनन्दमय ब्रीडाओं का साधन होने के कारण ही वह अत्रकनन्दा कहलाई। अलकापुरी से लेकर बुगाऊ और गढ़वाल का प्रदेश कुबेर का गणराज्य था। कुबेर की सम्पत्ति स्वर्ग की गरिमा थी। कुबेर के राज्य के एक ओर प्रवेश द्वार हरद्वार था तथा दूसरी ओर सिंधुकोप (हिन्दुकुश) से जमरावती जाने वाला व्यवसायी बग के निमित्त गुला हुआ माग था। दोनों मार्गों पर लगा प्रवेश शुल्क कुबेर को अपरिमित आय प्रदान करता था। इस साधन से उपलब्ध धन राशि उसके धर्म का जग थी।

यक्षों की विशेषताएँ

यक्षा का विशाल शरीर वाला बताया गया है। वे ताड़ के वृक्ष के समान लम्बे होते थे। सबसे प्राचीन शिल्प भारत में यक्ष मूर्तियाँ हैं और वे सब विशाल हैं। वे महाबली होते थे और मृत्यु से न डरने वाले। जग्गिन और सूर्य के समान उनकी कात्ति दमकती रहती थी। यह वणन महाभारत में यक्ष युधिष्ठिर सेवाद के समय का है।¹ इस वप वेदारनाथ की यात्रा में मन्दिर के सामने दो पुरुष दिखाई दिए थे मिकुल इस वणन के प्रतिरूप साठे छह फीट लम्बे चमकते ताम्रवर्णी।

महाभारत के अनुसार ब्रह्मा ने कुबेर को तीन वरदान दिए— अमरत्व धन का आधिपत्य और लाक्षणिकत्व।² इसमें यक्ष की विशेषताओं का वणन है। अमरत्व के वार में जनता में यह विश्वास था कि यक्षा के पास अमृत है जिसे वे अपने भक्ता को प्रसन्न होकर प्रदान करते हैं।

महाभारत में इस अमृत का वणन है— “यह एक प्रकार का पीला मधु है जिसे मक्खियाँ नहीं बनाती। वह घड़े में घाद है मप उसकी रक्षा करते हैं। कुबेर का वह अत्यन्त प्रिय है। जभ (एक यक्ष देवता) के साधक ब्राह्मण कहते हैं कि उस मधु को खाकर मत्य पुरुष अमर हो जाते हैं बृद्ध युवक हो जाते हैं और अधा को नेत्र मिल जाते हैं।³

इसी कारण यक्षा की मूर्तियाँ में उनके बाएँ हाथ में अमृत घट दिखाया जाता है।

उत्तर दिशा के लोकपाल कुबेर घनद करके प्रसिद्ध है। उनके पास सुवर्ण

1 आरण्यक पत्र 297। 10-21

2 258। 15

3 उद्योग पत्र 62। 23-25

का अथाह काश है। अथर्ववेद में उनकी नगरी ब्रह्मपुरी में सुवर्ण का कोश वर्णित है। उत्तर दिशा में ही सुवर्ण का पर्वत मेरु है और हाटक प्रदेश भी वही है। जाम्बूनद स्वर्ण, पपीलिक स्वर्ण और अष्टापद स्वर्ण— तीनों प्राचीन स्वर्ण उत्तर दिशा में पाए जाते थे। प्रसिद्ध यूनानी इतिहासकार हिरोडोटस ने भी हिमालय पर्वत में स्वर्ण की खुदाई का वर्णन किया है। स्वर्ण के कारण ही कुवेर के पीले वस्त्र चमकते हैं। यही संकल्पना विष्णु और कृष्ण के पीताम्बर में आई, साथ ही लक्ष्मी में।

यक्ष की एक अन्य विशेषता उसको तुदियल दिखाने में है जैसे कोई तुदियल व्यापारी बठा हो। वैसे जीवन में चित्रण है। कुवेर सठा का सठ है। हर मूर्ति में उसके ताद दिखाई जाती है। जब उसने गणेश का रूप धारण कर लिया तो ताद और प्रमुख हो गई। चतुर विद्वान वह बहुत है हाथी भी बहुत समझदार कहा जाता है। साथ ही हाथी कुवेर का वाहन भी है, सा उसको गणेश के रूप में बदलने में हाथी का मुख कर दिया गया।¹ वह उत्तर दिशा का दिग्गज (दिशा का हाथी, बुद्धिमान) है। जितने यक्षा की मूर्तियां विभिन्न कालों की आज हम प्राप्त हुई हैं सबका ताद है। हो सकता है अधिक धन होने के कारण एव व्यापारी रूप में बदनाम होने के कारण कुवेर ने गणेश का मंगलमय रूप धारण कर लिया और लक्ष्मी का आरम्भ में कुवेर की पत्नी हान्तर कुपाण काल तक पूजित थी (भारत में प्राचीन मूर्तियां मथुरा संग्रहालय में ईसा पूर्व पहली शताब्दी की कुवेर और लक्ष्मी की युगल मूर्तियां हैं जिनमें लक्ष्मी की मूर्ति के नीचे कुवेर की पत्नी लिखा है) वात् में आज तक यक्षपूजा (दीपावली) के दिन गणेश के साथ जोड़ा बनाती है। आज भी हर कार्य श्री कुवेराय नमः या श्री गणेशाय नमः लिखकर आरम्भ किया जाता है। वह कर नहीं लिखकर में बड़ा तथ्य छिपा है। यह दातक है कि लिपि का आविष्कार भी यक्ष जाति ने किया था। तभी उसका नाम ब्राह्मी लिपि है। महाभारत लिखने के लिए भी वेदव्यास को गणेश का सहारा लेना पड़ा था। आग्नेय, पशुपालक या वृषक अवस्था में मानव को लिखन की आवश्यकता नहीं होती, जब वह व्यापारी अवस्था में आया तभी स्मरण के स्थान पर लिपि-पट्टों की उत्पत्ति पड़ी। मध्य पूर्व की पुरानी सभ्यताओं में भी सबसे पहले फिनीशियन² जाति में लिपि का आविष्कार हुआ जो भूमध्य सागर तट के समुद्री व्यापारी थे।

1 लगभग 100 ईसा पूर्व आंध्र प्रदेश में अमरावती के शिल्पों में एक हाथी के सिर वाले यक्ष की मूर्ति है।

2 फिनीशियन जाति उस जगह की नेटिव नहीं है। वह वात् में आई है परन्तु वहा से यह मिस्र और मेसोपोटामिया के प्राचीन बसनों में नहीं पता। वेत् में कुछ स्थानों पर यक्षों का पुष्पजन बढ़ा गया है। यक्ष के द्वारका पहुंचने पर पुष्पजन राक्षसों से युद्ध हुआ था जो समुद्री व्यापारी थे। साथ ही वेत् में व्यापारी पणि का जगह जगह बसने है। यक्षी शब्द में पणिक (वणिक) पथ्य (मद्रा) पथ्यवत्त (वाठार) आदि शब्द बने।

फलान यक्ष के यहाँ या फलाने यक्ष के चत्प म विश्राम करत और रहते वर्णित हैं। बुद्ध महावीर के बाल म पूर्वी भारत म यक्षपूजा का बहुत प्रभाव था।¹

यक्षो की सम्पन्नता

यक्ष वृक्ष की पूजा करत थे। वृक्षा की उपज, जड़ी, बूटी आदि का व व्यापार करते थे और प्राचीन भारत की सबसे घनाढ्य जनजाति थे।

कुवर उनका राजा था यह उसके पद यक्षराज, यक्षद्र, महाराज, राजराज से पता चलता है। वह उत्तर दिशा का त्रिकपाल करव प्रसिद्ध था। वह शक्ति और उत्पादिता का देवता था और घनागार के निय घनद और वसुद करके पूजित था। उसका निवास स्थान कतास पवत पर जनकमाला या जलनापुरी था जो भव्य प्राचीरा से घिरा नगर था जिसम यक्ष के अतिरिक्त किन्नर मुनि यक्षव और राक्षस रहत थे। बद्रीनाथ से चार किनामीटर ऊपर माणा गाँव है जो भारत चीन सरहद का अतिम भारतीय गाँव है। इसका पुराना नाम मणिभद्रागरी कहा जाता है। इस वष बद्रीनाथ से आगे चलकर जब माणा गाँव पहुँचा तो आश्चर्य चकित रह गया। विशाल लम्बी चौड़ी घाटा ११००० फुट की ऊँचाई पर बसी दोना आर ऊँचे बर्फीले पवता के सिलसिले और सामने टोस खड़ा कलास का प्रतिरूप एक लिबोना पवत जस किमी ३ घाटा की भूमि पर उसे लाकर स्थापित कर दिया हा। उसके पीछे बर्फीले पवत चल गए थे, लेकिन सामने से वह अलग थलग खड़ा था, मानसरोवर के पास के बर्फीले कलाम का प्रतिरूप। जाड़े म वह भी बर्फ से ढक जाता हागा। मरे मन म चौघा— कुवर की जलनापुरी कलास की तलहटी म अलकनन्दा के किनारे। यही असली कलास है। यहा चप्प चप्प पर महाभारत की मुहर लगी है। बद्रीनाथ से १२ किलोमीटर नीचे पाण्डुवेश्वर है गोविन्द घाट का गाँव जहाँ पाण्डु ने अपना शिविर लगाया था और पाचा पाण्डव पदा हुए थे। इम यक्षभूमि का व अपना पञ्च स्थान मानते थे आर बार बार लौटकर आते थे। स्वर्गाराहण भा उठाने यहा माणा से आगे चलकर सतापथ ग्लशियर पर किया था जहाँ से अलकनन्दा और सरस्वता नदिया निकली है जा माणा म संगम करती है।

मानसरोवर और रावण हृद के पास वाले कलास पवत का वर्णन महाभारत म सबसे पहले रावण की शिव की धोर तपस्या के समय जाता है।² रावण न ही उस प्रसिद्धि दी हा शायद दूसी कारण मानसरोवर के पास वाली उसस भी विशाल नील रावण हृद या राक्षस ताल करके प्रसिद्ध है।

1 विस्तार में बचन के लिए देखिए कुमारस्वामी यक्ष भाग 1 ओर 2

2 मुनि का यक्ष के साथ सम्बन्ध है जैसे ऋषि का देव जनजाति और तपस्वी का शिव के पूजकों के साथ है। नारद मुनि करके प्रसिद्ध है वे यक्ष ही हागे धूमने फिरने के शौकीन।

3 महाभारत वन पर्व 139 अध्याय

कुबेर जब भी देव-सभा में भाग लेने जाते थे तो उनके साथ यक्षा का दान रहता था जिन्हें वध्रवण-कायिक-देव (कुबेर के अंगरक्षक) कहा गया है। कुबेर अनेक प्रासादा बना और वाटिकाओं का स्वामी था। चैत्ररथ उसके प्रसिद्ध निकुञ्ज में एक था जिसमें वृक्षा पर पत्ता के रूप में बहुमूल्य मणि लटकती थी और फला के रूप में सुन्दर रमणियाँ। इसी में शायद बाद की अरब दत्तकथाओं के वाक्यांशों के जन्म दिया।¹

यक्षा ने सबसे पहले स्वर्ण खोज निकाला था। बल्कि साहित्य में लिखा है कि कुबेर ने अग्नि और वायु की सहायता से स्वर्ण चमकाया। अर्थात् धौंरनी की वायु से आग बहुत तज करके अयस्क से स्वर्ण निकाला। यही वषण महाभारत में आया है।²

उशीरवीज नामक एक भील उत्तर दिशा में है, जहाँ से सोना निकलता है। हिमालय में वहाँ दो जीभूत (मोने की खानें) हैं। सपना चोरी करते थे। किम्पुरुष जाति के द्रुम नामक राजा का शासन क्षेत्र के उत्तर में जहाँ से सोना निकलता था गुह्यक हाटक की रक्षा किया करते थे। गुह्यक पृथ्वी और पवता पर रहते थे।³

हिरोपेटस की स्वर्ण खाने वाली चोटिया की किंवदन्ती एक रहस्यमय जंतु की आर इंगित करती है। यह असल में तिब्बती नस्ल की जाति (यक्ष) थी। अब भी बहुत से तिब्बती परिवार मिले हैं जो समूहों में रहते हैं माना खोजते हैं और भयानक सर्पों में चमड़े से बना तंत्र अपने को ढकलते हैं। उनमें रमक उनसे भयानक और वनिष्ठ बड़े कुत्ते होते हैं। वे लम्बा गोट की कुदाना से खुर्द करते हैं क्योंकि सोना उस स्थान पर बहुतायत से पाया जाता है।⁴

यक्ष रूप बदलने वाले

प्राचीन साहित्य में यक्षा को मनचाह रूप धारण करने वाला बनाया गया है और यहाँ राक्षस को बनाया गया है। जसा रूप धारण करना चाहें वे कर सकते थे। यह उनका मुघोटा लगान का व्यंग्यकार बनाना है। आजकल भी दक्षिण में कथाकवि नृत्य में मुघोटा लगाकर नृत्य किया जाता है इसी प्रकार पूरु भारत में भी (उड़ीसा का छऊ नृत्य)। यक्ष गंधर्व आदि आमादप्रिय जाति थी। साथ ही मुद्ग के समान भयंकर आकृति का मुघोटा लगाकर शत्रु की आधी जान ता बम निकालते दान थे। आज भी विजयराजी आदि त्यौहारों पर पूरु भारत में तरह-तरह के मुघोटे बिकते हैं जिन्हें बच्चे लगाकर बहुत मुग्न होते हैं।

1 कुमारवामनी यक्ष पृष्ठ 6

2 हॉरिफिम्स एन्डि माग्नाजोत्रा पृष्ठ 146

3 एन्डि माग्नाजोत्रा पृष्ठ 145

4 इन्डिफिन्डि एन्डि विन्डिगड आन्डि आन्डि वीरन्डि— इन्डि इन्डि पृष्ठ 173

गुह्यपति

बुधेर को गुह्यपति भी कहा गया है। गुह्य एव जाति थी जो यथा व साथ अलका म रहती थी। इह बुधेर के पञ्चान वा रक्षन कहा गया है। बुधेर के उडत महल को गुह्य सहारा देन वाल थ।

निर्माता

यस निर्माण करन वाल भी प्रसिद्ध थ। बुधेर व प्रासात् धनागार वन निक्क सब विख्यात थ। इनक भवन चर्य जायनन प्रसिद्ध थ। राजनरगिणी के अनुमार अशोक के पुत्र जालीन व वशज दामात्तर द्वितीय न जल-प्लावन शात करने क लिए यथा की सहायता ली— यस हिमालय की पर्वतीय जाति थी। वे निर्माण कला म दा थ। शक्तिशाली थे। उनका शरीर पुष्ट था। व शारीरिन् परिश्रम सुगमतापूर्वक कर सकते थ। वास्तु एव स्थापत्य कला म उहाने विशेषता प्राप्त की थी। हुएन त्सांग न पाटलिपुत्र व ध्वसावशपा के वार म लिखा है नि य भवन यथा क बनाए हुए थ।¹

दुबलता

यस लाह और पखिया-ताड स डरत थ। इसस यह दन्तकथा भी ठीक ठहरती है— काशी यथा की नगरी थी। शिव के गण भी काशी म आ गए। दाना म भगडा हुआ। शिव को मध्यस्थ बनाया गया। उनके नियय देन पर यथा काशी स बाहर चल गए। शिव को मानने वाली बहुसंख्यक जनजातियाँ (गण) य जिनम नागा के जनेन गण थे। य मध्य भारत और नदिया के विनारे फल हुए थ जहा लोहा पाया जाता है। लोहे व वारण ही यस उनस हार और काशी त्याग गए।

यथा का विलास

भारतीयों के प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्य म यथा का अचण्ड विलास विखरा पडा है। यथा मूर्तिया म सन सपोनि है। कालिदास के समय म भी काम पूजा तथा यथा का काफ़ी उल्लेख मिलता है। मथुरा की मदिरा पीती यथा मूर्ति बोधिसत्व व उस रूप की बराबर याद दिला देती है जिस दण्डकर एक विवदती के अनुसार स्वय वसिष्ठ चमत्कृत हो गए थ।²

वाद म वज्रयान क काल म बुरुकुला और महावाल के अतिरिक्त जभल की पूजा का भी महत्वपूर्ण स्थान हो गया। जभल धन का देवता है वह प्रसन बठा है। उसने हाथ म 'वाला है।³

1 Beal S *Buddhist Records of the Western World from the Chinese*
of Huen Tsang London 1984

2 रांगेय राघव

म चीन भारतीय परम्परा और इतिहास पृ० 456

3 साधनमाला जिल्द 2 पृ० 573-74

आज

किरात दक्षिण हिमालय में अब किराति या किराती कहलाते हैं। नेपाल की ददुकोसी और बरकी नामक नदियाँ के बीच किरात देश है। अब खभू, लिबू और याखा (यक्ष) जातियाँ इसी में परिगणित होती हैं। दनौर, ह्यु, यामि जातियाँ भी किराती बनती हैं, वैसे खभू, लिबू और याखा अपने को ऊँचा समझ कर इस बात से इन्कार करते हैं।¹

कुछ परिशिष्ट

यक्ष कौन है ?

यह क्या केनोपनिषद् से ली गई है।

कथा है कि एक बार देवताओं और दानवों में घोर युद्ध छिड़ गया। अंत में जीत देवताओं की हुई। अग्नि, वायु और इंद्र अपने-अपने दूसरे देवताओं से अधिक पराक्रमी और शक्तिशाली मानने लगे। उनको गव हो गया कि इस जीत के कारण वही है। सबसे मथ ब्रह्म ने उनके इस गव को ताड़ लिया और उसने अपनी शक्ति का देवताओं के अंतर से घात लिया। उनका सामने अब ब्रह्म एक यक्ष के रूप में खड़ा था।

देवताओं की समझ में नहीं आया कि यह यक्ष कौन है ?

अग्निदेव ! आप जानते हैं कि यह कौन है ?

अग्नि दौड़ कर यक्ष के सामने पहुँचा। यक्ष के पूछने पर उसने अपना परिचय दिया कि मैं अग्नि हूँ।

तरी क्या शक्ति है ? तू क्या कर सकता है ? यक्ष ने पूछा।

पृथिवी पर जो कुछ भी है उस जला कर भस्म कर सकता हूँ।

अग्नि के सामने यक्ष ने एक तृण रख दिया। अच्छा तो जलाइए।

अग्नि ने अपनी सारी शक्ति लगायी उस जलाने में पर उस वह नहीं जला सका और वहाँ से अपना सा मुहूँ त्रिय लौट आया। यक्ष का पता लगाना उसने लिये संभव नहीं हुआ।

वायुदेव ! आप पता लगा कर आइए कि यह यक्ष कौन है देवताओं ने वायु से कहा।

वायु वहाँ पहुँचा।

'तू कौन है ? यक्ष ने पूछा।

मैं वायु हूँ।

क्या शक्ति है तुम्हें ?

मैं चाहूँ जिस वस्तु का उड़ा ल जा सकता हूँ— बड़े बड़े पहाड़ों का भी।

अच्छा तो हम तिनके को तनिक उड़ा दो।

वायु ने अपना सारा बल लगा लिया पर वह तिनका टुकड़ा से मस नहीं हुआ। वह भी निराश लौट आया बिना हाँ जाने कि वह यक्ष कौन है ?

अब इंद्र की बारी थी। देवताओं ने उस भेजा इस विश्वास से इंद्रदेव अवश्य ही यक्ष का पता लगा लगे।

इंद्र वहा पहुँचा, तो यश अतर्धान हा गया। न जाने कहा छिप गया।

इंद्र अतरिक्ष में यश को खोजने लगा, पर वह कहा था। धाज में उमे एक स्त्री दिखाई दी परम सुंदरी और ऐसी शुभ्र जैसे हिमलता हो। उमन अपना नाम बतलाया 'उमा हैमवती।

इंद्र ने उससे पूछा, "कौन था यह यश ?

'यश यह ब्रह्मा था। तुम दवगणा की शक्ति असल में ब्रह्म की ही शक्ति है तुम्हारी अपनी नहीं।

देवताओं की जाँचें खुल गई। उनका गव चूर चूर हा गया। उमा ने उनको सुभा दिया कि सारा वन और सामर्थ्य तो वामनव में ब्रह्म का ही है।

यश पर डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के विचार

ईसवी सन् के आरम्भ में "शताब्दिया के परिचित यशों और गंधर्वों ने भारतीय धर्म साधना को एकदम नवीन रूप में बदल दिया था। इन आर्योत्तर जातियों के उपास्य बरुण थे कुबेर थे, वज्रपाणि यशपति थे।'¹

यश मणिया और रत्ना का साधन जानते थे, पृथ्वी के नीचे गड्डी हुई निधिया की जानकारी रखते थे।'²

महाभारत में ऐसी अनेक कथाएँ आती हैं जिनमें सतानार्थिनी स्त्रिया वृषा के अपदेवता यक्षा के पास सनान कर्मिणी होकर जाया करती थी। भरद्वाज बोधगया, साची आदि में उत्कीर्ण मूर्तियाँ में सतानार्थिनी स्त्रिया का यश के सान्निध्य के लिए वृक्षा के पास जाना अंकित है।'³

'आय इस दश में उसी तरह नवागतुक्त थे, जिस प्रकार शक दूण आदि अयाय विदेशी जातियाँ समय समय पर आयी और अपने सार आचार विचार के साथ यही की हो रही। उपनिषदों का बहुधा विचारित 'अध्यात्मवाद' आय की अपभ्रंश आर्योत्तर अधिक है। वर्तमान भारतवर्ष का धर्ममत अधिकांश में आर्योत्तर है। (हजारी प्रसाद द्विवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली खण्ड ६, पृष्ठ १६७-६८)

'परन्तु सन्ने अदिन आर्योत्तर-भद्रव साहित्य और ललित कलाओं के क्षेत्र में हुआ। अजन्ता में चित्रित, साँची, भरद्वाज जादि में उत्कीर्ण चित्र और मूर्तियाँ बालिदास के काव्य भारतीय नाटयशास्त्र आर्यों की विद्या नहीं है। (वही, पृष्ठ १६८) ब्रह्मा ने नाटयवेद नामक पाँचवें वेद की सृष्टि की का अर्थ ही यह है कि यह वेद से बाहर की चीज थी।

1 हजारी प्रसाद द्विवेदी अशोक के पून पृ० 10

2 हजारी प्रसाद द्विवेदी अशोक के पून 13

3 हजारी प्रसाद द्विवेदी अशोक के पून 12

असुरा न नागा की बन्नी बना कर दाम बना लिया था।¹

शय जटी नागा को गवण न जाता था नाग मुदरिया का बन्नी बना लिया था। नागाह्वय नगर म धम चक्र का प्रवर्तन हुआ था। परवर्तीकाल म नागाह्वयम हस्तिनापुर को बहत ५। नागाह्वय ना वणन है वह गामना तार पर था।²

पवत म कुबेर के स्वण तथा धन री रक्षा वरुन म नाग भी नियत थे।³ वाल्मीकि— नाग— दवरुण है। यथा क महेन्द्र पत्रत पर नाग मित्र है।⁴ वरण के दरबार म नाग दय कुबर के रागम, या गुह्यक गधव अक्षरा, शिव यम व ब्राह्मण मन्त्रात्मा तथा श्रुति आर द्द्र के गधन तथा भ्रुति एकत्र हाते थे।

रागम पहल देवा क सहायक थे बाद म शत्रु हा गय। उनके उणनाम पाल के मुत्तर है। बान म कुरूप है। पत्नी हारत है फिर हगत है। व यथा स अलग है। फिर उता म धुनमित्र मिलत है। उनम यक्ष गुण विद्यमान है। द सुपुत्री यसा के पुत्र ही यक्ष और रक्ष ५। यथा के लाल नय बाल शरीर है व कुबेर क रक्षक है। एम ह्री रागम है। रागम का अर्थ रक्षक है। रागम पौनस्त्य और यालुधान है।⁶ ब्रह्मा का चौथा वंटा पुत्रम्य था। रागम पौनस्त्य भा थे, नरुत भी। अधम की पत्नी म नवत हुए।⁷

कुबर उत्तर का महाराजा था। वह नरवाहन था। कियर गुह्यक गधव भी इमक साथ थे। भनश शिव क समान वह भी ससार का मटाराजा है। उसका नगर अलगा— विटपा है। पञ्च जीर शख उमय मन्त्राकार थे, जो साक्षात् पञ्चाने थे।⁸ नन्दत रागम उमके पुष्पक विमान का छीचत थे।

बौद्ध ग्रन्थो मे वर्णित जनजातिया

गधव— अशुत्तोरनिकाय म कहा गया है कि गधव असुर और नाग के साया है। व पूर्व दिगा क ताकपाल धनराष्ट्र क शासन म है। धृतराष्ट्र के अतिरिक्त गधव-नाक ७ अन्य राजा है— पनाड उपमज्ज मातलि चित्तसन नल और जनसभ।

पञ्चसिध नाम का गधव बुद्ध का वृषापाय था। उमने वीणा पर एव प्रेम भीत बुद्ध का सुनाया। शायद एक उपजाति (class) का जपन बात पाच गाठ बौध कर रखत ५। (बुद्धपाय)

कुम्भण्ड— ये नाम इसनिमे पहा क्यारि उनका पेट बहुत बडा होता था

1 वही प० 51

2 वही 28

3 एविक मायभासाजी प० 27

4 बन्नी प० 28

5 वही प० 61

6 वही 3९ 39

7 वही 41

8 वही 142

और इनके जननाम मटवी जैसे होत थे । ये दक्षिण में रहत थे और इनका राजा विरञ्जय था ।

नाग— यह भारत की प्राचीन जाति थी । इसके कई निवास स्थान दिए हैं । सुमरु पर्वत के नीचे मजेरिका भवन । हिमालय में दक्ष पर्वत की तलहटी में दक्ष भवन, यमुना के जल में घतराटुनाग, नभम भील में नाभसा नागा और वेसाली तच्छन और पयाग में भी नाग रहत थे । विनय पिटक नागा के चार राजकुल बताता है— विरुपक्ष, इरापथा, छायापुत्रा और वहगोतमना ।

बुद्ध को कई जाह नाग कहा गया है । बोधिसत्त्व कई बार नागा के राजकुल में पदा हुए जस अतुल, भूमिदत्त महादक्ष, आदि ।

सुपुण्ड्र— जिनकी नाग से बच्चा लडाई रहती थी और जिनसे नाग बहुत घराने थे । इनकी एक जाति करोटि थी । इनके कई राजाओं का मिथीकल बणन है । दो गरुड राजाओं न वाराणसी के राजा से जुआ खेला था । बोधिसत्त्व और मारिपुत्र पहले गरुड राजा होकर जन्म थे ।

विश्वर— पहाड़ पर और नदी के किनारे बसत थे । बुद्ध को मानत थे ।

यक्ष— ये अक्षर अमनुस्स कहे गये हैं और इनका देवा राक्षसा दानवा, गंधर्वों विष्णुना और नागा के साथ बणन किया गया है । ये लाभदायक भी दियाय गये हैं और हानि पहुँचाने वाले भी । कुछ यक्षा की एक देवता भी कहा गया है । ये सब यक्ष प्रजाति के देवताओं का कहा गया है जिन्हें मानवान भी पूजना गुरु कर लिया था ।

यथवण का यथा का राजा कहा गया है जो देवा के आस के भगडे सुतनाता है । यथा का सेनापति इम राम में उसकी सहायता करता है ।

कभी कभी मानवा की यन्त्रिनिया से शादी भी दिखाई गई है । जन्म विजय न पना की यथा राजकुमारी कुन्धी से शादी की थी ।

यथा को अच्छा भी बताया गया है और भूत के समान भी बताया गया है । एक जगह यथा और नागा का पुण्यजन कहा गया है ।

अमुर— जुरा को सपुत्रनिवाय में पूजेवा कहा गया है । ये देवा में पहले समय में रहत थे । जब वे नभिसना से गिर गए और देवा में लटके लगे तो उनका त्यज-त्यज समाप्त हो गया और अमुर बन गए ।

यक्ष

प्राग्निना वन्त्रि ग्रन्थ में कुछ अमानवा प्राणियों 'य' का बणन मित्रना है सतिन रण न यम । ये रण के बराबर धनरनाह और खुबुद्धि भी नहीं बताए गए हैं । शतमय प्राणियों में उनका तापक बुधन को रणा (राक्षसा) का राजा भी कहा गया है तदा अपा दूगरनाम यथवण से पुरारा गया है । महाकाव्या में यथा का भना

आदमी और जाड़े अब मान लिया गया है तथा कुंवर की रक्षा के राजा रावण से लड़ाई लिखाई गई है। कुंवर और मणिभद्र का रामायण में महात्मन् कहा गया है। महाभारत के यज्ञ प्रश्न से पता चलता है कि उस समय यज्ञ का कितना आदर होने लगा था। यहाँ तक कि कुंवर को चार नोरपाला में से एक लावपाय बनाया गया। भरत साची मथुरा आदि में प्राप्त यक्षिणी मूर्तियाँ की गलन और बनावट देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यज्ञ जाति पढ़ाठी थी। मन्त्रालय का प्रश्न ही गद्य, यज्ञ और अप्सराओं की निवास भूमि है। वे नाच गान में कुशल थे। यज्ञता धनी भाषा। वे लाग बानरा और भालुआ की भाँति कृषिपूर्व स्थिति में भी नहीं थे और रागमा और अमुरा की भाँति व्यापार वाणिज्य वाली स्थिति में भी नहीं। वे मणियों और रत्ना का सन्धान जानना के पृथ्वी के नीचे गड्ढे हुई मिथियाँ की जानकारी रखते थे और जनायास धनी हो जाते थे। सम्भवतः इसी कारण उनमें विलासिता की मात्रा अधिक थी।

यज्ञ महान् व्यापारी थे और अत्यन्त धनवान भी। उनके यक्षताओं कुंवर और लक्ष्मी को धन का दक्षता स्वीकार किया गया। दीवाल का पुगना नाम यक्षरात्रि था जिसमें कुंवर और लक्ष्मी को पूजा होती थी। जब जनक जनजातियाँ से मिलकर राज का भार जनपद बना तब इस प्रमुख त्योहार मनाया गया और भगवान् राम के त्रिजय प्रवेश से इसे मिला दिया गया। जन्म २४ दिग्मन्त्र का सूर्य के अयन परिवर्तन के पगन त्योहार को (जिस दिन से दिन बड़ा होना शुरू होता है) वास्तु में इसका नाम त्रिसप्त पत्के मनाया शुरू कर दिया था।

यह भी मानी हुई बात है कि शिवारी या विमान की बजाय व्यापारों का चाला और लिपि अर्थात् भाषा की सर्वम अधिक आवश्यकता होती है। भारत की सर्वम पुगना भाषा पुराना प्राकृत सम्भवतः यज्ञ की ही थी।

प्रलय के बाद अव्यक्त मनु ने एक अविस्मरणीय काय किया था— समस्त जनजातियाँ को मिलाकर एक करन का प्रयत्न उह जनजातियों के आधार पर न बाटकर काय के आधार पर बाटने का प्रयत्न। इस काय ने छोटे छोटे गति पकड़ी। भारत इतना बड़ा देश है कि इस नियम की प्रगति हम पूरे ऐतिहासिक युग में देख सकते हैं और यह आज भी जारी है। जिन जनजातियों ने या जनजाने महापुरुषों ने राज्य स्थापित किया और याय और धर्म से शासन आरम्भ किया उह क्षत्रिय वर्ण में स्थान दिया गया और पुराने वीरा ने उनका वंश को सम्बोधित दिखाया गया जिससे वे उनके पदचिह्न पर चल सकें।

यह नियम बाद के मौर्य सातवाहन पल्लव कदम्ब वाकाटक गुप्त और अनेक राष्ट्रजत वंश पर ही नहीं लगाया गया मेरे विचार से पुराण के जब नए सस्करण हुए तब पुराने वीरा पर भी लगाया गया। केवल अयोध्या का इक्ष्वाकु वंश ऐसा है जिसकी दो हजार वर्ष से ऊपर की वंशकलि हमारे पास है। यथाति

पुरु के सोम वंश को, जो पूव म इलानाबाद के पास प्रतिष्ठान म राज्य कर रहा था ऐश्राक माघाना ने उखाड़ फका । जनेक साल बाद चार सौ मीन पश्चिम म एक जनजान वीर दुप्यत (पवता से सम्बन्धित, क्या यक्ष ?) न नागा स गगा तट का उनका नगर नामबहपुर (उसका हस्तिनापुर नाम ता उसक छोटे वंशज हस्तिन् ने दिया) छीनकर अपना राज्य स्थापित किया तो उस पुरु जीर तुवशु के सम्मिलित वंश का बताया गया । दुप्यत के बटे भरत पर यह वंश भारत वंश करके चला जिस कभी-कभी पौरव भी कहा गया जीर समाप्त हा गया । जनक बप बाद कुत्जागल की एक जनजाति के वांग कुं न हस्तिनापुर जीनकर अपना कौरव राज्य स्थापित किया तो उनका वंश भी भरत से जोड़कर प्राचीन साम वंश बना दिया गया । महाभारत म धृतराष्ट्र आदि को कौरव पौरव, भारत सय कहा गया, अयाध्या के राम के वंशजा या माघानय नागर या रामेय क्या नहीं कहा गया (महान् माघाना सगर जीर राम के ऊपर जि हान कुं जादि स अधिः वीरता के नाम किये थ) ?

बुद्ध और महावीर की जनजाति

यही ऊपर वाला फामूला महावीर और बुद्ध पर लगाया गया । महावार का ब्राह्मण क्या देवनदा का पुत्र बताया गया और कहा गया कि उनका ध्रूण देवनदा के गभ म निकानकर त्रिशता के गभ म स्थापित कर दिया गया । उनसे पिता सिद्धाथ आर त्रिशता को वंज वंश के चातृ गात्र का राजा बताया गया जो इक्ष्वाकु वंश का बताया गया । इसी प्रकार गौतम बुद्ध को गामयो के राजा शुद्धोदन का पुत्र बताया गया जो इक्ष्वाकु वंश का था ।

हम जानते हैं कि वंशानु जीर क्षत्रियवस्तु दोनों जगह प्रजापति था । वहाँ राजा होने का प्रश्न ही नहीं उठता था । वहाँ राजा उठ कहा थे कि सभा म मित्र और धाट न का अधिकार था । वे जनक भूमिपतिया या महिया म से एक हान थ ।

य इक्ष्वाकु कुं व नहीं थे मर विचार म प्राचीन मन्वान वंश जाति के थ ।

१ दाना के साक्ष्य म वंश वंश मन्त्रपूष म्भान निर है ।

२ दाना वंश म परिचय हा नग दिवान उत्तरी भारत के जनक वंश चत्या और आपनन के भी नाम न ह सिंगर जन सूत्र । सा म ऊपर चत्या के नाम हम अना अना दानो सम्प्रदाया के साक्ष्य म मिलत ह । कुछ नाम ममान भा हैं जम वंशानु का बन्धुत्त ।

३ दाना महावीर और बुद्ध अधिकार तगर म जाकर ज्ञान (ज्ञान) म स्थित वंश राजा म उदरने थ और वहा अना उरने न थ तागा के मठा म या वदिः रामा म न के बराबर ।

४ लोना ने प्राचीन प्राकृत म (जध मागधी और पालि जिमकी आन चलनर शाखा जना) उपनश लिय जो सम्भवत महान् यक्ष जाति की भाषा थी। अपने प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति गौतम के पूछने पर मन्वीर ने उत्तर दिया था कि जनता की भाषा जध मागधी वास्तव म देवताजा की भाषा है।

५ मणिमद्र यन् जिमके चत्य मियिला और वलमानपुर म वर्णित है और जिसका पूजन युधिष्ठिर ने भी किया था यानियो और व्यापारिया का दवता था। बौद्ध मूत्र उसका चत्य गया म भी बताते है। यह यन् भी लोना का पूज्य है। (सम्भवत यन् चत्या और जायन्ता मे ही हिन्दू मंदिर का आरम्भ हुआ हा।)

६ यन् महान् व्यापारी और सट्टी थे। अधिकतर जन आज भी अपने को वश्य मानते है। मध्य काल म गुजरात और दक्षिण के इतिहास म भी हम जनिया का व्यापारी और सट्टी पाते है।

७ दाना के साहित्य म कुछ दक्कल (मन्दिर) भी वर्णित ह परन्तु दोनो भगवान् वहा जाने और उपदेश देने स कतरान थे।

८ यह मानी हुई बात है कि यक्ष-पूजा वास्तव म अवदिक है और सम्मिश्रण के उपरान ही यन् देवताजा को आदर मित्त है। शिव, गणपति स्वद दुगा ऐस ही दवता है जो बाद म मानव धर्म म पूज गण। वेद और वेदग म मंदिरा का वर्णन नही है और यक्षा म आरम्भ से देवताजा का वर्णन है जिह पूल पनी चन्दन और अगर से पूजा जाना था। यह मानी हुई बात है कि मूर्तिपूजा एक अनाय प्रथा थी जो यक्षा से मानव धर्म म अपनाई गई। मूर्तिपूजा भी प्राचीन वृक्ष पूजा स निकली क्याकि हर मीथकर एक विशेष वृक्ष से सम्बन्धित लिखाया गया है। प्राचीन चत्य भी पूजे जान वाले वृक्ष व चारा जार इटा का गोल घेरा या स्तूप था। सस्कृत म चत्य का जध ही पवित्र वृक्ष है। धम्मपद म उनेन और गौतमन पूजास्थला का एकत्र चेतिय (वृक्ष चत्य) कहा गया है। इ ही चत्या म आग चलनर बुद्ध के अवशेष पूजने के लिय रचे गय और फिर तीथकरा और बुद्ध की मूर्तिया।

९ मूर्तिया म भी लगता है कि व वटुन सम्भव है यन् जाति के य।

१० यक्षराज कुबेर जनिया और बौद्धो के सबसे अधिक पूज्य देवता है यह दाना के साहित्य स स्वयसिद्ध है।

११ जनिया की सबसे पुरानी रामायण पउमचरिय म विमलमुरि ने वारमाकि की रागसा को निदयो लिखान की बुराई की है। रागम (यक्षा की एक शाखा) रावण कुम्भकण आदि को उसम शानाहारी विद्याधर दिद्याया है जो आहिसा म विश्वास करत थ। भगवान मन्वीर की जनजाति को उटाने बुरा नहा लिखाया।

१२ त्रिसमस की तरह पुरानी यक्षरात्रि को मानवा न राम की विजय म

अथाध्या वापसी मानकर दीपावली मनाकर पूजा। उसके सस्कार यहा के निवासिया के मन म इतन गहर थे कि महावीर जी के मरण दिवस का रूप लेकर वह जनिया का भी पव बन गया।

१३ प्रमुख शिष्या को गणधर कहा गया है जिसका अर्थ है जनजाति (कवील) का मुखिया।

१४ बौद्धा और जना का दक्षिण म इतनी जल्दी प्रचार कसे हुआ यह आश्चर्यजनक है। प्रत्यक्ष लगता है कि मगध और पूर्वी उत्तर प्रदेश वासिया का एक बहुत बडा भाग दक्षिण म रहता था जो उनकी जसी भाषा बोलता था और जिनके वस ही रीति रिवाज थे। क्या यह यथा के दक्षिण पलायन का सङ्गत नही है? क्या यथा म पला ब्रह्मवाद दक्षिण स भक्ति का रूप लेकर फिर लौटकर उत्तर विजय करने नही आया?

१५ वीर या वरह्य आज भी लोख म यक्ष देवता को पुकारा जाता है। हनुमान को पूजन पर महावीर नाम मिला (बडा यथा)। इसी प्रकार जैनिया के बारहवें तीथर वधमान जब केवल्य को प्राप्त हुए तब जन न उह महावीर (बडा यथा) का नाम दिया। धानर और रक्ष ता यथा की उपजाति थी, क्या पातृ भी यथा का एक कुल था?

१६ गौतम बुद्ध के उत्पन्न होन पर उनके पिता शुद्धोदन उह शाक्यवधन म र क चत्य म आशीर्वात् दिलवाने ले गए थ।

द्रविड

तमिळ के व्याकरणानुसार न अपन आकरण म यहा तीन ही जातिया का उल्लेख किया है— मक्कल, देवर और नकरर या नागर। शुद्ध द्रविड या तमिळ लाग मन्त्रन कह गय हैं। देवर ब्राह्मणा क लिए आया है और नागर यहाँ के आदिवासिया के लिये, जिनमे नाग जाति के लोग भी सम्मिलित हैं। किसी समय दक्षिण म नाग जाति का बहुत प्रभाव था और व बडे शक्तिशाली थे। परन्तु धीरे धार द्रविडा न उनको आमसात् कर लिया और आज उनका नाम ही अवशेष रह गया है। कुछ आन्ध्रियाती जातिया आज भी पहाडा और जंगला म निवास करनी हुई पाद जाती हैं जस नीलगिरि की टाडा जाति जो सभबत प्राचीन नागर जाति क वंशज हैं।

आज भी दक्षिण भारत म तीन प्रकार की मुखावृत्ति के लोग मिलत हैं जिनम उनकी जाति का भान हाता है। आय लाग जिह देवर कहा गया है अपेक्षात गार रंग क हात हैं। उनका बदन लम्बा हाता है नाक ऊची और नुकीली हाती है होठ पतले और बाल लम्ब तथा मुलायम हात हैं। शुद्ध द्रविड लाग आन्ध्रियातिया म भिन्न हैं। वे न अधिक् गोर न एक्कम काले पर गहरे या

लाल रंग के मझोले बदन के लम्बे सिर और ऊँची नाक वाले हाथ हैं। य स्वरग में दक्षिण के जातिवासियों की अपना आर्यों में अधिक मिलत जुलत हैं।

आजिवासियों में भा अनक जातियाँ के लाग मिलत हैं। नीलगिरि के टाऊ लाग सावल रंग के हृष्ट पुण्ड्र होते हैं। उनकी नाक माटी लताट झुका हुआ और शरीर बाला से भरा हुआ होता है। इसमें विपरीत मरवर धन्य, घुस्वर आजि जातियों के लाग काग माटी रोड़ी नाक और माटे हाठ धान होते हैं और कुछ बातों में अपनीकी की नीला जातियाँ से मिलत जुलते होते हैं।

तालरप्पियर १ मनु के आठ प्रकार के विवाह गिनाये हैं। उनमें द्रविड देश में गण्य प्रकार का विवाह प्रचलित है जो गायन में आर विवाह प्रथा में हमारे साथी हैं। अन्नामनाई विश्वविद्यालय के तमिल रिसर्च के भूतपूर्व प्रोफेसर ए रायव आयगर ने *History of Tamil* में तमिल प्रजाति के गंधर्वों (गण) की एक शाखा माना है उनमें गायन कामगोचन गित्य और कला के समानता देखकर। विवाह की यही विशेषता यक्ष (रक्ष) ससृष्टि की थी। गूणरक्षा में राम से विवाह का विवेक अपनी कुल प्रथा के अनुसार बिया था। सार पश्चिमी संसार में यह प्रचलित है।

मनु ने आपसो छोट से विवाह को गंधर्व विवाह नाम दिया लेकिन इसका वासना में प्ररित कहकर इसकी बुराई की है।

गित्य और कला द्रविड भाषा के शब्द हैं। (पुरानी प्राकृत या यक्ष भाषा के) जो बाद में ससृष्टि में प्रयुक्त हुए।

दक्षिण में जो कुछ है वह आर्यों से पुराना है आय उसे नहीं ल गए। कार्तिकेय (गुणहृष्य या पण्डुपुत्र) आय नहीं यक्ष देवता है और उसकी पूजा यक्ष और राक्षस जपन साथ ल गए जा जाऊ सार दक्षिण भारत में फली है।

गंधर्व

गंधर्व यक्षा का ही एक उपजुल था। वैदिक युग में २७ गंधर्वों का उल्लेख है। गंधर्वों का राजा भी कुवेर ही है। जप्सरा यक्षा के साथ गंधर्वों में भी मिलती है। स्वयं गंधर्वों जप्सरा के समान गुदरी होती थी।¹ य भूजगत पयत पर रहते बताए गए हैं जो कश्मीर के ऊपर है। य साम उगत थे और उस देवा का धरत थे।

फिर य भी नीचे उतर जाए थे। हिमानय की तराई में इनके बड़ शक्तिशाली राज्य थे। अजितर मानव राजा और सम्राट इन्हें मित्र बनाकर रखते थे। पुरुरवा (लगभग ३०५० ईसा पूर्व) से लेकर अजुन, भीम (लगभग १४५० ईसा

पूर्व) तक इनके शक्तिशाली राज्या का वर्णन है। गंधवराज चित्ररथ अजुन के समान वीर और उसका मित्र था। पाण्डवा के वनवास के समय उसने कण ममत सब कौरवों का हरा कर बंदी बना लिया था। विश्वात्मु हाहा हूह अय महान गंधवराज थे। सरस्वती पर गंधर्वों का तीर्थ था।

गंधव गाने बजाने के बहुत शौकीन थे। राजा विश्वात्मु बड़ा अच्छा नृत्य करता था। संगीत का नाम ही गंधव वेद कहा गया है। गंधव फूलों तथा रश्मि के बहुत प्रेमी थे। वे तथा गुहाजा म रहते थे। ये भी यज्ञ के समान वृत्त-भूजा करते थे।¹

पण्डिता न ठीक ही सुभाषा है कि गंधव और कदप वस्तुतः एक ही शब्द के भिन्न भिन्न उच्चारण थे। बाद में कदप गंधव देवता मार या कामन्द का नाम हो गया। न जान किस बुर मुद्रत में मनोजमा देवता काम न शिव पर बाण फेंका था। शरीर जलकर राख हो गया जाग 'वामन-पुराण (पष्ठ अध्याय) का गवाही पर हम मालूम है कि उनका रत्नमय धनुष टूटकर खण्ड-खण्ड हो घरती पर गिर गया। जहाँ मूठ थी, वह स्थान स्वामणि से बना था, वह टूटकर घरती पर गिरा और चम्प का फूल बन गया। हीरे का बना हुआ जो नाह स्थान था, वह टूटकर गिरा और मौलसरी के मनाहर पुष्पा में बदल गया। अच्छा ही हुआ। इन्द्रनील-मणिया का बना हुआ काटि-दश भी टूट गया और मुद्गर पाटल-पुष्पा में परिवर्तित हो गया। यह भी बुरा नहीं हुआ। लेकिन सप्तस सुन्दर वान यह हुई कि चन्द्रान मणिया का बना हुआ मध्य-दश टूटकर चमली बन गया और विद्रुम का बनी निम्नतर काटि बला बन गयी— स्वर्ग का जोतन वाला कठार धनुष जा घरती पर गिरा तो कामल फूलों में बदल गया।

स्वयं पता चलता है कि गंधर्वों को पुष्प बहुत प्रिय थे और उद्धान ही भारतीयों का विभिन्न पुष्पों से परिचित कराया।

किन्नर

किन्नर भी यथ, गंधव के समान किरान प्रजाति के पावत्य लोग हैं। महाभारत के वन-मव में इन जानिया की चर्चा है। किराना को नुकीली चांगी वान, मान के रग के, कच्चा माम और मछली खान वाला बताया गया है।

किन्नर हिमालय में रहते थे। जानना के अनुमार यह चन्द्र पर्वत गंधमादन मन्मारगिरि और प्रबूटव पर्वता पर रहते थे।² जानना ही वनान हैं कि ये जान

1 एषिक माध्यालोकी पृ० 145-157

2 कानियास कुमारमभव I 8

3 जातक सम्पादन कौबल स्वर्ग 4 न० ८८५ पृ० 180 182

म घूमते थे और वाण व संगन म विघ्नर युगल पाया जाता है।¹ प्राचीन इण्डो नशियन मंदिरों म भी व दा जाटा के रूप म 'विघ्नर युग्म युग्म' दर्शाए गए हैं।² एन जातन कथा म विघ्नर विघ्नरी का असीम प्रेम लिखाया गया है। दूसरी कथा म माता पिता व वन जान के उपरांत शिशु को विघ्नरा द्वारा चुप कराना उनकी सहृदयता दिखाता है।

विघ्नरा का अधिपतर शिल्प म घोड़े व मुद्य वाला मानव या मानव के मुद्य वाला घोडा लिखाया गया है। इसा कारण मोनिपर विजियम्स, टाउमन और पिन्नीट ने उह काल्पनिक प्राणी माना है। उनके दृष्टिकोण की जानद कुमार स्वामी न जालोचना की है। हमार साहित्य म भा अश्व मानव का वणन है। व म मध्यम्य मुनि हैं जिनके अश्व का मिर था और जिहान जश्वनीकुमारा से मधु विद्या सिखाई थी। जश्वना को भी उगह उगह अश्व के मुद्य वाला कहा गया है। कुमारस्वामी न जश्व मुयी पुरुष-नारायण और विष्णु के ह्यशिरम रूप का खाज निनाला। बाध गया साची और पाटलिपुत्र व शिल्पा म यिणी जश्वमुयी उनकी आँपा म न छिप सती।

वाण की काल्पनिकी म वना म आघट घनने विघ्नर और विघ्नरी अश्व मुयी है।³ कालिकात्त न विघ्नरा को मानव शगर पर घोड़े के मुद्य वाला बताया है⁴ और यही जमरकोप म लिखा है।⁵ माध न शिशुपानवध म विघ्नर घोड़े के मुद्य वाले और घोड़े व मुद्यी के साथ दर्शाए ह।⁶

इन और अन्य उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि यह किरात-कुल मानव या और अशवा का मुद्यीटा पन्नर विचरण करता था। उसी प्रकार जस वानर कुल बदर का मुद्यीटा लगाता था और ऋक्ष कुल रीछ का। य दोनों भी किरात प्रजाति के थे जो राक्षसा का अनुसरण कर दक्षिण म पहुच गए थे। जब बहुत समय बीत गया और देव यक्ष गंधव विघ्नर का भेद मिट गया ववल मानव जाति रह गई तत्र समय की दूरी व कारण व काल्पनिक प्राणी बन गए और कुछ कलाकारों न जश्व मुयी मानव के स्थान पर मानव मुयी अशवा को शिल्प म उकेरा। अथ न मानव मुयी अश्व के स्थान पर पक्षी का निचला घड बनाया। समय की इसा दूरी ने देवा यक्षा गंधवों आदि को स्वयं म पहुचा लिया और

1 काल्पनिकी पृ० 239-40

2 Alfred Foucher Beginnings of Buddhist Art पृ० 241 फुटनोट 1

3 काल्पनिकी पृष्ठ 240-41

4 कुमारमधव I 16

5 जमरसिंह जमरकोप 1-2

6 माध शिशुपानवध 4 | 3 -38

देवा की जमरावती अफगानिस्तान के स्थान पर यक्षा की लीलाभूमि गगा के विभिन्न स्नाना के मध्य स्थापित कर दी।

त्रिन्तर वाद्य के शौकीन थे। वे सिर पर मुकुट पन्नते थे और उनके हाथ म वीणा थी।¹ इसी भांति अग्नि पुराण ने भी त्रिन्तरा के हाथ म वीणा दी है।² पत्थर म त्रिन्तर वासुरी लिए भी उकेर गए ह और पान मेन काल के गिल्प न उनसे हाथ म शय और भाभ मजीर दर्शाए हैं। विष्णुधर्मोत्तर ने त्रिन्तर के हाथ म किमी विशय वाद्य का सम्बन्ध नहा बतलाया है केवन इतना लिखा है कि त्रिन्तरा को गीतवाद्यसयुक्त समीत के वाद्या का पकडे दिखाया जाना चाहिए।

त्रिन्तरा का शिव की दक्षिणा मूर्ति का पूजक बताया गया है।³ कुछ स्थला पर वे कुंवर के अनुचर बताया गए है।⁴ अय स्थला पर व सुत्रहाय्य के परिवार देवता दिखाए गए है।⁵ कुछ स्थाना म वे कृषि-शेन के रक्षक माने जाते ह।⁶ जना न उह अपन व्यानर देवा की मूची म सम्मिलित किया है और विशेष महत्त्व की वान यह है कि तीर्थकर घमनाथ स सम्बन्धित यक्ष को त्रिन्तर नाम दिया गया है।

त्रिन्तरा को अनेक चित्रा म भी दर्शाया गया है। अजन्ता गुफा न० १ म एक त्रिन्तर वीणा बजा रहा है और उसकी त्रिन्तरी मजीर बजा रही है। व बोधिभक्त ज्वलाकितेश्वर जा उनके पास लालित्य से खडे है, वा मनोरजन कर रहे हैं। अय चित्र नालन्दा, पहाडपुर, एहोल, महावलिपुरम्, बाचीपुरम् रामेश्वरम् आदि के मन्दिरा म पाए गए है।

वातरशना

‘वातरशना कुछ लिगम्बर जमा शब्द है। जय है हवा ही जिनो रशना या मण्डला है— नमः। य मुनयो वातरशना (जूनि देवजूति, विप्रजूति कृपाणक वरिक्कव, एतश, कृप्यशृग) ऋग्वेद १० | ११ | ८ के ऋषि हैं। य अगस्त्य, वशिष्ठ आदि की भांति ‘कुम्भज ह। कुम्भ स्त्री के गर्भाशय का कहते हैं। कोई स्त्री प्रधान समाज (म) जा जाय सम्यना के अतगत नहा थे, और जहाँ पिता अनाथ हुआ करत थ य उत्पन्न हुए हगि एसा कुछ प्रामाणिक विद्वान मानत हैं। माएन जा दडा म प्राप्त तालावा को दंपकर अनुमान किया गया है कि य किमी

1 H Krishnasastri South Indian Images of Gods & Goddesses p 251

2 अग्नि पुराण अध्याय 15 इनाक 17

3 G N Rao Elements of Hindu Iconography Vol II Part I p 277

4 G Albert Buddhist Art in India p 47 fn 2

5 जो एव० राव बही Vol II Part II पृष्ठ 44

6 पञ्चमूर्ती गन्धर्व एण्ड त्रिन्तर पन् इंडियन जॉर्नल ऑफ़ आर्ट्स पृष्ठ 44

पुरा इतिहास मे यक्ष

भारत का पुरा इतिहास जानने के लिए पुराण और महाकाव्य भण्डार गृह हैं। पुराण में गर्वोक्ति है और सही है कि पुराण का पारायण क्रिय बिना वेद का अर्थ नहीं समझा जा सकता। वेदव्यास ने लिखा है 'जा कोई सामायाग वेद को ता पते परतु पुराणा का अध्ययन न कर, वह विद्वान् नहीं हा सकता। वेद ललित साहित्य है, काव्य है। उसमें जो कहीं-कहीं इतिहास का वर्णन है या समय का वर्णन है या लेखक का वर्णन है वह बिना पुराण में वर्णित इतिहास का सम्म जाने बिना समझ में नहीं जा सकता। जिन वेदव्यास ने वेद का संकलन किया है, उन्होंने ही पुराण का,¹ और बिना साचे समझे उन्होंने रानी महान बात नहीं कही हागी।²

पुराणा का बीज वैदिक काल में भी विद्यमान था। पुराण की परम्परा तत्र भी थी—

‘ऋष सामानि छदासि पुराण यजुषा सह। (अथर्ववेद ७१ | ७ | २४)

अर्थात् वेदमन्त्रा की रचना में पहले पुरानी कथाओं का कहन का चलन था।³ उही कथाओं को एकत्र करके वेदव्यास ने पुराण सन्निहित किया।

पुराने ग्रन्थ में कहा गया है कि जा वेद, वेदांग उपनिषदा के साहित्य को ता जान, पर पुराणा को न जाने, वे विचक्षण नहीं हो सकता। इतिहास और पुराणा के अनुशौलन से वेदा की छानबीन करनी चाहिए। जा व्यक्ति इतिहास पुराण की परम्परा को कम जानता है— जल्प-श्रुत है—उससे वेद डरा करता है क्योंकि वह समझता है कि यह अलग मुझे चाट पहुँचायगा।

यो विद्याच्चतुरो वेदान् सागोपनिषदा द्विज।

न चेत् पुराण सविद्या न स स्याद् विचक्षण।

इतिहासपुराणाम्या वेद समुपवह्यन्।

त्रिभल्पश्रुताद्वेदा मामय प्रहरिष्यन्ति।³

1 महाभारत आदि पत्र 63 अध्याय 105 अध्याय वायुपुराण 60 | 11-12 शिष्य पुराण 3 | 4 | 2; सूक्त पुराण 1 | 52 | 10 इत्यादि

2 देखिए जगन् भारतीय पुरा इतिहास कोश

3 वायु पुराण 1 | 200-01 पद्म पुराण 5 | 2 | 0-52 शिव पुराण 5 | 1 | 35, इत्यादि

पुराण शब्द का अर्थ पाणिनि ने 'पुरा भवम् अथात् प्राचीन वाचन म होने वाला वस्तुताया है। पुरा नव भवति अर्थात् जो पुराना होकर भी नया होता है वह पुराण है—यह महर्षि यास्क का कथन है। वायु पुराण में लिखा है पुरा जनति जा प्राचीन काल में जीवित था। पद्म पुराण के अनुसार 'पुरा परम्परा वष्टि कामयते। इसका अर्थ है जो प्राचीन परम्परा की कामना करता है वह पुराण है। ब्रह्माण्ड पुराण की व्याख्या सप्त सटीक बठनी है— पुरा एतन् अभूत्। अर्थात् प्राचीन काल में ऐसा हुआ था।

श्री राधवाचाय अपनी पुस्तक भारतीय इतिहास का मिहाबलोकन में पृष्ठ ५ पर यानबलक्य स्मृति व छांदाग्य उपनिषद् के वाक्य देकर लिखत है कि विश्व की अष्टादश विद्याओं में एक विद्या के रूप में उन्होंने (विद्वाना) ने उस (पुराण) की गणना की और समाजधारक धर्म के चतुर्दश सिंहासना में एक पर उमका स्थापित किया। जपौरपेय (वेद) पान के समकक्ष उसकी प्रतिष्ठा की। परम्परा क्रम से उसका अध्ययन व अध्यापन चला चला रहा। युग युग में उमका सद्गुण और सम्पादन होता रहा।

पुराण में क्या होना चाहिये यह उसमें वर्णित है—

सगश्च प्रतिसगश्च वशोमन्वतराणि च ।

वशानुचरितं च व पुराण पचलक्षणम् ॥

पुराण के पांच लक्षण हैं— (१) सृष्टि की उत्पत्ति (सग) (२) प्रलय और फिर सृष्टि (प्रतिसग) (३) देवताओं की उत्पत्ति और वश परम्परा, (४) मन्वतर (विभिन्न मनुओं का काल) (५) मनु के वश का विस्तार। ये सब प्राचीन इतिहास के भाग हैं।

पुराणा का जिन विद्वाना ने गहन अध्ययन किया है वे महान् पुराणों पाजिटर आई सी एस के कथन से सहमत हैं कि मूल पुराण वेदव्यास द्वारा सम्पादित एक था। सक्ता वर्षा बाद ब्रह्मा विष्णु महेश का पूजा के प्रवेश के बाद उनके अनुयायी पण्डितों ने उम अपने दृष्टान्तों की पूजा में बनाकर जनक ग्रथ रच डाले।

पाजिटर और अन्य विद्वाना ने एक जय महत्त्वपूर्ण बात बताई। मूल पुराण किसी और भाषा का ग्रन्थ था। आज जो अठारह पुराण पाए जाते हैं वे इसका संस्कृत में अनुवाद हैं। यह उन्होंने पुराणा की संस्कृत में काव्यगत जनक कमिया को दर्शाते हुए सिद्ध किया। यदि भाषा पदा निष्ठा की भाषा थी और पुराण जन भाषा थी। तथा बाद में परिणतों ने कहा कि पुराण वेद के गहन तत्त्वा का जनता को समझाने के लिए रचे गए थे।

मूल पुराण की भाषा क्या थी? वेदव्यास ने लिखा है कि सूत और माण्ड

का कतव्य था कि व पुराण को कण्ठस्थ रखें। य दाना जानिया वेत्-वाहा थी। क्या इनकी भाषा मागधी थी, मूल प्राकृत? हिन्दी के पाणिनि महान् व्याकरण, विशोरीदास वाजपेयी न सिद्ध क्रिया है कि हिन्दी सस्कृत से निकली भाषा नहीं है क्योंकि दाना की व्याकरण भिन्न है। प्रारम्भ म एव भाषा थी मूल प्राकृत कह सकने हैं क्योंकि प्राकृत बाद म भी हमार सामन आती है। वह प्राकृतिक भाषा थी, उस मुसस्कृत करके मस्कृत बनी, पर वह ऊपर के तबके की भाषा रही। मूल प्राकृत अनव जन-जातिया म बोली जान के कारण जघ मागधी पालि प्राकृत अपभ्रंश आदि भाषाआ म परिवर्तित होती रही।¹ डॉ० रामविनास शमा ने अपने महान् ग्रन्थ 'भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी, ३ खण्ड म यह दिखलाया है कि मूल प्राकृत से ही तमिळ, जादि तयावधित द्रविड भाषाए निकली है। और आज के कुछ दक्षिणी विद्वाना की भी यही प्रतिस्थापना है। हो सकता है यह भाषा यगा की हो और उही के साथ दक्षिण गई हो। वहा अलग थलग पडकर उसका स्वतंत्र रूप से प्रस्फुटन हुआ हो।

कुबेर

यगा के अधिराज कुबेर का सबने पहले ब्रह्म पुराण और महाकाव्या म वणन पाया जाता है। जिस प्रकार मूल इन्द्र ने देव जनजाति को अपनी सहचर असुर जनजाति के पजे से छुडाकर उन सस्कृति की पहली सीटी पर पहुँचाया था उसी प्रकार कुबेर न यग जनजाति को व्यापार बनाकर स्वर्ण की खोज कर सभ्यता और समृद्धि की छोटी पर पहुँचाया। उसके निवासस्थान को अथर्ववेत् में त्रह्यपुर (यग का ब्रह्म पुराना पर्याय है) कहा गया है। इस पुरी की विशेषता यह है कि यम अमृत का निवास माना जाता है। कहा गया है कि इस पुरी म हिरण्य का कोश था। कुबेर के स्थान म सुवर्ण का अक्षय कोश माना ही जाना था।²

यगा का देव जनजाति पूरा सम्मान देती थी और गंधर्वों (यक्षा के साथ की जनजाति) के द्वारा उनसे व्यापार करती थी। जो वणन कुबेर की राजधानी अन्नमाला का है वही इन्द्र की अमरावती का पाया जाता है सिवाय अमृत और स्वर्ण के बाश को छोडकर। कुबेर को यन्द्र का मित्र माना गया है और शिव से भी उसकी मित्रता थी।

संज्ञित धर्मि कान के अंत म यक्षा से प्रतिस्पर्धा हान पर कुबेर को रागात बनाया है, पापिया और डाकुआ का राजा बनाया है।³ उसने गण वक्त्रा म बीमारी फैलाने हैं। यान म यक्षा को रोगा का देवता कहा गया है।

1 विस्तार से 'भाषा और वन' अध्याय में बर्णन है।

2 वासुदेवचरण अपभ्रंश प्राचान भारतीय लोकधर्म पृ० १२३-४

3 इन्द्रय ब्राह्मण

गणेश

निरात प्रजाति (भाट ग्राम) के अनन्य गण (जनजातियाँ) उस समय उत्तरी भारत में रह रही थी— यथा गंधर्व स्मिन्तर गुह्यक त्रिपुरस्य, भाट पिशाच जाति । यथा के अधिक् प्रवल ताने पर इन गणा न भी कुबेर को अपना गणपति या गणेश मान लिया और उसकी पूजा करनी आरम्भ कर ली ।¹ महाभारत में कुबेर को कुछ स्थानों पर गणेश रखा गया है ।

काशी का भी यक्षा न बताया था । वहाँ इनका नाम गरुड सुपण आदि जनजातियाँ मकरान हुआ जो हमारा जिनकी सम्यक्ता रानी थी परन्तु सत्याम वस्तु था । व शिव को पूजते थे । पुराण बौद्ध और तनय था मत्स्य सघष का वणन है तिसम शिव के गण त्रिजयी हुए और यक्षा का काशी नगर की सीमा से बाहर कर लिया । यह एक तरह से धनी और निधन का सघष था ।

लेकिन थोड़े दिनों में यक्ष मन्मथा ने इन जनजातियों पर विजय प्राप्त की । कुबेर गणेश का रूप धारण कर फिर पूजने लग । यहा शिव पुराण की गाथा का अन्तभाव लगता है जिनमें शिव ने गणेश का मित्र वाट लिया था परन्तु पावती (पार्वती-पुत्री) के कान्ते पर रायी का सिर जोड़ लिया था । कुबेर का हर स्थान पर शिव के चरित्र होने का वणन है । परन्तु अन्तभूति के उपरांत वह गणेश के रूप में शिव और पार्वती का अयानिज पुत्र मान लिया गया ।² पावती ने अपने शरीर के उवटन का मूर्ति बनाकर उस सजीव किया था ।³

कुबेर के ऋद्धि और सिद्धि का पत्नियों थी । वही गणेश की हैं । वही रंग लाल लम्बा बाहर को निकला हुआ उदर चार हाथ और चार हाथा में वही कुबेर के पंच शख चक्र और जकुश । गणेश को शुभ का देवता कुबेर के समान माना जाता है । कोई भी काम करने से पहले श्री गणेशाय नमः लिखकर या पूजा कर आरम्भ किया जाता है । वही कुबेर के साथ था और आज भी अनेक लोग श्री कुबेराय नमः लिखकर काम आरम्भ कर रहे हैं । कुषाण काल के शिलालेखों में कुबेर और उनकी पत्नी लक्ष्मी का मूर्ति पाई गई है । वही गुप्त काल में और आज तक गणेश लक्ष्मी के रूप में त्रिबानी के दिन पूजते हैं ।

जहा भारत के अग्रिक्तर वासियों के लिए गणेश शुभ के देवता थे वहा देव तथा उनसे सम्बन्धित जनजातियों के लिए वे विघ्नकारी कहे गए हैं । गणेश उनके काम में विघ्न डालते हैं अर्थात् यक्ष जादि से उनका सघष होकर हार होती होगी ।

1 ब्रह्म वैवर्त पुराण 3 | 8 शिवपुराण 105

2 पद्म पुराण सृष्टि खण्ड 43 स्कन्द पुराण 7 | 1 | 38 मत्स्य पुराण 153

कार्तिकेय

गणेश ता पूजनीय देवता का नाम है। किंतु कार्तिकेय हाड माम के मनुष्य हैं। प्राचीन भारत के इतिहास में यह विशेषता रही है कि जिस व्यक्ति पर वचन में दुःख पड़े हैं या जिसे अपना जीवन स्वयं बनाना पड़ा है वह महान् व्यक्ति बन गया। इंद्र को अपने पिता द्यौम से लड़ना पड़ा। स्वायम्भुव मनु को अपना नीड नए स्थान पर बसाना पड़ा। पृथु का पिता वेन की हत्या के बाद छिपकर रहना पड़ा। बवस्यत मनु को प्रलय का सामना करना पड़ा। दोना सावभौम चक्रवर्ती माघाता और भरत का वचन भी दुःख में बीना। माघाता को माता की काख फाँकर जन्म देना पड़ा जिसमें मा मर गई। भरत का शत्रु तला का दुःख के न पहचानने के बाद मारीच ऋषि के आश्रम में जन्म हुआ। सगर का भी सौतेली मा न विप देकर मारना चाहा। राम तदमण न अनक वप विश्वामित्र के आश्रम में माना पिता में दूर बिताने पड़े। इसी प्रकार कार्तिकेय का जन्म गंगातट पर एक सङ्कष्ट के वन में हुआ था। उसके यश माता पिता उस वहाँ छोड़ गए थे और उसे छह कृत्तिका बहना (यक्षा की एक उपजाति) ने पाला था। इन माओं के कारण उसका नाम कार्तिकेय पड़ा। वह बड़ा हूट पुष्ट बच्चा था, छह माओं का दूध पीने के कारण उसका नाम पण्मुख भी पड़ गया।¹ आग चलकर वह ब्रह्मा का बेटा ब्रह्मण्य या सुब्रह्मण्य भी प्रसिद्ध हुआ। वस उसका नाम स्वद रखा गया। इतने नाम उसके पुराण और महा काव्य में मिलते हैं। साथ ही उत्तरी भारत, दक्षिणी भारत और श्रीलंका में भी उसके ये नाम प्रसिद्ध हैं।

स्वद आग चलकर यन्त्रा के एक कुल का नेता बना। उस समय चौथा दशानुर सग्राम हो रहा था और तारकामुर से देवगण हार रहे थे। देवा न भिन्न यक्षा से सहायता माँगी। यक्षा न सग्राम में भाग लेने से मना कर दिया, परन्तु कार्तिकेय ने 'वय रक्षामि' का नारा देकर सहायता देने का वचन दिया। उसके नेत्रत्व में अनक गणा, कुछ यक्ष गण्यव किन्नर नाग, पिशाच भूत जादि ने इंद्र की सहायता के लिए प्रस्थान किया। वे सब रक्ष या राक्षस कहनाए। इंद्र ने कृपण होकर कार्तिकेय को पूरी देवसेना का सनापति बना दिया। भीषण रण हुआ जिसमें तारक मारा गया और अमुरा की शक्ति तोड़ दी गई। देवा न कार्तिकेय को इंद्र पद के लिए चुन लिया। (इंद्र चुना जाता था। आग नहुप भी इंद्र पद पर बठा। तभी किसी ऋषि या राजा के प्रसिद्ध हो जाने पर पुराने इंद्र को अपने पद की चिन्ता लग जाती थी और वह उस पदच्युत करन किसी अप्सरा को भेजता था। विस्तार के लिये देखिये 'भारतीय पुरा इतिहास काश 1)।

जिन रक्षा या रासा न रक्षा की रक्षा का थी, वही कुछ समय बाद देवा के लिए भार बन गए। कार्तिकेय न देव रमणिया के साथ जामोद प्रमोद करना आरम्भ कर लिया।¹ महाभारत में इंद्र ने वज्र से स्वर्ग पर प्रहार किया। उत्तर-पश्चिम काल में राक्षस जगुरा का पर्याय बन गया। उत्तर-पश्चिम भारत में देवा और राक्षसों में शक्ति परीक्षण होना लगा। सस्कृत साहित्य में कार्तिकेय का चारा का सरदार आदि अर्थात् कहे जाने लगे। राक्षसों के दक्षिण जाने के साथ साथ कार्तिकेय की पूजा उधर होने लगी और आज भी वे दक्षिण तथा श्रीलंका के पूज्य देवता हैं। गुप्त काल तक उनका प्रभाव मध्य भारत में था तभी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के बेटे और पान का नाम कुमारगुप्त और स्वर्गगुप्त रखा गया था।

दक्ष प्रजापति (लगभग ३१५० ई० पू०)

यक्षा की शक्ति और सम्भ्रता उत्तर मध्य भारत और पूर्वी भारत में फैली जा रही थी। मनुजा न मरस्वती तट पर पृथुदक (पेहोवा) के पास नई देव वस्तिया बसाईं थीं। प्रलय से कुछ पहले दक्ष प्रजापति के समय जिव की पूजा न करने पर उसके यज्ञ का विध्वंस शिव के प्रधान गण वीरभद्र न किया। 'भद्र यथा म देवा के आय के समान सामान्य जन को सम्बोधित करने का शक्त था।'² बुद्ध आदि से भी भद्र कहा गया है। सस्कृत नाटकों में भी भद्र नाम से पहले सम्बोधन के लिए अनेक स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है। कुबेर के प्रधान अनुचर मणिभद्र पूणभद्र आदि की पूजा बुद्ध और महावीर के समय तक उत्तर प्रदेश और मगध में अनेक स्थानों पर होती थी। व यक्षा के कुबेर के बान् प्रसिद्ध राजा थे जिनके महान् कार्यों के कारण उनकी पूजा कुबेर के समान होने लगी थी। वीरभद्र भी सम्भवतः दक्ष के समय यथा का राजा था।

प्रलय (३१०२ ईसा पू०)

३१०२ ईसा पू० में प्रलय हुई। अनेक वस्तिया उजड़ गईं। कई जनजातिया नष्ट हो गईं। मत्स्य जनजाति के कारण बहस्वन मनु ऊँचे पत्रता पर चला गया शायद नाहन के पास।³ यथा गन्धर्वा लोक में उसे शरण मिली। दा मन्त्र सम्भ्रता का मन्त्रिण हुआ और वहाँ अनेक वर्ष विताकर मनु पूव की ओर चलता हुआ भरयू के तट पर उतरा जहाँ उसने जयोया नाम की नगरी बसाई। मनु का किरात कन्या से विवाह हुआ यक्ष सम्भ्रता न उस पर बहुत प्रभाव डाला तथा उसके बौद्धिक क्षितिज को बहुत विस्तृत किया। बड़े पुनर्दृष्टांत में यक्ष

1 ब्रह्म पुराण 81

2 यक्षा की भाषा पत्नी जाने पर शायद आय प्रजाति के समान एक भद्र प्रजाति का भी जन्म हो जाय।

3 अरण्य ऐतिहासिक भ्रातियों का कोश

नाम का प्रतिविम्ब भलकता है ।

मनु ने नए मानव वंश को जन्म दिया । उसके साथ यक्ष, द्रव, नाग, गन्धर्व, गरुड आदि अनक जनजातिया के व्यक्ति उतरे ये । वे सय अलग अलग जातिया कहलान के स्थान पर मनुपुत्र या मानव कहलान लग । इस जन्तभुक्ति से अलग-अलग भी जनजातिया रही अपने पुरान नामा के साथ, पर भविष्य इस नई मानव जाति का था ।

इस पर सबसे अधिक प्रभाव यक्ष सभ्यता का था, फिर नाग सभ्यता का । कुबेर, मणिभद्र, पूषभद्र आदि की पूजा फली उधर मणिनाग मनसा आदि की । वा म यक्ष प्रभाव के कारण ही वेद म ब्राह्मण कमवाण्ट की उत्पत्ति हुई । सीधे साने वन नाग म कमवाण्ट का प्रवश हुआ ।¹

प्रलय के कुछ वष बाद

प्रलय के बाद मनु अपनी पत्नी को लेकर जयाध्या मे आया । उधर चन्द्र देवकुलगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा को भगाकर ले गया और असुरा की शरण मे चला गया । पाँचवा तारकामय देवासुर सग्राम जारम्भ हुआ । प्रलय के कारण गेना की शक्ति क्षीण हो गई थी और युद्ध गेना को भारी पडा । आखिर चन्द्र देवलोक लौटा और तारा बृहस्पति को लौटा ली । उससे उत्पन्न पुत्र बुध का लेकर वह पूव म हिमालय के अन्दर शिव की पूजा करने वाल गणा की शरण म चला गया । वहा यक्ष गन्धर्वों के बीच रहकर बुध बडा हुआ ।²

बुधक होकर बुध अपने विभिन्न गणा के माधिया को लेकर हिमालय से नीचे जाया और उसने मनु पुत्री इला स विवाह किया । उनके पुत्र पुष्टरवा हुआ जिसने प्रतिष्ठाण (प्रयाग के पास भूसी) बसाकर चन्द्रवंश आरम्भ किया ।

इस मसार का स्त्री स पुरुष बनने का पहला तान केस है । अपन जन्म कुछ विभिन्न परिवर्तन अनुभव करके वह बहुला नगर से बाहर रहकर हिमालय म घूमती थी । वहा एक दिन उसे गुफावासी एक यक्ष और यज्ञिणी मिते जिहाने उसका इलाज किया और कुछ मास बाद वह पूष पुरुष बनकर राजधानी लौट आई । कुछ साया लेकर वह पूव की ओर नई बसती बसाने चली गई । उसने पुष्ट नाम मुद्युम्न ग्रन्थ किया ।³

पुष्टरवा का उवशी स सम्बन्ध कालिदाम ने अपनी लेखनी से जमर कर दिया है । वह अप्परा थी । उसके कारण पुष्टरवा का गन्धर्वों से सम्बन्ध बना और उहाने उस तीन अग्निया का तान दिया ।

1 आगे देखिये यक्ष और धम

2 विस्तार के लिए अन्ध भारतीय पुरा इतिहास के शि

3 ब्रह्म पुराण 7 | 1-17 108

यक्षों का भारत में फैलना

यथा का मुख्य युद्ध व्यापारी था। व्यापार व निर्यात में वह धार धीरे-धीरे भारत में फैला जा रहा था। व्यापार व वाणिज्य व प्रगति व पथ पर अग्रगण्य था। उसका धर्म उग्रता था। उग्र वृत्त और वनस्पति का अच्छा ज्ञान था। स्वर्ण का सिद्ध भण्डार उसका धर्म था। व्यापारी मंत्रम वनारण्य रचना है और मंत्र उग्र सम्मान का है। उसका निवास स नदार्द भगडा नहा था। वह पूर्व और दक्षिण की ओर फैल रहा था।

उग्रम निर्यात कुल रथ या रथम का था जिसका जन्म हा देवागुरु सधाम में हुआ था व शक्ति का पुत्रास था। स्वर्ण व इन्द्र वन पर राक्षसों ने सत्ताधिनार का जानना लिया। स्वर्ण पीछे उनकी दया में लडाई हुई और ऋषिया व गुना में भी स्वर्ण व असुरा व समान निर्यात रत्तयिषामु कह गए। वे उत्तर पश्चिमी पर्वत और काश्मीर से नीचे धरत गए और पञ्चा राजस्थान मानवा मन्तराष्ट्र हान हुए व दक्षिण की ओर गए। पश्चिमी घाट से हान हुए वे रावण की तरफ फैल गए। उनमें पाछे पीछे अथ किरात युद्ध धार और दक्ष भी दक्षिण पश्चिम में गए। पुराण में उनका प्रयाण का अच्छा वर्णन है।

पत्तल यथा का वर्णन लें।

दशरथ व पुत्रास का म एत अति तेजस्वी यथा चरु लवर प्रकट हुआ था जिगम राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न का जन्म हुआ। प्राचीन काल से लेकर आज तक यथा में सत्तान प्रदान करने की शक्ति समझी जाती है जो पहले जड़ी-झूटिया के ज्ञान के कारण थी और फिर बुद्ध के काल तक आने-आने पूजा का विषय बन गई। हमारी हर भाषा व साहित्य में, विशेषकर संस्कृत पाणि और प्राकृत साहित्य में अनेक स्थला में यक्ष की सत्तान देने की शक्ति का वर्णन है।

रामायण में ही ताडना प्रसंग में यक्ष का वर्णन है। ताडना सुवेतु नामक यक्ष की पुत्री थी जो विष्णु में वनमर के निकट चरित्रवन में रहता था। सुवेतु महान् पराक्रमी और सदाचारी था। ताडना उसकी इनलौती पुत्री थी जिसका विवाह राक्षसराज रावण के एक सनापति सुवर्ण में हुआ था। उसके दो पुत्र सुबाहु और मारीच थे। ये तीनों मिलकर विश्वामित्र के धर्म में विघ्न डाला करते थे। ताडना और सुबाहु राम द्वारा मारे गए और मारीच भाग गया।¹

इसके बाद दक्षिण पूर्व में कोलार सोने की खदान तक इनके फैलने का संकेत मिलता है। आंध्र प्रदेश में यक्ष किरमीर की आज भी पूजा होती है। किरमीर शायद दक्षिण में पहुँची पहली टोली का नेता था। कोलार से निकले

सान ने इह वहा खीचा था ? या कोनार से इहाने ही सोना निकालना आरम्भ किया था ? धीरे धीरे य नीचे तक फलत चल गए । जैसे महाभारत म (शल्य पव, ४७ | २७) उत्तर म कुबेर तीथ का वणन है बंस दक्खन मे गौतमी नदी के तट पर धनद (कुबर) तीथ का (ब्रह्म पुराण ६७) और गौतमी गंगा क तट पर ही कार्तिकेय तीथ का (ब्रह्म पुराण ८१)

श्रीलका मे यक्ष—

यक्ष धीरे धीरे उतरते हुए श्रीलका तक पहुँच गए यह हम सिंहल या श्रीलका के प्राचीन इतिहास के विषय म दीपवस, महावस आदि सिंहली ग्रन्थों के वणन से पता चलता है ।

दीपवस के अनुसार गौतम बुद्ध के समय यहा यक्ष, गक्षस पिशाच आदि अमानवा का निवास था ।¹ पाचवी सदी ई० के चीनी यात्री फाह्यान के अनुसार दस द्वीप म मूलत मनुष्य नहीं रहते थे, केवल यक्ष नाग आदि निवास करते थे । अनेक देश के व्यापारी यहा आकर निवास करते थे ।² फाह्यान के कथन से स्पष्ट होता है कि यक्ष व्यापारी थे । और य यक्ष व्यापारी छठी शताब्दी ईसा पूर्व म पहले द्वीप के मध्य भाग म केन्द्रित हो चुके थे ।

विंशो के अनुसार यक्ष श्रीलका के आदिम निवासी थे । वे० के० पिटलई न इमका समर्थन किया है ।³ सेलिगमान के अनुसार महावस आदि म उल्लिखित यक्ष वेड्डा ही हैं ।⁴ पाकर भी यही मानता है कि जाज की वेड्डा जाति प्राचीन यक्षा की वंशज है ।⁵ परन्तु यक्ष मन तकसगत प्रतीत नहीं हाता क्याकि प्राचीन बौद्ध साहित्य म वेड्डा और यक्ष का पृथक् जातिया के रूप म वणन है । बी० कनकसमाइ का मत ठीक है कि यक्ष प्राचीन एतिहासिक यूची या पीली जाति के थे ।⁶ गुनसेकर का भी यही मन है कि यक्ष मगोनियन जाति के थ । वे हिमालय स उतर कर गंगा की घाटी म आए और पूर्वी तट से होते हुए श्रीलका पहुँच गए ।⁷

श्रीलका का इतिहास लाट (दक्षिणी गुजरात) के राजकुमार विजय के समुद्र प्रयाण स आरम्भ होता है । राजा सिङ्ग ने सबसे बड़े पुत्र विजय का युवराज

1 दीपवस परिच्छेद 1 गाथा 18 20-21 46-47

2 लेगे जैम्स ए रिशान ऑफ बुडिस्टिक् किंगडम्स पृष्ठ 101-102

3 के० के० पिटलई साउथ एशिया एण्ड सीनोन पृष्ठ 23

4 सेलिगमान सी० जे० द वेड्डाज पृष्ठ 132

5 के० के० पिटलई वही पृष्ठ 23

6

7 प० दया डी० गुनसेकर सीनोन डुडे (पुनायट्टेद एशिया 'जिन्ट 15 स० 2 पृष्ठ 96

बनाया था, परन्तु वह दुष्प्रवृत्ति का और उद्दण्ड निकला। दो बार चनावनी देने के बाद तीसरी बार विजय जीर उसके ७०० साथियों को एक जलयान में बिठाकर देश निकाला दे दिया। विजय का जलयान दक्षिणी गुजरात से चलकर मुप्पारक (शूपारक, बम्बई के पाम सोपारा गाँव, प्राचीन भारत का प्रसिद्ध बन्दरगाह) जा लगा। वहाँ पर भी उसके उद्दण्ड आचरण ने प्रजा को उस निष्पासित करने पर विवग कर दिया। अपने जलयान पर बठकर विजय और उनके साथी दक्षिण की ओर चल दिये और महावस के अनुसार¹ तथागत के महापरिनिर्वाण के दिन तावपणी पहुँचे। उसी रात को उन्हें गान वज्रान का स्मरण सुना² दिया। किसी यक्ष सरदार की पुत्री का विवाह मनाया जा रहा था। और यह विवाहोत्सव सात दिन लगातार चलता रहा था।³

इस घटना के उपरान्त विजय के साथियों की भेंट यक्षिणी कुवण्णा से हुई। उसके साथी कुवण्णा के पीछे पीछे एक जलाशय तक गए जहाँ उसने इन सबको बन्नी बना लिया। फिर वह एक साध्वी स्त्री का भय धर कर विजय के पास आई और उसे राजकुमार कहकर सम्बोधित किया। विजय ने समझ लिया कि वह एक यक्षिणी है। उसके केश पकड़कर वह दाएँ हाथ से तलवार उठाकर उसे मारने को उद्यत हुआ। कुवण्णा ने उससे दया की भीख माँगी और उससे विवाह करने साथियों को मुक्त करने तथा विजय का राज्य स्थापित करने में सहायता देने का वचन दिया।⁴

विजय ने उसे छोड़ दिया। कुवण्णा ने विजय और उसके साथियों को भोजन सामग्री दी और पेय पदार्थ लिए। तत्कालीन यक्षा की राजधानी सिरीसदत्यु (देखिए कपिलवस्तु से साम्य) में एक रात विवाह के अवसर पर यक्ष लोग एकत्र हुए। वहाँ उन्हें मारने में कुवण्णा ने विजय की सहायता की। इस प्रकार विजय तावपणी का राजा बना और कुवण्णा रानी।⁵ उनके एक लड़का और एक लड़की हुई।

विजय के साथी उसका प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार राज्याभिषेक करना चाहते थे जबकि कुलीना पत्नी पाए गिना विजय अभिषेक नहीं कराना चाहता था। परामर्श करके उन्होंने दक्षिणी मद्रास के पाण्डु (पाण्ड्य) राजा के पास रत्न जीर भेंट भेजी और विजय के लिए उसकी पुत्री के हाथ की माचना की। राजा ने यह स्वीकार करके अपनी कन्या विजया को ६६६ अय कुलीन

1 महावस परिच्छेद 6 गाथा 47

2 महावस परिच्छेद 7 गाथा 35-36

3 महावस परिच्छेद 7 गाथा 22

4 महावस परिच्छेद 7 गाथा 32

क्याआ के साथ लवा भेजा । उनके साथ अथाह सम्पत्ति, दास तथा कुशल शिल्पी श्रीलका आए । विजय का विवाह हुआ और तत्पश्चात् विधिवत् अभिषेक हुआ । कुवण्णा और उसके बच्चा को घर से निकाल दिया गया । कुवण्णा अपने साथी यम्भा के नगर की ओर लौटी, पर वे उसका राजद्रोह भूले नहीं थे, उतान कुवण्णा को मार डाला ।

यही कथा दीपवस म भी दी गई है जो महावस से लगभग सौ साल पहले लिखा गया था । यह महावस म प्रदत्त कथा से सम्बन्धित है । इसी प्रकार की कथा अनेक जातका म भी मिलती है ।¹

यह करण कथा अनेक तथ्य दर्शाती है । छठी शताब्दी ईसा पूर्व म श्रीलका म यक्षा की एक विकसित सम्प्रदाय थी । द्वीप म रहकर वे अलग बलग रह गए थे और उनम भारतीय मुख्य भाग की तरह अनेक जातिया की अतभुक्ति, सम्मिश्रण नहा हुआ था । विजय के अभियान से भारतीय सम्प्रदाय सबसे पहले पश्चिम से (मिली जूती) वहा पहुँची और फिर पूरव से अशोक के पुत्र और पुत्री के साथ पहुँची ।

श्रीलका म यक्षपूजा का उल्लेख अत्यन्त प्राचीन काल से मिलता है । महावस के अनुसार राजा पाण्डुकामय न यक्ष चित्तराज का एक मन्दिर बनवाया था ।² कुम्भजम्भ जातक क आधार पर परनवितान मानते हैं कि इस यक्ष चित्तराज की पूजा भारत म भी होती थी ।³ उसके अलावा श्रीलका म पूजे जान वाल अन्य यक्ष कालवल महेज वश्रवण जुतिधर विभीमन कलसोदर थे । साथ ही यग्निणी वन्वामुखी पच्छिमरजनी चित्ता, चतिया, अस्ममुखी आदि भी पूजित थी ।⁴ जिस प्रकार बुद्ध के समय म पूरे भारत म यक्षपूजा प्रचलित थी, उसी प्रकार श्रीलका म भी । बौद्ध धर्म फरा जन धर्म फरा लेकिन जनता न यक्षा को पूजना नहीं छोडा । आज भी वीर और वरहा के रूप म बिलाचिस्तान से लकर जामाम तक और हिमालय से लकर सागर तक यह प्रचलित है ।

इनक अनिर्दिष्ट स्वरु या कानिक्कय का भी स्थान दक्षिण भारत और श्रीलका म बहुत महत्त्वपूर्ण है । तमिल देश म य मुरग (माले शिशु) के नाम से जान जान हैं । वे उह अपनी जानि भाषा और साहित्य का सरसक देयना मानत हैं । श्रीलकावामी उनको इस नाम के साथ कण्डस्वामी तथा कण्ठकुमार नाम से भी पुकारत हैं ।⁵ 'कण्ठ स्पष्ट है कि स्वरु' का स्थानीय रूपान्तर है ।

1 पत्तुसन्धानव जातक देवधम्म जातक आदि

2 महावस परिच्छे 10 गाथा 88

3 एत सी रे हिस्ने ऑफ सीनोन जिस् । खण्ड I पृष्ठ 136

4 अदिशारम् अनि हिस्ने ऑफ बुद्धिज्म न्न सालान पृष्ठ 44

5 कनकपथि पित्तलई तथा चिनेट्ट हिन्दु धर्म पृष्ठ 22

सगम युग के कवि तस्वीरर त मुग्ग का पयत तथा बना क र्वाता क रूप म उल्लेख किया है। व मुद्ग के भा दयना मान जात थ। एत मुग्गपथ क नाम म भी जाना जाता है। सदा द्वीप क र्निगण-पूज म स्थित वातरगाम तथा उत्तर म जपना क्षेत्र म उाकी विशिष्ट प्रतिष्ठा थी। निम्नादिन कतुवर वग्गन आदि म भी एत पूजा ते प्रचलत क प्रमाण मित्त है।

वातरगाम का आज भा थालरा म जयधिर महस्व है। यत वानिनयग्राम का अपभ्रम कहा जाता है। एत एत र्वाता का क्षेत्र माना जाता है जा अत्यत प्राचान इतिहास रचना है और मुद्ग का दवाग माना जाता है। एत धन सभी धर्मों के मानत वाला क तिण ममान पावन है। इम दवना का अप्रसन्नवरना सिंहलवानी विपत्ति को योना दना ममभन है। दवाकथा क जनुमार वानिनय मार (वामदव) क प्रभाव म जात कग जानि की कथा वन्नि से दमरा विवाक वरक वातरगाम म वग गा थ। राजावनिय म उत्तरग है रि योपिा कुपणा न राजकुमार विाय का मारन के प्रयन तिण थ तव वातरगाम क कण्ठुमार और अय दयााथा न उसर जीवन की रक्षा का था।¹

पश्चिम म यथा और रागसा का प्रयाण

पूर्व की भार से श्रौतना तर की यग-याथा का वणन उगर दिया गया है। अय पश्चिम ती ओर लें।

वानिनय का देवराजा का पति होना और फिर इद्र चुगा जाना— इनका वणन हा चुता है। परंतु गीघ्र हा उमक गणा और दवा म लडाई का गई। जिमना अभिनयन किया गया था वही वात म चौरा का राजा कहा गया। ऋग्वेद म ऋषिया त पुरारा हमारे द्राही रागसा स मित गए है। अग्नि! तुम उह जला दो। (१ १ १ ४ १२ ५) हम रागसा स बचाआ। (१ १ ३ ८ ३६ १५) "अग्निदं। रागसा यानुधाना और विरभभव शन्नुआ का नाश करो। (१ १ ३ ८ ३५ २०) अग्नि! रागसा का नहन करो। (१ १ ५ १३ ७६ ४)²

देवा न रागसा को नीच धवेला। व सरस्वती के तट पर जा वने। महाभारत, शल्य पव ३७वें अध्याय म बलराम अपनी यात्रा म सरस्वती तट पर शखतीथ गए वहाँ म्पाशय नामक वृक्ष था जिमक नीच अनेक ऋषि (मुनि) यक्ष विद्याधर पराक्रमी गभस महाशली पिशाच और हजारों सिद्ध पुरुष रहते थ इनको मनुष्य नहा देण पान। (अर्थात् वे अब यहाँ से चल गए थ।) यन् वीवेर पुरी और कुवेर तीथ भी था। ह्यचरित के अनुसार ह्य के काल म यानेश्वर के चारा वाना म चार यथा की प्रतिमाएँ थी जिनका पूजा की जाती थी। तभी

1 सी एस नवरत्नम् एशाट हिस्ती आफ हिन्दूइज्म न्न सीलोन पृ० 74

2 विस्तार के लिए देखिए रामेय राधक प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास पृ० 160

राक्षसा म सारस्वत नाम भी पडा ।

बारह वष तक दव और मानव कुल दुबल पड़े रहे । फिर सरस्वती तीर से अगस्त्य न मानव कुला को इकट्ठा करके राक्षसा को हराया । इतना भीषण युद्ध हुआ कि अनेक वष तक सरस्वती का जल लाल रहा । उनके बाद कन्नौज का राजा विश्वरथ (विश्वामित्र) राक्षसा स लडने सरस्वती तट पर आया । वहा अपना काय पूरा करके वह वसिष्ठ के आश्रम मे ठहरा और उमका गाय पर प्रसिद्ध भगडा हुआ । यह २५४०-२५०० ईसा पूव का काल बडा उथल पुथल का था जब भारत म कोई महान् राजा नही था । उसी समय एक सांस्कृतिक क्रांति हुई ऋषिया का युग आया । ऋग्वेद के प्रमुख सूक्त इसी समय रचे गए । हिमालय की तलहटी म एक सत्र हुआ जिमम सात ऋषिया को ज्ञान फलाने का काय सौंपा गया । सप्तर्षि म तीन पुलस्त्य पुनह और क्रतु राक्षसा म काय करने लग । इस वान से उस समय राक्षसा की महत्ता पता चलती है ।

वसिष्ठ के पुत्र शक्ति को राक्षसा ने मार डाला सा उसके पुत्र पाराशर (यह पूववर्ती है, वेदव्यास के पिता नही) न राक्षस-यन आरम्भ कर दिया । यज्ञ का अथ मानवा को इकट्ठा होकर किसी काम का प्रयत्न करना था जन्म बाद म जनमजय न नाग-यन किया था । पिता की हत्या का बदला चुकाने के लिए पाराशर न हड्डारा राक्षसा को मार डाला । वसिष्ठ न उसे नही रोका अत्रि न आकर रोका पर वह नगी माना तब पुलस्त्य पुलह और क्रतु ने आकर इस नाश का समाप्त कराया ।

कुछ वर्षों बाद सहस्राजुन कातवीय (लगभग २५०० ईसा पूव) न अपनी राजधानी महिष्मती के तट पर बस हुए राक्षसराज रावण को हराकर बंदी बना लिया जिस छुडाने के लिए महर्षि पुलस्त्य का राजदरवार म आना पडा । फिर भी राक्षसा का बल नही टूटा । आज महेश्वर और उसन सामन नमदा के दूसरे तट पर बसे नागना टाली की खुदाई स यह सिद्ध हा गया है कि सहस्रवाहू की महिष्मती के सामन रावण का नगर (नागदा टोली) था ।

इस समय यक्ष व्यापारिया का वन म होकर जावागमन जारी था । राह म डाकूआ का बहुत भय रहता था इसम व्यापार म काफी दिक्कतें हानी थी । इसी कारण व भी शक्ति एकर करके चलत थे और जहा दिमाग और हाथ मिल जात थे वहाँ विजय निश्चित थी । (भारतीय इतिहास म अधिकतर साम्राज्य साथ के नायका के बनाए हुए हैं चाहे वह चंद्रगुप्त मौर्य हो या चंद्रगुप्त प्रथम या यशोधरन या ह्यषधन या गुजरात का विमल महता ।) ये व्यापारी यक्षराज मणिभद्र की पूजा करते थे । यक्ष धन का प्रतीक माना जाने लगा था । ॐ श्री

कुबेराय नम आर श्री गणशाय नम ने काय आरम्भ किया जाता था। आज भी व्यापारी यही लिखकर अपने व्यापार के वहीछाता की पूजा करते हैं और लक्ष्मी गणेश की पूजा करते हैं। जब मत्स्यवल्ग पवत पर सब जातियां ने मिलकर अमृत मन्थन किया तब लक्ष्मी देवा को प्राप्त हुई। धार्मिक ग्रन्थां म कुबेर को मन्दराचल पर रहने वाला बताया है। जर्थां लक्ष्मी पहले कुबेर के पाम थी फिर परिश्रम करके सब ने उम प्राप्त किया।

लगभग २४०० ईसा पूव म वशाली म मरुत सिंहासन पर बठा था। पुराण म वर्णित सालह चक्रवर्तियां म यह एक है।¹ महाभारत म भी इस चक्रवर्ती और पाच श्रष्ट सम्राटो म से एक कहा गया है। एतरेय ब्राह्मण म इसे कामप्र वा वशज बताया गया है और सबत द्वारा इस राज्याभिषेक की कथा भी बहा दी गई है। शतपथ ब्राह्मण म इसे आमोगव जाति म उत्पन्न कहा गया है। सबत की सलाह स इसने धन के लिए शिव की तपस्या की जिमसे प्रसन्न होकर यक्षा ने इसे हिमालय का एक स्वर्ण शिखर प्रदान किया। फिर इमन यन किया और जो सोना वाकी बचा वह हिमालय म गाड लिया जो बाद म युधिष्ठिर के राजसूय यन म काम जाया। रक्षा का राजा रावण दक्षिण म प्सका यन देखन और उस रोवन आया। लेस्ति प्सक यन का बभव देखकर रावण त्रिना लडे चुपचाप लौट गया।² इसी समय सरस्वती नदी का विनाशन स्थान पर लोप हो गया।³

इधर पूव म चक्रवर्ती समर (लगभग २३०८ ई० पू०) ने पुन असमजस को नालायक सिद्ध होने पर दशनिकाला द दिया था। पुराण के अनुसार असमजस कुछ दिन ऋक्ष और वानरा म रहा फिर पश्चिम की आर चला गया।

इसी समयवश के रघु की दिग्विजय प्रसिद्ध है जिसम उसने उत्तर के कुबेर को भी भुजाया था। लगना था देवा के समान मूल यक्षा की शक्ति भी समाप्त हा चली थी।

अनक पीरिया के उपरान्त सावभीम भरत का युग जाता है (लगभग २२०० ई पू०)। भरत अप्परा शकुंतला का पुत्र था।⁴ महाभारत के अनुसार शकुंतला ने दुष्यन्त स इसी शत पर विवाह किया था कि उसका जमा पुत्र राजा बनगा। भरत ने एर नई परिपाटी का जन्म लिया कि पुत्रा के याग्य न हाने पर उसने ऋषि भारद्वाज का माद लेकर अपना चक्रवर्ती राज्य उह सौप लिया।

दक्षिण म सभ्यता का प्रसार

हो सकता है व्यापार के मिलमिल म उडीसा की आर स हात हुए यन

1 विस्तार के लिए अरण भारतीय पुरा इतिहास कांश पृ० 801-4

2 महाभारत अनुसामन पव 259 9-32

3 वही

4 शतपथ ब्राह्मण

व्यापारी दक्षिण में पहुँच गया था, परन्तु गाँव गाँव में दक्षिण में मजदूर पहुँच महर्षि अगस्त्य विष्णु की राजकुमारी तामामुद्रा से विवाह करके विष्णुवासेत पार करके पहुँचे थे। अगस्त्य बचन मानव या दैत्य जान के जाना तथा धर्म बलि अन्तर पुत्रा के जान उद्देश्य लक्षित विष्णु थे। अन्तरवर्षी साधारणिता उद्देश्य ही डानी थी। (तामामुद्रा की छोटी बहन गम्भीरा का विवाह दध्यञ्ज अथर्वण से हुआ था जो बड़े प्रसिद्ध अथर्वण ऋषि थे और मधुविद्या के विष्णुपण सम्भक्त जाते थे। मधु का अर्थ है मूलतत्त्व। गंगा का मूलतत्त्व, पृथिवी पृथिवी का जगत् तम म वायु मूल, आकाश, चन्द्र, विष्णु मूल आत्मा तथा ब्रह्म की साजसज्ज पर तत्त्व सा करती पड़ती है। मूल तत्त्व का पता उगार के जानात्त्व का समार में घनिष्ठ तथा विष्णु सम्प्रदाय जान हाता है। यह उपनिषद् विद्या का आरम्भ है और अथर्वण पुत्र का दान। इसी मधु विद्या के विष्णु पर दध्यञ्ज त। चन्द्र से लडाईं हो गई।¹ अथर्वण जान के जान के बगीचा दन के कारण उद्देश्य मधुविष्णु मूलतत्त्व में स्थान नहा मिला था। दक्षिण भारत में अथर्वण कथा उद्देश्य बार में है।² इसी प्रकार पूर्वी भारतीय-द्वापगम (शानिया मुसामा जात सम्प्रदाय) पर में उद्देश्य नाम अथर्वण सम्प्रदाय से लिया जाता है। शानिया मज की बान य है कि दन मज स्थाना पर शिव की पूजा होती है। जात में गाँव की भी पूजा होती है। शायद अगस्त्य का कुम्भ और विष्णु पूजा में वाक् सम्प्रदाय है। या यह मारा प्रभाव मन्त्राज्ञा सम्राट् राजन की शिष्यजय के उपरांत पता है।

दा पीठिया वाक् परगुगम भी मूर्धन्य (बम्बई) होते हुए करत तन पदुच आर अपन अनुयायिया के साथ यद्दी बम गण। शानिया उद्देश्य प्रभाव सामित रहा।

अगस्त्य का अनुमरण करती हुआ अगनी पीठा में है अगस्त्य अतुन म हान कर रागमगज रावण भा शानिया में पता गया था³ निगव पाछे बान और क्रुधा जानिया भी पहुँच गई थी। तीन मा वर्षों से अधिन तन में अपनी मन्त्रता और शक्ति शानिया में पतान रह जिमना हीन जान हम प्रवत प्रतापी दगात रावण के प्राप्तिमात्र हान के वाक् पता पता है।

बुद्ध शानिया पहन रावण के सम्प्रदाय में। रावण हम देख चुने है अनव हुए हे जम इन्द्र अनव हुए है। शायद यह एन पत् था। एन मत के अनुसार रावण शानिया तमिन के ईश्वर शानिया का अपत्रण है जिसका तमिन में तात्पर्य राजा है।⁴ मगधो, भाजपुरी या तिबनी (पुराना प्रायत) में इनके गमान शब्द का अभी

1 अथर्व 1 80 14 1 84 13-14 आदि सप्तपथ ब्राह्मण 14 1 1 18 25
आदि सायब्य ब्राह्मण 12 8 6 मापव ब्राह्मण 1 5 21 बृहद्देवता 3 18 27

2 अथर्व भारतीय पुरा इतिहास बोध पृष्ठ 71-14

3 वायु पुराण 94-35 बहो पृष्ठ 725-26

4 अगस्त्य एन तमिनलैण्ड पु० 75

कुबेराय नम और श्री गणेशाय नम मे काय आरम्भ किया गयापारी यही लिखकर अपने व्यापार के बहीखाता की पूज गणेश की पूजा करते है। जब मदराचल पवत पर सत्र जाँ मथन किया तब लक्ष्मी देवा को प्राप्त हुई। धार्मिक ग्रथा पर रहने वाला बताया है। अथात् लक्ष्मी पहले कुबेर के प करके सब ने उसे प्राप्त किया।

लगभग २४०० ईसा पूव म वशानी म मत्त सिंहासन म वर्णित सोतह चक्रवर्तिया म यह एक है।¹ महाभारत म पाच श्रष्ठ सम्राटा म स एक कहा गया है। ऐतरेय ब्रात वशज बताया गया है और सवन द्वारा इसके राज्याभिषेक गई है। शतपथ ब्राह्मण म इस आयागव जाति म उत्पन्न की सलाह स इमन घन क लिए शिव की तपस्या की जिससे इस हिमालय का एक स्वर्ण शिखर प्रदान किया। फिर इसाना वाकी बचा वह हिमालय म गाड दिया जो वात म यन म काम आया। रक्षा का राजा रावण दक्षिण मे इस रोडने आया। लकिन उसके यन वा बभूव दखकर रा लोट गया।² इसी समय सरस्वती नदी का विनाशन स्या

इधर पूव म चक्रवर्ती सगर (लगभग २३०८ ई० पू नालायक सिद्ध हान पर दशनिवाला द लिया था। पुराण कुछ दिन ऋष और वानरा म रत्न फिर पश्चिम की ओ इसी मूयवश के रघु की त्रिभुजय प्रसिद्ध है जिर को भी भुकाया था। लगता था देवा के समान मूल हा चली थी।

अनंत पीठिया क उपरांत मावभीम भरत क २२८० ई० पू०)। भरत जप्तरा शकुंतला का पुत्र क शकुंतला न दुष्यन्त से द्सी शत पर विवाह किया था वनगा। भरत न एक नई परिपाटी का जम दिया। उसन ऋषि भारद्वाज का गाद लेकर अपना चक्रवर्ती र दक्षिण मे सम्यता का प्रसार

हो सक्ता है व्यापार के सिलमिल म उडीना

- 1 विस्तार के लिए अरण भारतीय पुरा इतिहास कांड
- 2 महाभारत अनुशासन पत्र 259 9-32
- 3 वही
- 4 शतपथ ब्राह्मण

चेहरे लगात थे ।^१ यह मास्क कहलाते हैं । तिब्बत, बंगाल तथा दक्षिण भारत म अभी तक चेहर नाच गीता म चढाय जाते हैं । बाहर यूरोप तक म जाज भी नाच गीता म ये नक्ली चेहरे लगाए जाते हैं । घाट जाति सिर पर सींग लगाती है ।^२ रामायण मे रावण की सेना चेहरा सहित और चेहरा के बिना भी असली रूप म उक्तिवचिन है । मास्क लगान की प्रथा उस समय तक प्रचलित थी जब गाधार-कला भारत म समृद्ध हो रही थी ।^३ दक्षिण के कयकलि नृत्यो म अब भी चेहर लगाते हैं । भूटान (भूतस्थान) मे द्रविड जाति रहती थी ।^४ मास्क बदल देने से चेहरा बदल जाता था । इसी म मास्क धारण करने वाले कामरूपिण अर्थात् कच्छारूप कहलाते थे । राक्षसो के साथ वानर भी ऐसे ही वर्णित थे । वानर हनुमान तो ब्राह्मण बन गय थे । सरकृत म पंडित थे । जान-बूझकर सीता से अशोक वाटिका मे प्राकृत वाले थे, वही राक्षस प्रहरी समझ न जायें ।

रावण एक महान् महारथी ही नहीं राजनीति और रणनीति का प्रवाण्ट पण्डित था । उसने मन्दादरी स विवाह करके एक डेले स दा चिडियाआ का शिकार किया था और दा प्रबल जातिधा को अपना भिन्न बना लिया था । हिन्दू धर्म की पंचक्याजा म एक नाम मन्दादरी का भी है— अहिल्या कुती तारा द्रौपदी और मन्दादरी ।

प्रात स्मरणीय कथाए

अहिल्या द्रौपदी कुती तारा मन्दादरी तथा ।

पचाड्या स्मरेन्नित्य महापातकनाशनम् ॥^५

क्या ये सब विरात कथाएँ थी कयाकि इनम सीता सावित्री आदि का नाम नहीं है ?

रावण ने वेद का सम्पादन किया उस समय वेद ही एकमात्र आय साहित्य था— वह भी मौखिक । अपने पिता म उसन वेद पटा था । उन पर विचार किया था । उसी वेद का उसने सम्पादन किया । ऋचाओ पर उमने टिप्पणिया तयार की । मूल मन्त्रा की व्याख्या का । 'यवहार अध्याय को बीच बीच म वृद्धि-यत किया । इस प्रकार मून वेद और रावण कृत टिप्पणिया और व्याख्याएँ सब मिलकर वेद का एक ऐसा सस्करण हो गया जा जम्बूद्वीप के सब आर्यो तथा आर्योतरा के लिए मान्य हा गया कुछ तो वेद के नाम से और कुछ रावण के प्रभाव स । आगे चलकर यही रावण भाष्य टिप्पणी सहित 'शृष्ण यजुर्वेद' के नाम

१ अगस्त्य वन समित्तवेण्ड पृष्ठ 75

२ इहिकवा 5 1929 पृष्ठ 289

३ इहिकवा 5 पृष्ठ 287

४ वही पृष्ठ 289

५ श्रीमद्भागवत पुराण 9 10 24-28

तमिल म तात्पय केवल 'राजा है ।¹

जी० रामदास ने 'रावण एण्ड हिज ट्राइस' नामक लेख म रावण पर विशेष प्रकाश डाला है । जिनासुआ का वह लेख पढना चाहिये ।² उहाने लिखा है कि वाल्मीकि रामायण मे रावण के एक सिर तथा दो भुजाआ का ही उल्लेख है । जब जब व्यक्ति रूप से रावण का चित्रण हुआ है एसा ही रूप मिलता है । लकिन विशेषण के तौर पर उसे दशकठ, विशभुज इत्यादि कहा गया है । रावण की स्त्रियाँ वाल्मीकि रामायण म रावण का एक ही सिर ले गानी म रखकर रोती हैं ।

यह निस्सन्देह ठीक है । तुलसीदास ने इस विषय म बहुत भ्रमोत्पन्न किये हैं । वाल्मीकि रामायण म न अगद की बात से रावण के दस मुकुट गिरत हैं, न रावण के दस मिर एक के बाद एक उगते हैं जिह राम न काटा था । रामायण युद्धकाण्ड ४१ / ६६ म राम न जब अगद को दूत बनाकर भेजा है तब कहा है कि मैं तेरा राज्य भोगना नहा चाहता । तब अगद जाया । उसकी बात सुनकर रावण क्रोध से भर गया । उसने अगद का बन्दी बनाने की जाना दी । अगद न प्रामाण्य का एक कगुरा गिरा लिया और भाग गया (८५, ८६ ८७) ।

रावण का नाम क्या था पता नही । दशानन शायद उसका सस्कृतीकृत रूप है । इसका अर्थ यह नही कि वह दस सिर वाला था या उसके बीस भुजाए थी । विशेषण म आज भी कहा जाता है फलाने म दस हाथिया का बान है काम करते समय उसके चार भुजाए ही जानी है । दशानन उसकी बुद्धि और द्दिस भुजा उसकी रण म भुजाआ की चपलता तीव्रता दिखाते हा । कुछ विद्वाना के अनुसार जस सिंह को पचानन (चारों दिशाआ और उध्व का एक साथ देखन वाला) कहा जाता है और कानिकेय को पडानन (चारों दिशाआ और ऊपर नीचे) उसी प्रकार रावण को दशानन (चार बंद और छह वेदान को जानन वाला) कहा जाता है ।

वाल्मीकि ने रावण की रूपावृत्ति का वर्णन हनुमान से कराया है जब पहली बार वह रावण को देखता है— अत्यधिक सुन्दर तजयुक्त और प्रभावशाली यत्तित्व । रावण बसत व समान शोभायमान था । उसकी अमृतकण्ठी नाभि कही गई है । वन योगसिद्ध पुरुष था । किसी योगिक क्रिया को जानता हागा जिसम प्राणवायु को पर्याप्त समय तक नाभि म केन्द्रित रखा जा सके । योगशास्त्र म माना जाता है कि शरीर की समस्त नाडिया का केन्द्रविन्दु नाभि है ।

रावण रूप बदल लता था अर्थात् मुखौटा लगाता था । शायद वह दस मुख का नक्ली मुख लगाता हा । जी रामदास के अनुसार रावण अपन चहरे पर नक्ली

1 अगस्त्य वन तमिललेख ५० 75

2 *हिक्का 5 1929

चेहरे लगाते थे ।¹ यह मास्क कहलाता है । तिवत, बंगाल तथा दक्षिण भारत में अभी तक चेहरे नाच गीतो में चढाय जात हैं । बाहर यूरोप तक में आज भी नाच गीता में ये नकली चेहरे लगाए जात हैं । खाड जाति सिर पर सींग लगाती है ।² रामायण में रावण की मेना चेहरा सहित और चेहरा के बिना भी असली रूप में उल्लिखित है । मास्क लगाने की प्रथा उस समय तक प्रचलित थी जब गांधार-बला भारत में समृद्ध हो रही थी ।³ दक्षिण के कथकनि नृत्या में अब भी चेहरा लगाते हैं । भूटान (भूतस्थान) में द्रविड जाति रहती थी ।⁴ मास्क बदल देने से चेहरा बदल जाता था । इसी से मास्क धारण करने वाले कामरूपिण अथात् वच्छारूप कहलाते थे । राक्षसा के साथ वानर भी ऐसे ही वर्णित थे । वानर हनुमान तो ब्राह्मण बन गये थे । सरकृत में पंडित थे । जान भूमकर सीता से अशोक वाटिका में प्राकृत वाले थे, वही राक्षस प्रहरी समझ न जायें ।

रावण एक महान् महारथी ही नहीं राजनीति और रणनीति का प्रकाण्ड पण्डित था । उसने मन्दोदरी से विवाह करके एक डेले से दो चिडियाआ का शिकार किया था और दो प्रवल जातियाँ को अपना मित्र बना लिया था । हिन्दू धर्म की पञ्चमयात्रा में एक नाम मन्दोदरी का भी है— अहिल्या कुती तारा द्रौपदी और मन्दोदरी ।

प्रातः स्मरणीय कथाएँ

अहिल्या द्रौपदी कुती तारा मन्दोदरी तथा ।

पञ्चाग्न्या स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम् ।⁵

क्या ये सत्र किरात कथाएँ थी, क्योंकि इनमें सीता, सावित्री आदि का नाम नहीं है ?

रावण ने वेद का सम्पादन किया उस समय वेद ही एकमात्र आय साहित्य था— वह भी मौखिक । अपने पिता से उसने वेद पढ़ा था । उस पर विचार किया था । उसी वेद का उसने सम्पादन किया । ऋचाआ पर उसने टिप्पणियाँ तैयार की । मूल मंत्रों की व्याख्या की । व्यवहार अध्याय को बीच बीच में वृद्धिगत किया । इस प्रकार मूल वेद और रावण कृत टिप्पणियाँ और व्याख्याएँ सब मिलकर वेद का एक ऐसा संस्करण हा गया जो जम्बूद्वीप के सब आर्यों तथा आर्यतरा के लिए भाग्य हो गया कुछ तो वेद के नाम से और कुछ रावण के प्रभाव से । आगे चलकर यही रावण भाष्य टिप्पणी सहित कृष्ण यजुर्वेद के नाम

1 अंगल्लय वन तमिललैण्ड पृष्ठ 75

2 इहिकता 5 1929 पृष्ठ 289

3 इहिकता 5 पृष्ठ 287

4 वही पृष्ठ 289

5 गीमद्भागवत पुराण 9 10 24-28

स विख्यात हुआ ।¹

वृष्ण यजुर्वेद मपानुषध मद्यपान स्त्री समपण, शिश्नपूजन, गौवध, नरवध ब्राह्मण वध कुमांगी वध आदि का विधान सम्मिलित हा गया जो वास्तव म वहिष्कृत आयों एव अगुरा की परिपाटी थी ।

रावण शिशोपासन था । वह जहाँ जहा जाता एक स्वर्ण निर्मित लिय साथ ल जाता— उमे बालूकी केनी पर स्थापित करके लिंग-पूजन करता था । मध्य प्रदेश के विदिशा जिले म गाव है — रावण । यहाँ रावण की आराधना भक्तजन उमी श्रद्धा और भक्ति के माय करते हैं जिम श्रद्धा भक्ति से राम का पूजन हाता है । विदिशा प्राचीन माग मे लगभग पाँच किलोमीटर दूरी पर वसा यह गाव विदिशा म तीस किलोमीटर दूर पडता है ।

वात्मीनि रामायण म एक स्थान पर यत् प्रसंग जाता है कि मधु नामक एक रावण रावण की वन्दन का अपहरण कर उम अपने साथ ल गया था । वात् म मधु से रावण की मिथना हो गई थी । इस रावण का गाय मधुरा से विदिशा तक विस्तृत था । रावण गाव इम दृष्टि से उमी रावण का हिस्सा हा सकता है ।

रावण गाव क वात् म वृक्ष के नीचे नेटी हुई जवस्था म रावण की प्रतिमा स्थित है जो पाँच मीटर लम्बी व ईसा पूर्व की निर्मित बताई जाती है । उसी गव म रावण ग्राम दयना के रूप म पूजा जाता है और वच्चा क मुडन प्रतिमा क पास ही कराए जात हैं । यही नही नव विवाहित जोडे शानी के तुरत वात् रावण क पाम घोष दन भी जाते हैं ।

कारकू जनजाति म प्रचलित एक जनश्रुति के अनुसार रावण एक अत्यत शक्तिशाली राजा था । सम्पूर्ण धरा पर उमरा एकछत्र शासन था । सत्युडा की उपस्थिता म भ्रमण करते समय वह यहाँ के वन उपवन पशु पक्षी व ननी भरना को देखकर अत्यत प्रफुरिलत हुआ । परतु यह जानकर उस दुख हुआ कि यह सुत्तर भूमि निजन है । इस पर उमन इस क्षेत्र को मानवयुक्त बनान का प्रण लिया । उसने महादेव की आराधना की और उस प्रणेश को बमाया ।

द्रविडा म जो वृष्ण यजुर्वेद अत तक प्रचलित है उसम हिसामय यन सुरापान मास भक्षण स्त्री सहवास नरवलि और शिश्न पूजन का विधान विहित है ।

इसम सत्तेह नही कि यह वेद की सबप्रथम व्याख्या है । इसम मन भाग और ब्राह्मण भाग का एक साथ मिश्रण कर दिया गया है ।

मूल वद और रावण कृत व्याख्या दोनों मिलकर एक रूप धारण कर गये और अत यह निणय ही नही किया जा सकता कि इस तत्तिरीय शाखा मे कौनसा

1 दैतिय वृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय ब्राह्मण ओर उस पर सायण भाष्य ।

मत्र भाग है और वीतसा ब्राह्मण भाग ।

मत्र ब्राह्मण मिलानर इस संहिता म १८ हजार यजु पठे जाते हैं । परंतु शुक्ल यजुर्वेद की संख्या केवल १६०० मत्रा की है जिनका द्रष्टा वाजसनेय ऋषि है ।

कृष्ण यजुर्वेद की परम्परा म एक नवीनता यह है कि जहा जाय परम्परा के अनुमार यन कराने के लिये चार विद्वाना की आवश्यकता हाती है, जा एक एक वेद के ज्ञाता हाते हैं वहा कृष्ण यजुर्वेद की परम्परा म उक्त चारा ऋषिया के स्थान पर केवल एक चरक ही आचार्य का काम चला देता है । बृहदारण्यक उपनिषद् म लिखा है कि चरक मद्र देश म धूमते है । यजुर्वेद के ब्राह्मण भाग मे दुष्ट कम करन वाले को चरक कहा है ।

वदिक परिपाटी म शाखा भेद भी ह । वद पठन-पाठन की अनेक विधिया निर्धारित है— उही विधिया को शाखा भेद कहत ह । कृष्ण यजुर्वेद की कोई शाखा नही है । इसलिये द्रविडा मे जहाँ इसका प्रचार है, न शाखा भेद है न गोत्र विस्तार । शाखा भेद के स्थान पर अनुवाका की मख्या का भेद रखा गया है । इसके अनुसार ६४ अनुवाक द्राविडा के ८० जात्रा क ४७ कनाटका के और ८६ तलगानिका के हैं ।¹

विजय-याना म उनके हाथस युद्ध करता हुआ मूपनखा का पति मारा गया । इससे अनुनापित हाकर उसन मूपनखा को दक्षिण भारत का दण्डकारण्य दे लिया और अपन भाई खर को वहा का गवर्नर तथा दूषण को सेनापति तथा उसका सरक्षक बनाकर १८ हजार राक्षसा की सेना उह दे दी ।

उसन सहस्रा राक्षसा को यह आदेश दिया कि जहाँ कहीं आय ऋषि रावण विराधी विधि स यन कर रहे हा वहाँ व बलपूर्वक वनि-मास और मद्य की आहुति देकर उसकी बताई विधि का प्रचार प्रसार करे ।

रावण सत्त्व ही शिवभक्त दिखाया गया है । राक्षसा जीर द्रविडो म शिवापासना और लिंग पूजन एक समान प्रचलित था । इसस इंगित हाता है कि किरात परिवार तथा द्रविड परिवार म साम्य था । व मस्कृति जीर विश्वासा म एन-दूमर स दूर नही थे । यही मरी स्थापना को बल दते हैं कि यथ जीर राक्षस न अथ किरात परिवारा तथा आग्नय परिवारा (नाग, आदि) के साथ दक्षिण म द्रविड (धनवान) साम्राज्य स्थापित किए । उस द्रविड शब्द का लेकर विशप काल्चन न पिछनी गता गी व मध्य म एक नई भाषा और जानि उत्पन्न कर दी जिसे भाष्यता दन के लिए नृवशास्त्रिया का जानी पहचानी चार प्रजातिया म एक नई प्रजाति जाडनी पडी जा बनानिन अनुसंधाना स अलग नहा थी, केवल

1 वैदिकीय आरण्यक

काम्या जोर गान्ती अण्णराणें नाचन तगी । परम्परा न पुगती अण्णराजा की भी गिनाया है— स्वग की कहकर— मनशा सहजया बगिना पुगिन्म्यला गनुस्वली घृताची शिश्वाची पूवचित्ति उम्लाचा प्रम्लाचा तथा उपशी गान लगी । य ग्यारह स्वग की प्रसिद्ध अपसराणें थी ।

कुन्ती न तान वाग एमे पुन उत्पन्न करना ठीक प्रताया । चौथी बार स्त्री व्यभिचारिणी कहतानी थी ।

उम समय उत्तर कुरु म यह प्रथा थी । आज भी हिमालय प्रात म इम प्रथा को मानन वाला पहाडी जातिया हैं गिन्ने यहा अतिप्रि का घर की लडकी हर प्रकार से सत्कार करती है । जौनसार क वासी ना अपने को जय भी पाण्डव-यशज कहत है । उनक यहा एन एन स्त्री क जनक पति हात है । एणि भारत म भी एसा जानिया हैं ।

कुछ लोग क सवन ह कि अदिकाण लाग पाण्डवा क दवताआ क द्वारा जन्म लने का कथा पर विश्वास नहा करते प्रशन है कि फिर जल्प मत न ही क्या स्वीकार कर लिया ? इमका तात्पय स्पष्ट है । कुन्ती क भव पुत्र मनुष्य-पुत्र थ और पाण्डव शनशृंग म पन्ना लण गा एनर कुरु की सीमा था । उत्तर कुरु म स्त्री पुम्प स्वतन्त्र थ । यलवाट को उपर लखा जा चुका है । प्राचीन परम्परा क रूप म जाया न एस स्वीकार कर लिया । पति के रहते कुन्ती न जा निवाग स गभ धारण किण उह ता उसन स्वीकार कर लिया किन्तु जो जन्म कानीनावस्था म किया था उमे वह समाज के एर क मार नग कह सकी ।

१२७ अध्याय म पाण्डु के मरन पर सिद्ध ऋगिण यशा के साथ पाण्डु तथा माद्री का शव पट्टचान हस्तिनापुर गए थ ।

कौचक वध प्रकरण म द्रौपदी न अपन पाच शश्व पति बताए थ ।

६ महाभारत जाण्डव १७३ अध्याय म गया किना अगारपण शश्व का राज्य था । अजुन का उमन युद्ध हुआ । शश्व मनुष्या से थ्रेष्ठ समझ जात थे । उसने अजुन को धारे लिए । अजुन न उम अपनी अम्र विद्या सिखाई ।

१० द्रौपदी क पाच पाण्डवा क विवाह क समय दण्ड्याम न कुन्ती म कहा था कि यह विवाह मनातन धम के अनुकूल है । जाण्डव २०१ अध्याय म भगवान् शकर को धम जन्म का जिम्मदार बताया गया । यह विवाह शकर का विधान ठहराया गया । शकर क मुख्य पापन यक्ष और शशम थे ।

११ रातसूय यशा स पहल दिग्विजय क त्रिण जजन उत्तर दिशा म गए । समा पव अध्याय २६ २७ २८ म एमका वणन ह । किपुम्पलण्ण जातने के बाद अजुन यशा के द्वारा सुरा रत हाटक (मान का कट्ट) नाम क स्थान को साम नीति स जीतकर मानसरोवर गए । वहाँ मुनि-कयाए दया ।

१२ वन पव क १२८ अध्याय म पाण्डवा के श्वेतगिरि और मद्रराचल

के मध्य गमन का वणन है। वहाँ मणिभद्र यक्ष यशराज कुंवर गधव त्रिपुरस्य यक्ष जीर राक्षस रहते थे। यक्ष जीर राक्षस बहुत बुरी थी। वरुण रौद्र और मन् राक्षस भी थे।

उसने उत्तर म क नास था। वरुण यत्र राक्षस विन्तर गरुड तथा गधवों का निवास था। कलास की तनहटा म मानमराज के पास ही उसने भी बड़ी भील जाज भी गवणहृद या राक्षसनाम क नाम म विग्यान है। इसी क तट पर रावण न घोर तपस्या करने शिव को प्रसन्न किया था।

१८० अध्याय म भूत गण (भाटा) का वणन है। १८५ म मन्च्छ विद्यावर, विन्तर धानर त्रिपुरस्य तथा गधव इत्यादि का वणन है।

१५४ अध्याय म भीम का यथा म युद्ध इजा तन्नि जन्त म मित्रता हो गई।

१५७ अध्याय म पाण्डवा को बदरिनाम म जटामुर नामक राक्षस मिला। उस स्थान पर युधिष्ठिर न वरुण है धम का मल राक्षस है। वे उत्तम रीति से धम को जानते हैं। इसम प्रत्यक्ष है कि मन्भारत काल म भी यक्ष जीर राक्षसा द्वारा सन्निहित धम प्रचलित था (जा आज भी चल रहा है) देवा का जादिम धम पिछड़ गया था।

१७० म १८२ अध्याय म फिर जन् जानिया का तथा निमात्रय म उनसे स्थान का विस्तार म वणन है। वहाँ मणिमान् कुंवर के सनापति का उल्लेख है जो मगध म भा पूजा जाता था।

१९ युद्ध क वान अवमघ पत्र म २ जा ६६ अध्याय म फिर यथा और विन्तरा और सूता का वणन है। भूतगण यक्ष मणिभद्र यत्र ता जय यक्ष पनिय का वृत्तर मास तिन आर घटा म भग भात भट किया। युधिष्ठिर मुञ्जवान् पत्रत पर जानर (६६ अ०) धन ने जाया। इस धन की रक्षा विन्तर करत थे (३ अ०)।

१८ वन पत्र १७० अध्याय म हनुमान न भीम का उत्तर शिवा का पथ बताया है। मोगिप्रक वन (जायन् पूना की घाटी) का रक्षा यक्ष वार राक्षस किया करत थे। और वरुण कुंवर का योग गमना जाता था।

१५ तम मन्त्वषण यक्ष के शरंग युधिष्ठिर म पूछे गये प्रश्न थे। इसम यक्ष का मातृवात्तम जाति शिवाया गया है।

१६ राजा दुष्य की पुत्री शिवायिनी की जिम पुत्र न गमान पाता गया था। स्यूगायण यत्र न इसका चाहा करने की कृपा से वरुण पुत्र बना लिया और कम्वा नाम शिवायिनी हो गया।^१

तरह से मयानक मान जाने पर भी प्राज्ञणा के माहिय म य न को इतना बुरा नहीं कहा गया है ।

यथा के ममाज म स्त्री से घृणा करने को कार्द गुजाइश नहीं थी । यक्षा म जादू जादि का प्रचलन था । मुर्गे की बलि ली जानी थी । वमदिरा पीत थे ।

जयभूटानात म यथा है सि वाद्धा की जग्मा स चित्तर यथा घुन ब्रुद्ध ह्वा और बुद्ध (वाग्मिन्व) की स्त्या कग्न क लिए आदमी को उसने पास हिमालय भेजा आजम सक्न (बुद्ध) न उग लिया ।¹ राजतरगिणी म यक्षा क काश्मीर म रहने के विवरण है ।²

मन्त्र स्तूप म यथा तथा देवताआ रे नाम गुन है— गुपत्रमुयक्य विरुधको यक्य गगित यक्य सुचिलाम यक्य कृपिरो यक्य जजकालगो यक्य मुत्सन यक्य च्पा यक्यी सिरिमा यथा चुलकान यथा महकाय देवता जाति ।³

छठी शताब्दी ईसा पून म यथा चत्य लगातार विश्राम स्थल क रूप म वर्णित किए गए है जहा बौद्ध और जन गुरु और भिक्षु बटुवा ठहरत हुए और प्रवचन करते हुए बताए गए है । उणन किया गया है कि व फलान फनान यथा क भवन म या फनाने यथा चत्य म ठहर व । बौद्ध साहित्य म वर्णित कुछ चत्या का उगहरण लिया जाता है — (१) वशाली के वज्जिया (निच्छत्रिया) द्वारा बुद्ध को दिया गया चापान चत्य ।⁴ (२) मट्टिवन म स्थित गुपतिट्ट चय जहा बुद्ध अपने पहले प्रवास पर ठहर व । बताया गया है कि यह एक बरगन क वृक्ष स्वता गुपतिट्ट का भवन है ।⁵ (३) बुद्ध द्वारा वर्णित वज्जिया के चत्य जय न वज्जिया को सावधान करत है कि उह प्राचीन चत्या की पूजा और सस्कार को भूलना नहीं चाहिय यदि व अपना कत्याण चाहने है ।⁶ बुद्धघोष ने उह यथा चत्य माना है⁷ और इसम कोई स दह नहीं है । वशाली क सारदद चत्य क सद्भ म उहा बुद्ध न वज्जिया क कत्याण की बातें बताई थी वह कहता है यह विशार यक्य सारदद की प्राचीन मूर्ति क स्थल पर बनाया गया प्रनार था ।

जन तामिल फलाभिक जीवक चित्तमणि म वृत्तन जीवक यथा गुप्तानन के लिए जाभार प्रकट करा था एन मंदिर बनावाता है और वहा मूर्ति की स्थापना

1 बने पृष्ठ 131

2 बने पृष्ठ 132

3 जानन् कुमारस्वामी यक्ष 1 पृष्ठ 5

4 वात्स On Y wang Chwang II 78

5 वात्स On Y wang Chwang II 167

6 महापरिनिदान सुत्तान्त और अगुनर निवाय V II 19

7 सुमगल विनासिनी

करता है तथा उसमें रख रखाव के लिए एक नगर भट करता है। साथ ही वह यथा के इतिहास से सम्बन्धित एक नाट्य तैयार करता है। जबकि वह नाटक विशेष अवसरों पर मंदिर में मूर्ति के समान खेला जाना होगा।

कथा सरिस्तागर भाग एक अध्याय १५ में दिया है हमारे देश में, नगर के अंदर, एक शक्तिशाली यक्ष मणिभद्र की मूर्ति थी जिस हमारे पूजार्थ ने बनवाया था। लग वह अपनी विपदा मुनाने आते थे, भाति भाति के उपहार भट करत थे और तरह तरह के जाशीवाद मांगते थे।' इसी प्रकार अध्याय ३१ में यक्ष निरपाप की कहानी है।

उस समय के हमचंद्र के परिशिष्ट पत्रों में दा मिन्या बुद्धि और सिद्धि की कहानी है।

लिच्छवि

लिच्छवि गण सबसे मशहूर था। लिच्छवियों ने बुद्ध के लिए स्तूप बनाया था। इतना महावीर की मृत्यु पर भी दीपन जलाये थे।

रामायण के अनुसार बाली, इक्ष्वाकु-युग विशाल न बसाई थी। यह विष्णु पुराण के अनुसार इक्ष्वाकु वंश के त्रिमिष्ठ न बसाई थी। जो हा, प्रगट होता है कि ये एक्ष्वाकू हैं।

य लग नेत्र को नहा मानत थे। ये 'जड़ता' थे। महावीर और बुद्ध का इनमें सम्बन्ध था।

ये लोग मुर्तियों को पानवरा के घा डालने के लिए टाग देते थे।

लिच्छवि वज्जि सभ में थे। वज्जि— लिच्छवि कहते, तीरभूत इत्यादि थे। ये आठ कुल थे— ये सब एक समान रहते थे। लिच्छवि सुंदर थे।

इनमें दाशनिज और धामिन श्रेणी काफी थी। वज्जि प्रदेश वही था जहां प्राचीन काल में सम्राट जनक और याज्ञवल्क्य के कुल यजुर्वेद पर विवेचन हाते थे। बाद में यह गण वन गया था। यहाँ यक्ष (यक्ष) शारनवाद की उपासना प्रचलित थी।

अत्य विश्वपतया वृक्षपूजा थी। बौद्ध पूर्वोपासना थी। सम्भवत यह यक्षा का प्रभाव अवशिष्ट था। यही भूभाग पहले यथा का क्षेत्र भी था।

मल्ल

मल्ल पूर्वी भारत का शक्तिमान गण था। भीम ने मल्लों को प्राचीन काल में जीता था। मल्ल कुसीनारा और पावा में बँट गये थे। मनु ने मल्लों को क्षत्रिय और ब्राह्मण क्षत्रिय की सत्तान माना है। ये अपने को राजा कहते थे। इतना सभ था। मल्ल यादव थे। कुशती के शौरीन थे। कुसीनारा के एक राजा का बहुल नामसे पुत्र लक्ष्मिला पडने गया था। वहाँ कोसल का पसनदी और वशानी के लिच्छवि राजकुमार महालि साथ पडने थे। मल्ल दाशनिज चितना में

ग रहत थ । लिच्छविया की भीति मल्ल चाड्ड जन धर्मों क प्रथम पूजक थ । मकुटप्रधान उनका एक सत्य थ । जन धर्म क अनुयायी कई मल्ल थ । पावा म मन्त्रीर की मृत्यु हुई थ ।

भागवत और भक्त

भागवत और भक्त कवत त्रिष्णु और विष्णु के भक्ता का कहना ठीक नहा है । क गुप्त कान म त्रिष्णु मे जुडा है । उससे पहले म तो यह बौद्ध धर्म और गव धर्म म जुडा था । मणिभद्र निराय १ | १८० म वह जा मुभम श्रद्धा रखता है और मुभम प्रेम करता है स्वग प्राप्त करगा । और महाभारत म सत्र प्रकार का अपराध करने पर भी लोग शिव की मानसिन पूजा करत पर पाप म मुक्त हो जाणगे । भगवद्गीता का भाव दर्शात हैं ।

चारा त्रिक्पागा को जिनम कुंजर भी एक है त्रिष्णु क साथ भागवत पुनारा गया है (महाभारत) । कुंजेर त्रिष्णु म पुरान दवता है । पाणिनि ने भी ४ = ६७ म मन्तराजा के प्रति भक्ति लिखा है । मथुरा क एक लेख म नाग दधिपण को भागवन कहा गया है । भद्रूत क शिवालय तथा पिपरह्वा घट के लेख पर बुद्ध का भागवत कहा गया है । महान् यश मणिभद्र की पचाया मूर्ति के नीचे लेख है जिम पर उग दयता का भागवन कहा गया है और उसका निर्माण करने वाल जपन का मणिभद्र भक्ता लिखत ह ।

यश पूजा एक भक्ति सम्प्रदाय का मूर्तिया मन्दिरा बन्धिया और चढाया क साथ ।¹

ब्रह्मा का दिन इस समय गणना से यथा का सम्बन्ध लिखता है।) लता का द्वीप भूमध्य रेखा से ३० के साथ ग्यना चाहिए।¹

प्राचीन बान म यी रया विश्व के समय का निश्चित करती थी।

ग्रीक समय से भारतीय प्रामाणिक समय / घट आया है। ग्रीक म जय बारह बारा ह नय भाग म पी पत्तन गगता है और व् गत्य म्हन बहलाता है (ब्रह्मा का दिन) नया दिन गारम्भ हाता है। अग्रता का गया दिन जाधी रात का गानू हाता है। इसम स्पष्ट है कि रात दिन के समय का गान हमारा लिया गया है।

जान हम जिसे लता या गीतान कहत है वहाँ गणना का वार् स्मृति विह्वल नहीं है। उमरी व स्थिति भा नय है वह उमान क दगानय पर नाचे भूमध्य रेखा पर स्थित था। वृष्ण क मरने पर जय नयु प्राय (नगभय १ ५० २० पूर) हुई तय द्वारका नून मद्र नया इन गार् नक्षिण का पुगनी मन्ग नूव गई श्रीर की पुरानी मन्ग सभ्यता नष्ट हा मद्र रयाति उसक तक द्वीप नून गए मन्गानिता द्वीप दूय गया। उन द्वीपा के नूनन से सागर का जय उस खाली स्थान का भरन भागा। भागा हुए हनरत मूया जीर उमर साधिया के सामने खात्री जगह निरन आर्। यह २० १/ मिनट का काम था। पानी फिर नीर वन समनल था गया आर पाछा करती हुई पगण की गना दूय गई।

तमिऱ भाषा म कयाकुमारी के लक्षिणा मू भाग का वणन है। तमिऱ क तीन मगम बान का वणन है। पन्ना जीर दूमर मगम (एक प्रज्ञा का परिपद जिनम विज्ञान मर्ममन्त्रि होकर रहते ५ जीर गइ रचनाजा का गुनन पर उह मायना प्रदान करने थे)^२ क नगर प्राचीन मन्ग जीर कपात्पुरम् थ। प्राचीन मदुरा क दून पर कपात्पुरम् प्रमुष नगर बना। फिर उमर नूनन पर^३ नई मन्ग (जाज भी स्थित) म तीसरा मगम बाल गारम्भ हुआ तो इमया पत्नी सती से तीसरी मन्ग तन था।

रामायण मन्गभारत से खबर म यनादान साहित्य तन म लता जीर मित्तल जलग जलग मान गए हैं।

१ बान रामायणकार कवि राजशेखर न सीता-स्वयंवर के अवसर पर सिन्धु नरन राजशेखर क साथ लकापति रावण का सवाट दिखाया ह।

२ पुष्पत विमान से आते समय लका से कुछ दूर चलकर विभीषण कहत हैं यह सिन्धु है।

३ भागवत पुराण (१ १८ ३०) म शुक्रदेव जी ने गम्द्र द्वीप के जाठ उप

1 Wellford F. A. Iatic Res ar hes Vol X p 146

२ यही रिज्ञाज मुहम्मद सात्त से पहल अवसर् म था।

3 वाल्मीकि रामायण दिष्टि धा काण्ट 41-17

यथा गभरा था जीर व उर मूलाय म अग्र्ये थ । तारी जीये निरल था परलता ती पछी थी जीर व निटर जीर शूर स्वभाय वान हात थ । यथ मनुष्य जीर पशुजा का माग ग्या थ जीर रनिरान तथा जगता पडा तीर नशिया म पूमा करत थ । यतिनिया का स्वभाव ता जीर भी शूर हाता था जीर व कपन म्प रत गध, रता म मनुष्या की पुभातर उर अपना गितार बनाता था । यत मनुष्या पर जान भी थ । वतारम म यम म वत पुग युग तत म्मे यथा की पूजा ताभा थी वराति म्प युग की तवया इत पटल की य । मूर्तिया भारत बना रता वतारम तथा सात्ताय सप्रताय म ३ ।

जन सात्तिय स भी म पता करता है कि रसा पूव की शात्तिया म यथ पूता वत प्रानिन थी जीर उत्तर भारत व प्रान्त शहर म यता थ यथ हात थ । ता सात्तिय म यथ भी पता करता है कि कुछ यथ डैर दर म्प भा तत थ ता तपस्विया ता जातर करत थ (उत्तराख्ययन | १६ र्थात्) चारागो व गडि निरुनाम व यथ का नाम उत्तराख्ययन (१९ | १६) म जामा है । यह यथ मातग यथि व गतिरुत उपना का रता करता था । यत अल्पमी चनुशो अमावस्या जीर पूर्णिमा व दिन तागा की मद वरत थ । पुत्र-नामिनी स्त्रिया व मानता माना पर यथ उनरो पुत्रप्राप्ति का वरता त्त थ । यथ लोगा की वामागिया म भी रता करत थ । म्प जगट पता गया है कि मणिभद्र यथ की प्रायना करन पर उरान माना व राग स नगर की रक्षा की । यत कुटा स्त्रिया का भी पता पा ता थ । मणिभद्र जीर पुष्यभ म्प यत उस समय मगध जीर जग म पुजत थ ।

पर यथ वेवन त्पानु ती नगी हात थ वे लोगा का मार भी डालत थ और जमर जत मापुभा की रत म भाजन कराव उतरा नियम भग करवा दत र । यत तागा व मिर च जात थ और भात पूव के यत उत्तरन थ । म्प विचित्र विश्राम यह भी था कि यत स्त्रिया म मशुन भी करत थ । नीची जातिया व यत जाग हो थ । यथा व उपनश्य म बहुत स उत्सव भी हात थे ।

यता व वार म जो वार्ते वतलार् गई है उनरा सम्य व मगध जीर जग के यता स है पर काशी व यता जीर मगध के यता की पूजा म कोई भद नहा था । सभवन काशी व यत जयवा देव पूजा म भेट वकरा मुर्गी सुअर र्थादि पशुजा आर पशिया व वनितान हात थ जीर पूजा म गध पुष्य व अतिरिक्त वनि पशुजा व रत्तरजित शव भी च्पाय जान थ । (जा १ | १०६ | १२७)

मत्स्य पुराण (अध्याय १८०) म यत हरिकेश की कहाना स काशी का यथ पूजा पर काशी प्रवाण पडता है तार यह भी पता चलता थ कि गिव-पूजा व जादान के द्वारा यक्ष-पूजा काशी म कस हती? हरिकेश यत पूणभद्र यत का पुत्र था । वह वतत पुत्र जाचरण वाला जीर तपस्वी था तथा वचपन म ही शिव भक्त था । हरिकेश व इस वाचरण म पूणभद्र यक्ष बहुत कुपित हुआ जीर उसने उम घर से

निवान बाहरकरा की धमरी दी पूणभद्र की राय म हरिकेश का जाचरण याना के आचरण के प्रतिकूल था। यश तो स्वभावतः दूर माम खाने वान और हिसा शीत हान के नीतिद हरिकेश को मनुष्या का जाचरण शाभा नहा दना था। जब हरिकेश न अपन पिताकी वान न माना ता उमे अपना घर छाड दना पण और वाराणसी म आकर उसन एक हठार वप तन शिव की आराधना की (मन्म० १८० | २०)। शिव न इस घोर तपस्या स प्रमत्त हारर हरिकेश म वर मागन को कहा। इस पर हरिकेश ने वाराणसी म मत्त स्थित रहन का वर मागा। शिव न उसकी रच्छा स्वीकार कर ली और उम काशी का क्षेत्रपाल नियुक्त किया और उमके सहायक यश दण्डपाणि उद्भ्रम और मत्तम यश नियुक्त किया गय (मन्म० १८० | ८८ | ९९)। मत्स्य पुराण म एक दूसरी जगह (१८ | ६२ | ६६) वाराणसी के शिव गणा म यश के बहुत स नाम गिनाय गय ह यथा विनायक कुम्भाड गजतुण्ड जयत मणोत्कट इत्यादि। इसम कुछ सिद्ध और मात्र मुग्ध वाले हान थ। कुछ का जाहार सिस्टा और कुछ कुवज और वामन हान थ। दूसर गण नानी मन्नाल चडधर महेश्वर दण्ड चण्डेश्वर तथा घण्टाकण थ। य बडे पेट वाले यश वज्रशक्ति वाल हान थ और मत्त अविमुक्त तपोवन ती रथा करत रहत थ।

इस कथा से कद वाना का सकेत मियाना है। सबसे पहली वान ता यह है कि हरिकेश यश की पूजा वनारस म होती थी और इस कथ का सम्यक पूणभद्र यक्ष से था। दूसरी बात यह है कि जिस समय वनारस म यश पूजा प्रचलित थी उम समय वहा शिवपूजा भी जारी थी। लगना है यश और शव धम म वरावर कशमकश जारी रही। अंत म दोनों धर्मों म समझौता हो गया था या या कश्चि कि शव धम ने यश धम को अपन म मिला लिया और जितन यश थे वे शिव के पाप हो गये। मत्स्य पुराण (१८० | ६६) म एक जगह यश तक कहा गया है कि महायक्ष कुपेर ने भी वाराणसी मे अपना स्वभाव छोड़ दिया और गणेशत्व पत्र को प्राप्त हो गये। शिव के सबक हा जान से मुद्गगर्पाणि यक्ष द्वार द्वार पर रक्षक का काम करने लग (मन्म० १८३ | ६६)। शव धम की यक्ष धम पर पूण विजय कर हूँ यह तो कटना कठिन है पर यह यनायक नही हुई यह ता निश्चित है। समवत गुप्त कान म शव धम की यश म पर पूण विजय हा गई। उम स क म हम पुरा तत्त्व के जाग्रर पर तो इमा नतीजे पर पहुँचत है।

पूणभद्र और हरिकेश म जब बहस हाना थी तब पूणभद्र उसना वाराणसी जाने से राकन का कारण अपना कभव बतलाता था। वनारस म परम्परा बहुत मुश्किल स मरती है। हजारो त्रप बीत जान पर भी हरिकेश यश आज के दिन

1 उसकी पूजा आज भी हरसू वरय के रूप में बहुत अधिक फेली हुई है।

यथागम म धोरी दूर पर भ आ म हरमु वरदा र नाम म लघावित छपी जगिया
 द्वारा पूरा जात ह । आज भी उता नाम मगन मानी गता है तथा हरमु वरदा
 श्रिया न मिर पर जात ह आर भूत मरिष्य की चाने यतात ^६ । य उतागन न
 विर ता हरमु वरदा व ही प्रमिद्ध मान जात है ।

धर्म और यक्ष

१९०२ ईसा पूर्व में प्रलय आया से पहले ही भारत में जातियाँ का समय हो गया था। जातियों में युद्ध का समय बड़ा कारण भोजन सामग्री हाता है किन्तु प्रकृति ने इन्हें भाग्य का मुक्त स्तन से प्रदान किया था। वेद में वर्णित देना के समय वृद्धा पणिया के गार्थे भगवान् ल जान पर या जमुगा के पानी न तन पर हुए थे। इन्हीं के कारण जातियाँ में मिश्रता भी बनी थी। और यन् मिश्रता गंधर्वों में माम खरीटन पर तथा यज्ञ में व्यापार के कारण बनी थी।

प्रलय के बाद मनु के नेतृत्व में यन् समन्वय लिपि देना रान चौगुना बड़ा। उमना प्रभाव धर्म पर बहुत अधिक पड़ा। आद्य चक्रवर्त वैदिक काल के धर्म और ईश्वरी मनु में बाद के धर्म में जमीन आसमान का अंतर जा गया। यन् का स्थान उपनिषद् और बौद्ध धर्म के मोक्ष ने ले लिया। लेकिन वह भी धीरे धीरे भूल गया। उमना स्थान कम के धर्म ने लिया— पूजा और साधना।

यन् जादिक रूप था धर्म का। जा कुछ मिला अग्नि के सामने मिल बैठकर खा लिया। उस धार्मिक जीवन के आचार के स्थान पर जातिक जीवन के व्यवहार पर धार जाया और मुक्ति धर्म बन गई। लेकिन उमना भी सन्ध्यासिया और भिक्षुजा पर धार था जो मानव का समाजिक बनता था। फिर गृहस्थ ही जीवन की धुरी बना। समार का छाड़कर बन की जाय न भागा। कम करके हा अपना धर्म अपनी मुक्ति प्राप्त करा। यह कम पूजा और साधना से गृहस्थ जीवन में ही पाया जा सपता है। गीता का मन्त्र आया। भारतीय सभ्यता का अन्तिम धर्म निवाण या माय नहीं है। गृहस्थ जीवन का छोड़ना नया है, बकि अपना कर्त्तव्य करना है। और यहाँ इस कर्मयोग में जातिक सहायता गुद्ध तान में नहीं बकि उच्च गतियाँ की भक्ति में जो व्यक्तिगत रूप से मानी जान पर तथा अनुकूल पूजा और साधना में उपामन करने पर पाइ जा सपगी।¹

जार्भिन्न बदिन गार्हिय में आज के धर्म के लगभग सभी मूल तत्त्वा का जभाव है। समार (जन्म मृत्यु ज्ञान पर) कम धार्मिक मन्थान, याग भक्ति इन सब विचारा का ब्राह्मणा उपनिषदा और विशद रूप से महावाक्या गीता बादि में प्रचरण हुआ है साथ ही गिय विष्णु यन्, नाग का पूजा का भी। प्रलय है

कि ये विचार ब्रह्म परम्परा से नहीं बल्कि कुछ अन्य परम्पराओं से आए हैं।¹

यक्ष गणों के सिद्ध और विद्वानों आदि पहाड़ों जानियों की सम्पत्ति परवर्ती जाय साहित्य में भरपूर मिलती है। पौराणिक साहित्य में तो इनकी विशिष्ट महत्ता जान पड़ती है— इन्हीं के देवताओं के पूजाविधि इन्हीं के विश्वासों और अविश्वासों को सबप्रथम मायता दी गई है। इनका प्रदेश स्वर्ग और इन्द्र लोक कहलाने लगा। न जाने कितनी मणियाँ पवतीय फल पूजा और अन्य उपजा के नाम इन जानियों में ग्रन्थ किए गए।²

वरुण

वद में वरुण का सबसे पहला देवता माना गया है जिसकी प्रशंसा में सूक्त ब्रह्मण्ये गे गे हैं। वह पृथ्वी पर ऋतु को स्थिर रखने वाला है। कुबेर भी वरुण के अधीन माना गया है। बाद में वरुण का स्थान इन्द्र ने ले लिया है।

वरुण जन का दयता है। जन से दवा का कोई सम्बन्ध नहीं था। जल से यथा और नागों का सम्बन्ध था। अधुनातन अध्ययन ने प्रमाणित किया है कि वरुण नामक ब्रह्मण्ये देवता का सम्बन्ध यक्षों गंधर्वों असुरों और नागों से था। एक स्तोत्र पर ऋग्वेद (७ ६१ २) में वरुण को असुर कहा गया है। अथर्ववेद (१ १०) में भी वरुण को असुर कहा गया है जो दवा पर शासन करता है और जिसके आदेश माने जाते हैं। जयन वाजसनेयी संहिता (३ १५२) में वरुण का असुरों और देवों पर राज्य उल्लिखित है। शतपथ ब्राह्मण (४ २ ७ ८) में गन्तावट वरुण के तन गन्धर्वों और साम के असुरों वनाए गए हैं। ये जल और उर्वरता के स्वता बाद में इन्द्र के दम्बाज के समीप और नत्नी हो गए। गणों के आरम्भ में सम्राट वरुण के आदेश पर सोम की रक्षा करते थे (शतपथ ब्राह्मण III 3 3 11) और इसी कारण इन्द्र के साम-यज्ञ के लिए सोम गन्धर्वों से विक्रय करना पड़ता था (एतदय ब्राह्मण I 27 1) तथा इसी कारण ऋग्वेद में (VIII 1 11 और VIII 66 5) इन्द्र गन्धर्वों का सामायत रिपु है।

कुमारस्वामि ने सबसे पहले अपनी पुस्तक यक्ष में दर्शाया था कि अथर्ववेद (१० ७ २८) में वरुण ब्रह्म या प्रजापति का जीवन का सर्वोच्च और परम शक्ति वतान हुए कहा है कि एक महान् यक्ष मृष्टि के मध्य में जन के किनारे तमस में लोटा हुआ जन जय देवता एव वृक्ष के तन से निकली शाखाओं के समान स्थिर थे। यही ध्वनि आग चलकर महाभारत में जन के ऊपर विधाम करते नारायण और उनकी नाभि में निवसते डठल पर कमल पर बसे ब्रह्मा की उत्पत्ति का

1. इतिहास उल्लेखना सोमा सनाट जेकोकी काथ मैरुद्गम बागन चार्पेटियर

2. १० इत्येव बाहरी भाषा का इतिहास द्वितीया साहित्य प्रथम टिप्पणी पृ० १२४

समुद्र रत्नालय है और वरुण समुद्राधिपति । इसी कारण वरुण को लक्ष्मी निधि माना जाता था । बाद में यह शब्द कुबेर का वाचक हो गया । समुद्रोत्थन लक्ष्मी का एक नाम वरुणानी भी है जो सन्ततपूर्ण है ।¹ साहित्य में दो स्थानों पर लक्ष्मी का कुबेर की पत्नी कहा गया है । इसी सम्बन्ध के आसपास की मथुरा में कुम्भार और लक्ष्मी की एक साथ मूर्ति पाई गई है जिसमें नीचे फास पर कुबेर और कुबेर की पत्नी लक्ष्मी लिखा है । जब कुबेर का स्थान गरुड ने ले लिया तब लक्ष्मी गरुड की पत्नी प्रसिद्ध हुई । महाभारत में कुछ स्थानों में उह गरुड की पत्नी लिखा है और शिप में भी दर्शाया गया है । आज भी हम दीपावली (यक्षपूजन) के दिन गणेश और लक्ष्मी की पूजा करते हैं ।

वरुण के पाश का पापा के दण्डस्वरूप बताया गया है । यह पाश सूखा (अजाल) है और यक्ष्मा है । यक्ष्मा (टी बी) जमीर जादमिया का रोग है । इसका यक्ष से सम्बन्ध है शाब्दिक भी (यक्ष से यक्ष्मा) कारण से भी (भरपूर भोजन के कारण हाता है) और अथ से भी (आज भी यह राज रोग कहलाता है और यक्ष का दूसरा नाम राज पाया जाता है) । इन पाशा से वचन के लिए वरुण की पूजा की जाती थी । यही पाश कुबेर के हाथ में वर्णित तथा शिल्प में चित्राया गया है ।

ब्रह्मा

ब्रह्मा भारतीय धर्म में सज्जक मान गये हैं विष्णु पालन और शिव सहारक । वरुण यह इन निमूनिया की सकल्पना का बहुत मरलीकरण है लेकिन इसमें इतिहास छिपा हुआ है । ब्रह्मा को यक्ष के अथ में वेद ब्राह्मण और उपनिषद् में माना गया है । यह यक्ष्मा शब्द का सस्वृत्तिकरण है । निम्नत से आन वाला नद सागणों जसमें में उतरकर ब्रह्मपुत्र कहलाया । अमा लोग ने ही पूव में जाकर ब्रह्मा (बरमा इसी साल दिया गया नाम मयमा) को बसाया । जनिया में भी ब्रह्मा को यक्ष अपनी शक्ति के साथ दिखनाया है । हिन्दू शिल्प में ब्रह्मा चार मुख वाले, चार हाथ वाले कमल पर स्थित मात हसा की सवारी करते दिखाए गए हैं । उनका कानों में ट्यूरिंग्स हैं सींग पर यज्ञोपवीत और बाल जटा मुट्ट में बंधे हुए । उत्तरीय ऊपर जाता हुआ और उदर बंध नीचे पहा हुआ ।

उपनिषदों में ब्रह्म का सर्वप्रथम वर्णन हुआ क्योंकि उनमें पूव के ऋषिया का ज्ञान है । ब्राह्मण में जो पुरुषमध्य अश्वमेध यज्ञ मछाट वरुण की पूजा के लिए वर्णित हैं उनका बहिष्कार कर मानव बुद्धि व यक्ष ऋषिया में ब्रह्म पर, जो अपने अदर स्थित है जार दिया । साथ ही पश्चिम भारत में भी ब्रह्म का प्रभाव दिखाई

देता है— कुम्भार व ब्रह्मण्य म जीर जगमर की पुत्रर भील म । दणिग भारन
म भी ब्रह्मा की पूजा पार्द जानी है ।

यथा म सत्रस पत्र गस्त्रनि फनी गायद इना कारण यथा व दवना
ब्रह्मा का सजक माना गया है । इसी कारण गम्भवन मान जान ब्रह्मा स
उत्पन्न बनाया जाना है— व म सत्रर मगीन शास्त्र नाट्य शास्त्र आयुर्वे
द्विशास्त्र वाग्जिशास्त्र (मत्स्य पुराण २५० ०), ऋषीनि (महाभारत, गानि
पत्र ५८ ८३) आदि आदि । हमारी निधि भी ब्राह्मी कहलाती है । 'ब्रह्मा
भारतीयों व हीन दवनाथा म म पहन स्वता है निदाने मृष्टि रयी है । उनना
सजक रूप दर्शानि व निण उह प्रजापनि विन्ववर्मा जीर विधाना भी कहा गया
है ।^१ उपनिषदा म उह मृष्टि का मानरर्त्ता नी माना है वरिण राहा गया है नि
गारी मृष्टि म यह गवप्रथम उत्पन्न हुआ थ । (मुण्डक उपनिषद् १ १ ५) और
इनन जन्वन् का ब्रह्मविद्या प्रजात की थी (मु उ १ १ २) । जययन् का वेत् ने
वाहर व गान का जाना कहा जाता है । ब्रह्मा न नारद का भी ब्रह्मविद्या का
प्राप्त कराया था (मण्ड उपनिषद् १ ३) । जमा हम अयत्र लिखा रह है नारद
मुनि निरान वश के थ ।

पुराण के भगवान् विष्णु न रमान्पघाग पृथ्वा का उद्धार लिया जिससे
आा चलकर ब्रह्मा उत्पन्न हुआ (मत्स्यपुराण १६८ २ भागवतपुराण २ ८ ११) ।
महाभारत म लिखा है कि मृष्टि व प्रारम्भ म सत्रर आधकार था । उस समय
एन विष्णाल जण प्रकट हुआ गा सम्पूर्ण प्रजाआ का अविनाशी बीज था । उस
त्रिय एव महान् अण म सत्यस्वरूप ज्योतिमय मनानन ब्रह्म जतयामी रूप स
प्रनिष्ट हुआ । उस अण्ड स ही प्रथम नृप्यारी प्रजापानन देवा व गुरु पितामह
ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ ।^२

पुराणा म ब्रह्मा का शिव स विराध स्वत-स्वत पर वर्णित है जिसम शकर
न नवना घमण्ड चूर किया इनना पात्रवां मुय काट लिया और दत् न पूजे जाने
का पाप लिया । मत्स्य पुराण मे लिखा है कि ब्रह्मा के शत्रु म वदून पर वि
"जस पृथ्वी पर तुम्हारे अस्तिव होने व पूज म मैं यहाँ निवास करता हूँ, मैं तुमसे
दूर प्रकार यच्छ हूँ । शकर न क्रोध करके इनके मस्तक का अपने अगूठे स
समनवर फेंक लिया ।^३ इस आख्यान म पता चलता है नि यथा का पहले

१ सजक व अनिरिन वहाँ वहाँ ब्रह्मा की सृष्टि का सहारक और रक्षक भी कहा गया
है— दत्तिए वि० सत्र ६४९ का यतोधमन् का स दसोर् अभिनेत । टी भट्टानाय कन्ट ऑफ ब्रमा
पृ० २४५

२ महाभारत आरण्यक पत्र १ ३) स्वद पुराण ५ १ ३

३ मत्स्य पुराण १८३ ८४-८६

आविभाव हुआ था परन्तु वे शिव के असह्य यथा के सामने न ठहर सके और हार गए।

त्रिपुराण मन्त्र संहिता में लिखा है कि ब्रह्मा एक बार शिवपत्नी सती के रूप-वीचन पर जादृष्ट हुआ जिस कारण शरर क्रुद्ध हानर इम मारन दीडा। विष्णु न शकर का रोमना चाहा फिर भी शरर न इम विष्णु जीर 'ऐंद्रशिव यनाया जिसन यह ससार म अपूज्य ठहराया गया।¹ अयत्र शकर ने जपनी सध्या नामन सुदर नया का दस दिधाया, ब्रह्मा मोहित हो गया और इसक पुनो को वह अशोभनीय काय त्रिपुराणर शरर ने इसका उपहास उडाया।² शतरूप अयवा सावित्री इसने द्वारा ही उत्पन्न की गई थी। इसने उसे अपनी धमपत्नी वनाकर भोग किया।³ पुराणा स प्राप्त यह कथा वन्कि ग्रन्था म निर्दिष्ट प्रजापति द्वारा अपनी कथा उपा से किय गए 'दुहितृगमन' स मिलती जुलती है।⁴

ब्रह्मा के अपूज्य हान की एक अय कथा है। एक बार ब्रह्मा यन की दीक्षा लेकर यन आरम्भ करना चाहा। तभी उसे ध्यान आया कि सावित्री उपस्थित नयी है जवरि पत्नी बिना यन आरम्भ नहीं किया जा सकता। उसन सावित्री को बुनान भेजा किन्तु उसे तान म देर हा गई। चिडकर ब्रह्मा न इद्र स कहा कि वर और कोई स्त्री ल आए। इद्र की लाई ग्याल की कथा को गायत्री नाम दनर ब्रह्मा न उसका वरण किया और यन आरम्भ किया। कुछ देर बाद सावित्री आइ और उसा दया कि यन लगभग हो चुका है। क्रोधित होकर उसने ब्रह्मा को शाप दिया कि वह अपूज्य बनकर रहेगा, उसकी कोई पूजा नहीं करेगा।⁵

इन सब कथाया स ब्रह्मा का यन मूल पता चलता है। यक्षो के विलासी जीवन का उनने देवता म प्रतिबिम्ब है। इसी कारण वह शिव के तपोपूत रूप के सामने न ठहर सका और धीरे धीरे ब्रह्मा मानवा को अपूज्य हो उठा। जैसे गंधर्वों का कामदेव भी शिव के तीसर नेत्र से भस्म हा गया था। काम या मार फिर भी मनुष्य के तीमरे पुरुषाय का प्रतिरूप था, इमीलिये बार बार हारकर भी वह जीविन रहा। शिव स हारकर वह अनग पुजा बुद्ध से हारकर वज्रयान म। वरण और ब्रह्मा की पूजा आज लगभग समाप्तप्राय है किन्तु वे और कुबेर गणेश म परिवर्तित होकर पूज्य रहे। आग चलकर इन सब सक्त्पनाया का और राम कृष्ण जादि के जीवना का मिलकर विष्णु की सक्त्पना म सम्मिलन हुआ जो शकर व समान ही पूज्य हो गया।

1 शिव रूप स 20

2 स्कन्द पुराण 2 2 23

3 मत्स्य पुराण 4 3 20 स्कन्द पुराण 5 2 12

4 एतरेय ब्राह्मण 3 333 मैत्रायणी संहिता 4 2

5 स्कन्द पुराण 7 1 165

प्राचीन काल में सरस्वती और इन्द्रवती नदियाँ के बीच की भूमि ब्रह्मावत कहलाती थी। आगे चलकर यह स्थल कुछ अन्य भागों के साथ मिलाकर आयावत कहलाया। क्या इसका यह अर्थ नहीं है कि ब्रह्मा (यज्ञ) और आय (देव) में अंतर था और पहले ब्रह्मा था फिर आय ?

ब्रह्मराक्षस शब्द साहित्य में बहुत आता है। न दियाई देन वाला शक्तिशाली प्रेत जिसने बनाए आलीशान घर बहुत पसंद हैं। इसका मूल क्या है, आज पता नहीं। और न ब्रह्मा भाज के अर्थ का। आज यह समस्त ब्राह्मणों को या सार परिवार वाला का भोजन कराने का अर्थ रखता है। क्या इन दोनों शब्दों का यथा में सम्बन्ध है ? यज्ञ प्रसिद्ध शिल्पी हैं।

विष्णु

विष्णु का प्रादुर्भाव काफी बाद का है पर त्रिमूर्ति के सदस्य होने के नाते कुछ शब्द यहाँ पर लिखित हैं। विष्णु की पूजा न ईसवी सन् के आरम्भ में महत्ता ग्रहण की¹ और गुप्त काल में यह प्रमुख मता में एक बन गया।² मगधाव्या और पुराणों में इसकी महत्ता का वर्णन है तिन सव पुस्तकों में ईसवी सन् के काफी बाद अपना वर्तमान कालपर प्राप्त किया। वरुण ब्रह्मा गणेश की सक्ल्पनाओं का नवीकरण और भारतीय पुरा इतिहास के महा मानवा कुबेर, राम, कृष्ण आदि के गुणों से मिलाकर विष्णु की सक्ल्पना प्रती है। वरुण कुबेर, और गणेश के समान विष्णु चतुर्भुज है और वही वस्तुएँ हाथों में लिए हैं शिल्प में। साहित्य में एक हाथ में कृष्ण का चक्र आ जुड़ा है। कुबेर के मोने का पीला रंग उनके पीताम्बर में भक्तकता है। मौर्य युग के बाद के समुद्री व्यापार के कारण सागर का नीला रंग उनके शरीर का नीला रंग बन गया। सागर की अनन्त लहरा (जा टकरा टकरा कर श्वेत भागों का गीर सागर बना गयी हैं) पर यात्रा करती उनकी सहस्रफला की शय्या हा गई और गणेश की पत्नी लक्ष्मी की सक्ल्पना उनके साथ आ जुनी। क्या इसी कारण मस्त्रत के एक कवि ने और इसका अनुसरण करके हिन्दी कवि ने लक्ष्मी को कहा है— 'पुरण पुरातन की वधू क्या न चंचला हाय' ?

विष्णु के महाभारत और वायु पुराण तथा वराह पुराण में दस अवतार गिनाए गए हैं। मन्व्य पुराण में इन दशावतारों में वेद व्यास और बुद्ध का भी नाम है।³ भागवत में विष्णु के बाईस अवतार बताए गए हैं जहाँ कपिल

1 ने एन इनर्जी Development of Hindu Iconography पृष्ठ 170-31

2 सुब्रीश जयसवाल Origin and Development of Vaishnavism पृष्ठ 180
286 इनर्जी Religion in Art and Archaeology पृष्ठ 18-20

3 म० पु० 47 237 252

दत्तानेय ऋषभ एव धन्वतरि को भी गिना गया है। हरिवंश पुराणादि में इन अवतारों का सत्या अनन्त बताई गई है—

प्रादुर्भाव सहस्राणि अनीतानि न सशय ।

भूयश्च भविष्यतीत्यवमाह प्रजापति ॥¹

तुलसीदास जी ने भी कहा है— हरि अनन्त, हरिवंश अनन्त। विष्णु सहस्रनाम में सहस्र नाम भी गिनाए गए हैं। यह एकीकरण और सम्मिलन का बड़ा सुन्दर ढंग था। भिन्न भिन्न जनजातियाँ या संगठित सम्प्रदायों के पूज्य का विष्णु का अवतार बनाकर अपन एक ब्रह्म धर्म में सम्मिलित करना। चाहे वह ब्रूम हो जो मिहार और उड़ीसा के कुछ आदिवासियों का पूज्य था या मत्स्य का उत्तर प्रदेश की जनजातियों का पूज्य चाहे वह बुद्ध हा चाहे ऋषभ चाहे कपिल हो या दत्तानय।

शिव

शिव का सृष्टि संहार का मूर्तिमान् माना जाता है। जो शिव कल्याण के जन्म वाले हैं पावती के साथ बनवा नगर नगर घूमकर दुर्घिया का दुर्घ दद दूर करते हैं जिनका व्यवहार धनी निधन से एक सा है जो निधन के भी निधन हैं, जिन्होंने जन कल्याण के लिए विपत्तियों लिये उन्हें महारक मानना उनके साथ जतीव अदाय करनी है। उनका मस्ती भर ताण्डव नृत्य² को संहार का नृत्य बताना उन पर घोर अत्याचार करना है। शिव की उदारता और भोलपन का लाभ उठाते हम देव दानव, असुर, राक्षस सबको देखते हैं। उनका नाम से ही अभिवादन का नमो शिवाय बना जिसका अर्थ है मैं आपके अन्दर विश्वमान करदाणकारी तत्वा का नमस्कार करता हूँ। आपकी नमस्त और राम राम से अच्छा कितना सुन्दर अर्थगर्भित शब्द है।

सेवकों के साथ सद्दामी का नाम ब्रह्मनाम होता है। इनका पूजने वाल गणा में अधिकतर जातिवासी और विभिन्न भयंकर जनजातियाँ थीं जिन्होंने अपन स अधिक सम्पत्तियों यशो जादि जनजातियों का विनाश किया या शिव की पूजा करने को मजबूर किया। फिर इनका पूजक महान् सम्राट् राक्षसराज रावण हुआ जिसने एक बार सारी सम्पत्तियों का हिलाकर रख लिया। इस कारण इन्हें संहारक समझने की गन्तव्यहमी उत्पन्न होना स्वाभाविक है या यह हा नवता है कि आदिवासियों का यह आदिम दवता आरम्भ में बहुत क्रूरकर्मी रहा हा और किरात जादि जनजातियाँ न इस अपनाकर इसका संकल्पना का उदात्तीकरण किया हा। साथ ही सब देवनाओं को बंद में रखने के पागलपन न इस आदि

1 हरिवंश पुराण 1 41 11 ब्रह्म पुराण 213 17

2 अर्थ धर्म शब्दकोश पृ० 135

देव को रुद्र से मिला दिया जा ऋग्वेद आदि वेदिक ग्रन्थों में निसर्ग प्रकाश को एक सामान्य देवता या यह क्षेत्रल कल्पना है।

डा० प्रियरसन ने लिखा है कि शिव तमिळ् शब्द है जो अति प्राचीन काल में ही आया भाषा में प्रवेश कर चुका था।¹ आज भी शिव को मानने वाले दक्षिण में करोड़ों हैं। शिव सिद्धांत के अनुसार शिव प्रेम और दया के स्वरूप तथा मांश देने वाले हैं। शिव की शक्ति ही सती है। जिस प्रकार सूर्य से प्रकाश निकलकर सारे ससार को सजीव और सक्रिय बनाना है उसी प्रकार शिव की शक्ति सती इस जगत का संरक्षण करती है। शिव को प्रेम और दया का रूप मानना और भक्ति का मोक्ष प्राप्ति का साधन मानना शैव सिद्धांत की सबसे बड़ी विशेषता है। इस सिद्धान्त के अनुसार नृपति के तीन तत्त्व हैं— पति, पशु और पाश। पति समस्त जीवा (पशु) के स्वामी भगवान् शिव हैं पशु जन्म मरण के बंधन में पड़ा हुआ है जीव समूह है और पाश वह भौतिक बंधन है जिसमें पड़कर पशु (जीव) अपने पति (शिव) से पृथक् हो गया है। जीव सासारिक विषय वासना के माह में पड़कर भगवान् से दूर होता जाता है और इस पाश के बंधन में फँसता जाता है। इस पाश से निकलने का एकमात्र साधन भगवान् शिव की भक्ति और जान है।

शिव का आदि स्थान मह पर्वत बताया गया है (महाभारत अनुशासन पर्व १७ २१)। विष्णु पुराण के अनुसार हिमालय पर्वत और मेरु एक ही हैं (विष्णु पुराण २ २)। महाभारत में ही आश्वमेधिक पर्व में इनका निवास स्थान मुजवान् पर्वत बताया है जो कलास के उस पार है।² कलास को भी इनका निवास स्थान बताया गया है।³ लेकिन इनका सबसे प्रिय स्थान काशी में स्थित श्मशान था।⁴ इसी कारण काशी का शिव की नगरी कहा जाता है। दक्षिण में भी इन्हें पहाड़ी प्रदेश का देवता माना है और महेंद्र गिरि इनका निवास स्थान है।

शिव का तपस्या स्थान हिमालय का मुजवान् शिखर बताया गया है। वहाँ वृषा के नीचे पर्वत के शिखरों पर एक गुफाओं में य पावती (उमा) के साथ तपस्या करते हैं। इसी उपासना करने वाले देव-गंधर्व, अप्सरा, यातुधान, राक्षस आदि कुवेर आदि अनुचर विवृत रूप में बहा रहते हैं जो मृगण नाम से प्रसिद्ध हैं।⁵

1 अवधनन्त तमिल साहित्य और संस्कृति पृ० 129

2 महाभारत आ० ४ १ सो० 17-26 वायु पुराण 47 19

3 महाभारत भीष्म पर्व 7 31 ब्रह्म पुराण 29 22

4 महाभारत अनुशासन पर्व 141 17-19 नागवध टोका

5 महाभारत आश्वमेधिक पर्व 8 1-12

इन भौति भौति व प्रसगा म नित्यास की भवन ददा जा सती है । या ता वाशी म शिव गणा न अपना अभियान प्रमशान न आरम्भ किया था या यथा को हगगर कानी का उतना प्रमशान बना दिया था । तत्पश्चात् यथा जाति पहाडी नानिया न कुम्भर का छोडकर शिव को अपना लिया और शिव और पवत शिव जाग विगत बस का साथ हो गया । शिवापाताता पुरपो म पत्र गद परतु स्त्रिया न कुम्भर की पूजा नती छाती । पवत-व्या (पावती) व धारण मिग्गटा कुम्भर हाया व सिर का धारण करत गणेश रूप म शिव या वल पुत्र बन गया और या तन पूय स्त्र शिव या छाया पुत्र कहनाया । गगा म वन था वह छाट माटे सत्या त्वनाआ का अपन अदर मिथ्यण करत विष्णु रूप म शिव का जाडीगर बन गया ।

शिव की बटुधा मूर्ति हाता ही नी त्रिग मात्र बना हाता है । गकर यागोगज ट वह स्वय उम तत्व व प्रतीक है जिम अणमस्पशरूपमव्ययम् — जा जा र अणय है, शण स्पश रूप रस, गधसपर है उसन प्रतीक उसनी मूर्ति म भी तिसी प्रकार की जाटुनि काइ अवयव कोई अग नहा हाता चाहिये । यह त्रिग उम ज्यानिलिग का भी समूचन हे जिसरा मा तात्वार यागी को हृदय चर म पचरग हाता हे । युग लोग एसा मानत है त्रि लिंग जा र वह अध्या तिमम वह स्थापित हाता हे त्रिग तीर योनि पुरुष तत्व और स्त्री तत्व व चिह्न हैं जिनक योग स गृष्टि ब्रम बनता रहता है । यदि कभी एसा था भी ता आज क बात विस्मृत हा गई है ।

अधनारीश्वर शिव पावती की सबसे सुन्दर कल्पना है । लोक बुद्धि शिव क रद्र रूप का यात्र नती करती । उसन शिव का स्वय एर चित्र बना लिया है । गाँव की चौपाल म धठिय या घर क भीतर झुडा नानी पोता को बहाना सुना गती हा वही चित्र दखन को भिनेश । शिव-भावती तरवेश म घूमते रते हैं और शीत पुषिया की सहायता करत रहत ह । उनर कृपापात्र साधु, महात्मा ही होत हा एमी बात रहा हे । जा उनने दरवार म पचै जाय जिसकी पुकार वान म पड जाय उसकी मुनी जायगी चाहे वह कसा भी हो । बटी और छाटी सभी याता म समान रूप स अभिगचि लेत हैं । जिम चाव स दवा की समस्यायें सुलभाई जाती हैं उसी प्रकार पति पत्नी की पचायन का जाती है । मरा तात्पर्य अधनारीश्वर त्रिगट स ह । आधा शरार पुरुष, आधा स्त्री का आध म महेश्वर, जाये म उमा । दोना पृथक् हा ही नहा सनन क्यार्कि जलग हाकर प्रत्येक आधा पूण निर्जीव है । एक ही शरार के दा जाधे ह इमीलिय उनग बडे छाटे का प्रश्न ही नहीं उठता । कार्तिदास न रघुनश म शिव पावती का वागवाक्विब सम्पृक्तौ (वाणी और अक्ष के ममान मिल हुए) कहा है । अधनारीश्वर की सकल्पना उसी भाव की प्रतिवृत्ति है ।

कुबेर

वीच मन्त्रिदेव की व्याख्या करने के बाद हम फिर यथाराज कुबेर को जार लौटते हैं।¹

कुबेर यथा के राजा है। महाभारत में आय कुबेर के कुछ नाम निम्न हैं— अलकात्रिप घनद, घनश्वर घनाधिप घनश्वर द्रविणपति, गदाधर गुह्यकात्रिपति कलासनित्रय नरवाहन निद्रिप राजराज, राजराट राधसाधिपति राक्षसेश्वर वित्तपति वित्तश यथात्रिप यथाधिपति यक्षपति यक्षप्रवर, यथराट यक्ष राक्षसभता यथरथाधिप इत्यादि। उनका नगर अलकमन्दा उदरीनाथ से चार मील उत्तर में है जहाँ से अलकनन्दा नदी उगती है। आज अलकमन्दा का लोक प्रचलित नाम भाणा गाँव रह गया है। हमारा प्राचीन ग्रन्थ में अलकमन्दा की एक विशेष पहचान उक्तार्थ गई है कि वहाँ की मिट्टी सूखते ही नाद आने लगता है। इतनी मादकता है उमरी धरती में। वह आज शकर के पात्र है और दक्षलाय के कोपाध्यक्ष। परन्तु किसी समय उनका स्थान घन उच्च रहा था। आज भी जब बौद्ध धर्म या बौद्ध अर्थव्यवस्था फैली होती है तो ब्राह्मण लोग यह आशीर्वाद पढ़ा है —

राजाधिरानाय प्रमह्य साहिा नमो वय वश्रवणाय कुमहे ।

स मे कामान् कामनाय मह्य कामेश्वरी वश्रवणो ददानु ॥

हम लागे जनि बलवान राजाधिराज वश्रवण (विश्रवा के पुत्र) को प्रणाम करते हैं। वह कामेश्वर हमारे सय कामों का इच्छित पदार्थों को हम दे। वश्रवण महाराज कुबेर को प्रणाम।

कुबेर के विषय में विस्तार से पीछे बणन किया जा चुका है। महाभारत के अनुसार उसा जनि जीर वायु की सहायता से मोना प्राप्त किया था। इसका जय अग्नि की भट्टी को वायु की धौकता से अत्यन्त प्रज्वलित करके मोन को पिघलाकर पत्थर से अलग करना है। वह उत्तर दिशा का दिग्पाल है। प्राचीन काल में साना उत्तर से ही जाता था।

प्राचीन भारत में कुबेर के स्वतन्त्र मन्दिर होते थे। हमारा पता बसनगर (विदिशा के निम्न) में प्राप्त दूसरी शती ईसा पूर्व के एक ध्वज-स्तम्भ के शीप में लगना है। कुबेर का निबाम बट-वृण कहा गया है। इस शीप कबट वृण में एक घड़ा और रुपया में भरी दो बलिया दिखाई गई हैं।

एक कथा है जनुमार कुबेर का धन का स्वामी तो माना जाता है किन्तु उसकी पूजा नहीं होती। इस कथा में कहा गया है कि कुबेर की पत्नी ने एक दिन ताना भारत हुए कहा— तुम्हें अपनी सम्पत्ति का बड़ा गव है किन्तु लाग तुम्हारी

नही लक्ष्मी का स्तुति करत है । बात कुबर को चुभ गई । कुबेर ने एक शानदार दावत दी । दावत में गणेश जी को भी बुलाया गया । गणेश जी ने खाना शुरू किया तो वे दावत का पूरा पकवान खा गया । पेट फिर भी नहीं भरा तो वे हीर माती तन खा गए । पेट फिर भी नहीं भरा कुबेर का खजाना खाली हो गया । वे गणेश जी के पग पर गिर पड़े और क्षमा मागी । कुबेर का अभिमान टूट चुका था ।

उस जया में स्पष्ट होता है कि कुबेर और गणेश की पूजा में प्रतिद्वन्द्विता होने पर कुबेर को हार माननी पड़ी । फिर भी घनश के रूप में उसकी छ्यानि कम नहीं हुई । वास्तव्य में अथशास्त्र में लिखा है कि कुबेर की मूर्ति घनानगर के तहग्राम में स्थापित की जाना चाहिए । एसा आज भी किया गया है ।

आज कुबेर का पूजा भारत में भूत सत्ता लिखार्य लेनी है परन्तु मध्य काल तक उनकी पूजा के मय रच जान थे —

कनव्य पद्मपत्राभो वग्ने नरवाहन ।
चामांनराभा वग्द सवाभरणभूपित ॥
लम्बादग्श्चतुवाट्टुयामपिङ्गलनाचन ।

—हेमाद्री धतलण्ड

यथाय कुबेराय वधशणाय धनघायाधिपतय धनघायसमृष्टि म दहि तपय स्वाय ।

यह पनाम जशरा का कुबेरमय है जिमन नपि विधवा है । छद वृहनी है ।

ॐ श्रा ॐ हा श्रा ह्रा वनी श्री वना वित्तशरयाय नम ।

—मत्रमहोदधि

उत्तराशापत इव कुबेर नरवाहा ।
पद्मायनिधाना त्व पति श्रीकण्ठमल्लम ॥
दाननिधनामवा प्राप्ता त्रिदिव मम दु षदम् ।
तत्सम तव तानन पापमातु विनाशय ॥

—दानर्चिद्ररा

गौरा

गणाना त्वा गणपति हयामह कवि कवीनामुपश्रयन्मगम् ।
मन्त्रगज द्रव्यगा त्त्वम्पन आन तृष्व नूतिमि सीद सात्ताम् ॥

कुबेर यत्पुत्रे क अरुभधाय्याव म भा गणपति ज्ञान जाया है । परन्तु इस गणपति में गणेश का सम्बन्ध है इसमें विद्वाना का पना है क्योंकि गणेश आर्येतर देवता है । आ जेवर समस्त त्त्वम्पन क नायन भी गणपति हा है, यद्यपि

शिव परिवार से इनका सम्बन्ध बना हुआ है। २१० सम्पूर्णतः न अपन प्रथा 'गणेश' तथा हिन्दू तंत्र परिवार का विकास में गणेश को आर्योत्तर देवता माना है जिनका ब्रह्मज्ञ प्रवेश और आदर हिन्दू देवमण्डल में हो गया।

देवा (जायों) की इनके सामने कुछ नहीं चलो इसनिय इह विघ्नकारी माना परंतु जत में उह गणेश का किशोर गणा के दिए मंगलकारी रूप का मानना पडा। जान यही मायता जगप्रचलित है।

इनका रक्त रंग माटा शरीर और लम्बा उदर यक्ष मूल दिखाता है। इनके चार हाथ और हाथी का मिर है जिसमें एक ही दात है। इनने कुंवर और विष्णु के समान एक हाथ में शंख दूसरे में चक्र तीसरे में गदा अथवा अशुभ तथा चौथे में पद्म है। इनकी सवारी मूपन है।

गणपति का सिर हाथी के समान बड़ा होना चाहिए जा बुद्धिमानी और गम्भीरता का द्योतक है। इनने आयुष्य भी दण्डनायक के प्रतीक हैं। गणपति विनाशक मंगल और ऋद्धि सिद्धि के दन वाल, विद्या और बुद्धि के जागार है। प्रत्येक मंगल काय के प्रारम्भ में इनका जाह्वान किया जाता है। प्रथम शिव मन्दिर में गणेश की मूर्ति पार्द जाती है। गणेश के स्वतंत्र मन्दिर दक्षिण में अधिक पाय जात है। गणपति की पूजा का विस्तृत विधान है। इनका मोदन (लट्टू) विशेष प्रिय है।

यात्रा के आरम्भ में गरी गणेश का स्मरण किया जाता है। पुस्तक पत्र वही जादि किसी भी लख के आरम्भ में पढ़ने 'श्री गणेशाय नमः' लिपन की पुरानी प्रथा चली आती है। महाराष्ट्र में गणपति पूजा मात्र शुक्ल चतुर्थी या व. समारोह से हुआ करती है और गणेश चतुर्थी के व्रत तो सार भारत में माय है। गणपति विनायक के मन्दिर भी भारत व्यापी है और गणेश जी जादि जार जनादि देव माने जात है।

गणेश का स्वरूप जद्भुत है। हाथी का मुख, छानी छाटी आंख सूट और बड़े बड़े काना से युक्त हान के कारण ही के गजानन कहनात है। हाथी शासकारी होता है गणेश भी शासकारी है वह बुद्धिमान जानवर माना जाता है चौड़ा मस्तक गणेश की बुद्धिमत्ता का प्रताक है। हाथों के समान बड़े बड़े कान इस बात की ओर संकेत करत है कि गणेश छाटी से छाटी पुकार को जरा सी आंठ को मुनने ममभन में समथ है। हाथी की आंखें बहुत दूर तक देख सकती हैं सो गणेश भी दूरदर्शी है। हाथी की सूंड भी यह विशेषता प्रसिद्ध है कि जिस सहजता में वह बड़ी-बड़ी चीज उखाडता है उनही ही सरनता से वह सुद उठान में समथ होनी है। साधारणतः एक सशक्त पहनवान छाटी वस्तु का उठान की सूक्ष्मकर्मों वृत्ति से वचिन हो जाता है किन्तु गणेश जिस दक्षता से सूक्ष्म काम

करत है उसी निपुणता से स्थूल वाय सम्पन्न कर सक्त हैं। मूड— लम्बी नास— बुद्धि का प्रतीक है। साथ ही वह नास ब्रह्म का प्रतीक भी है। गणेश की चार बाह उनरी चारा दिशाआ की पहुँच की आर गवेत करती है। देह का दाहिना भाग वद्धि तथा महम् स युक्त रहता है जबकि बाइ ओर हृदयपक्ष की स्थिति मानो गद है।

गणेश या गणपति म यथा जीर नागा दोना के चिह्न विद्यमान ह ।¹

उह विघ्नराग विघ्न विनाशा जीर सिद्धिदाता माना गया है ।²

उह सत्रसे पहले अम्बिका का पुत्र यानत्रत्वय स्मृति म बताया गया है³ जो गुप्त काल की कृति है।

शिव क गण कहाना ह गिन प्रमुख गणपति या गणेश ह। इसी प्रकार जनिया म भी गण कहलात है। क्या यह उनर महावीर स्वामी की पढाडी मूल की जाति दशाना है।

गणेश का विनायक भी कहन ह। मानव गृह्यसूत्र म चार विनायका के नाम लिए हैं — मालकटमट कुमुमदराजपुत्र उस्मिा और दवयजन।

कही रहा इह भूत प्रता के सरदार जीर विघ्नशर भी बताया गया है।

ब्रह्मवत पुगण म गणेश को कृष्ण का प्रतिरूप बताया गया है। एव पुराण म उह परब्रह्म भी कहा गया है। उनक साधारणत दो नत्र है परंतु रही-रही तीसरा नत्र भी है। यनोपवीत के रूप म कट्रे पर और पटी क रूप म कमर से लिपट साप ह।

गणपति की कुछ प्रमुख मुद्राए है जिनम से दो लक्ष्मी क माथ है —

(१) शक्ति गणेश— इह उच्छिष्ट गणपति महागणपति, उद्धव गणपति तथा विगला गणपति भी कहन ह। इसम लक्ष्मी की प्रतिमा साथ होती है। लक्ष्मी गणेश के आठ हाथ मे हात है जिनम ताता, जनार कमर रनजटित कलाश अकुश पामा कृपनता जीर मूत्र म निकलता पानी हाता है। इस मूर्ति का रग श्वेत ह।

(२) विगला गणपति— यह छह हाथ वाल गणेश ह जिनके पाच हाथा म क्रम स कल्पवृक्ष क पूजा का गुच्छा मत्ता तिल क लटजू परशु जीर आम है, जीर छटा हाथ वगन म बठी लक्ष्मी को पीये स समेत् है।

गणेश जीर लक्ष्मी का यह सम्बन्ध केवल साहित्य म ही नहीं पाया जाता

1 यानत्रत्वय स्मृति I 271

2 कुमारस्वामी यज्ञ सण्ड I पृष्ठ 7

3 जे एन बनर्जी Development of Hindu Iconography पृष्ठ 355

शिल्प में भी ऐसी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। नवीं दसवीं शताब्दी के राजुराहो के मन्दिरों में जहाँ लक्ष्मी और गणेश की जालिगिन मूर्ति दिखाई गई है, वहाँ लक्ष्मी और विष्णु की भी। भागवत धर्म के ज़रूर जब अनेक धर्मों का सम्मिश्रण होकर विष्णु की सत्कल्पना बनी तो उस पर सप्रसन्न जटिक प्रभाव गौश-अनुयायियों का पड़ा। गणेश को सुन्दर मनोहारी विष्णु का रूप दे दिया गया। किन्तु गणेश का जन पर इतना शक्तिशाली राज्य था कि वह कुंवर के समान अधि विस्मृत नहीं हुआ। उसका विघ्नहर्ता लाङ्कट्याणकारी स्वरूप जगमगाना रहा और वह विष्णु से जलम पुजता रहा।

लक्ष्मी

भारतीय उपासना में परमन्वयता की गना ब्रह्म निर्धारित हुई है। इस शब्द की उत्पत्ति बृहद् धातु से बताई गई है परन्तु भारत की आद्यभाषाओं और विद्वानों की अथ आद्यभाषाओं में परमात्मा के लिए इस शब्द के समानांतर ध्वनि वाली कोई सना नहीं मिलती है। वास्तव में इस सना के मूल में है आदिम यक्षोपासना का बरह्य शब्द जो आज भी भारत के चम्पे चम्पे के गाँवों में पूजा का पात्र है। उत्तर दिक्काल में यक्षों का देवा पर प्रभाव पड़ना आरम्भ हो गया था। कुछ विद्वानों के अनुसार वेदों की मरत उपासना के स्थान पर ब्राह्मण ग्रन्थों के कमकाण्ड और बलि-यज्ञों पर यक्षों को मिलाकर अथ जनजातियों का बहुत प्रभाव था। उसको परिष्कृत करने के लिए उपनिषद नाम अधिकतर पूर्व और मध्य भारत के मनीषियों ने दिया जा भूमि यक्षोपासना से बहुत प्रभावित थी। उपनिषदों में ही ब्रह्म को मार जगत का स्रोत माना गया। प्रमाण के लिए केन उपनिषद् का यक्ष और हैमवती उमा (यह भी पंचतीय ण द है) का प्रकरण है जो इसी पुस्तक में अयत दिया गया है। इसमें यक्ष के साथ उमा को ब्रह्मस्वरूपिणी बताया गया है।

इसी प्रकार लक्ष्मी की सत्कल्पना है। अथर्ववेद का छाटकर अथ किसी वेद में लक्ष्मी का वर्णन नहीं है। अथर्ववेद देवा के साहित्य का षा नहा उस समय की समस्त जनजातियों के साहित्य का संग्रह है। उसमें लक्ष्मी एष नहीं अन्व है। कुछ रोग, शोक और अमंगल का कारण हैं कुछ शुभ और मंगलमयी। 'ह जानवेदा अग्नि उनम जो पापिष्ठा लक्ष्मी हा उह तुम हमसे दूर अपसरित करा और जो मंगलमयी हा वे ही हमारा बनी रह।'¹ इसी सूक्त के अथ मात्र में ऋषि व्याकुल मन से प्रार्थना करता है जैसे बन्दना लता वृष-स्वर्घ को बध्दित किये रहती है वस ही यह अशुभ पाप लक्ष्मी मेरे जीवन को जकडकर बाधे हुए है। हे सविता देव, तुम मुझे पाप मुक्त करने उमे भगवान् अपने हिरण्यमय

हस्ता म मुर्धे वस्तु (त्रिद्वि) प्रणान करो ।¹ इसी को आग चतुर्ण 'ज्यष्टा' या 'तदमी' कहा गया । इससे पता चलता है कि लक्ष्मी किसी अन्य जनजाति का दन है जिसकी लानसा से अपि अपन का जनडा पाता है ।

गतपय ब्रह्मण म एव नहानी है । इसमें अनुगार लक्ष्मी की सुन्दरता और दीप्ति से देवा म जनन उत्पन्न हा गद और उहान उग मानना चाहा । परंतु प्रजापति न उह एमा करन से रागा ब्यात्रि वह एव स्त्री थी और ददा से कहा कि व उसने मार गुण छीन ल । तब अग्नि मामे अत्र बृहस्पति जाति ददा न तदमी के सार गुण छीन लिए । प्रजापति की सहाह से लक्ष्मी न दम देवा का दम प्रमान की यात्रियां भेंट का । अग पर उमने सार गुण उम वापस भिन गए ।

अम कानी से साफ पता चलता है कि लक्ष्मी का अ्व जाति म कोई सम्बन्ध नहा था वकि उन्नि उम अप्रतिष्ठित करना चाहा परंतु असपन रह । जो भी मानव के गुण हैं वे सब लक्ष्मी द्वारा दय हैं । व मत्र उसकी धरोहर हैं ।

यजुर्वेद म श्री और लक्ष्मी का अनन्य-अनन्य नाम जाया है । श्री शत्रु पवित्रता गीभाग्य सुख और पुभ का यत्न करना है । यह भी यथापामता से जुड़ी एक यक्षिणी है निम लान सिरी देवता कहकर पूजता था । लक्ष्मी नार श्री प्रारम्भ म दो शत्रु पान हान हैं । लक्ष्मी को एक स्थल पर बरषानी भा कहा गया है । सागर से उभरत लक्ष्मी यति समुद्र के जग्निदेवता वरुण की पत्नी मानी जाय तो दया जाशय है । दूसरी जोर रत्ना की छान तिमालय है यहां पर महायक्षिणी क रूप म सिरी देवता की लाकपूजा चलती थी । यत्र देवता उस यत्निम युग म परिधम अध्यक्षसाय और शात्र से जुगी थी और अत्र त्रिद्विया की दाता थी तिह मानव पसाना बगकर कमाता है । इसी त्तिम रूप का सकेत कालकर्षी जातक म भिनता है ।² यही जाग चतुर्ण पुराणा की श्री दन गई और 'त्रोत्र' म पूजित अनन्य दरिया का अपन म मिथुण कर लक्ष्मी की सररपता ।

लक्ष्मी या लक्ष्मी शत्रु यक्ष भापा का लगना है । जैसे यत्र रत्न ऋक्ष वृष्य दम तत्र लर लक्ष्मी यश्मा जाति । लक्ष्मी का आरम्भ से कुपेर से सम्बन्ध है फिर वह माय की पत्नी है और पौराणिक धम म आनर वह विष्णुप्रिया दन गद है । शायद दमीलिंग उसे चचला कहा गया है ।

वह उवरना की ऐयी है । कमल क सम्बन्ध से वह जल से सम्बन्धित है । उसके ल पुत्र कदम और चित्रकित (काच आर नमी) उवर भूमि के चिह्न हैं ।

एव स्थल पर उम काम की माता कहा गया है । काम यक्षो और गन्धर्वों का देवता है ।

लक्ष्मी को स्वर्ग म विष्णुप्रिया, धरती पर राजलक्ष्मी और हमार घरा

1 वहा

2 तैत्तिर वासुदेवचरण अग्रवाल प्राचीन भारतीय साकधन पृष्ठ 111 112

म 'गुणलक्ष्मी की सनाथा मे त्रिशूलपित्त किया गया है। हम जानते हैं कि राज शत्रु यक्ष के जय म प्रयुक्त होता है।

दीपावला मना का एक प्रकरण है। कार्तिक पूर्णिमा के दिन देवा की जहम् भावना एक भोग विलास म उभरे रहने के कारण श्री समृद्धि लक्ष्मी सागर म अपन पिता के घर चली गई और सत्र न्ये दग्ध्र वन गए। श्री लक्ष्मी का प्राप्त करन के लिए देवा और असुरा १ मिलकर सागर मथन किया। देवा की आगवानी गणनायक विघ्नहरणकर्ता गणेश जी न की। समुद्र स चौदह रत्न प्राप्त हुए जिनम एक लक्ष्मी थी। देवा की समृद्धि लौट आने की प्रसन्नता म उन्होंने दीप जलाए।

प्राचीन भारतीय शिल्प म लक्ष्मी की विभिन्न मनोहारी प्रतिमाआ का मृजन किया गया था जो आज भी मंदिरा और सग्रहालया की शोभा बना रही है। कहा अमृत कलश के साथ ता कही हाया म प्रकाश दीप धारण किए गजाए व दिखाई गई है।

“कथेन रमणिया की सुन्दरतम भगिमाआ स जाच्छादित खजुराहा की शिल्पावृत्तिया म लक्ष्मी को गणेशप्रिया क रूप म दर्शाया गया है। यह कृति अत्यंत सौंदर्ययुक्त है। निश्चय ही यह आलिंगित प्रतिमा अपन ढा की अद्वितीय कृति है।”¹

स्कन्द

स्कन्द के ज म के विषय म तीन पाठ हैं जिनम से दो सम्भवत ज्योतिष से सम्बन्ध रखते हैं और तीसरा है जिसम उसे शिव और पार्वती का पुत्र बताया गया है। मैन उपर (पृष्ठ ४७) वणन किया है स्कन्द यथा की एक शाखा का नवयुवक नेता था जिसन इन्द्र और देवा की मुसीबत पटने पर सहायता की थी। कुवेर को मानने वाले प्रमुख यश देवासुर सग्राम म संतस्थ रहें किंतु स्कन्द न जपन अनुयायिया का नारा लिया— जय रक्षाम। (हम रक्षा करम।) इन्द्र न उमे बुलाकर पूरी देवसना का सनाध्यक्ष बना लिया (शाब्द इसी का कवि भाषा मे लिखा गया कि इन्द्र की पुत्री देवसेना ने उसका वरण किया) और उसन प्रसिद्ध तारकासुर को मारकर असुरा की भारत म शक्ति तोड़ दी।

स्कन्द और उसका अनुयायी रक्ष कहलाए जा बाद म राक्षस कहे गए। यक्ष सबसे सम्य यापार म अग्रणी घनाच, अभियांत्रिकी विशेषज्ञ थे। लेकिन वे कुछ आरामपसन्द हो गए थे। उनके भाग रक्ष ने देवासुर सग्राम म देवों को नवृत्त कर विजय दिलाकर निद्रा त्याग दी और वे भारत का सर्वम शक्तिशाली कुत्र बन गए। देव और असुर दोनों की आपस म लड़ भिड़कर शक्ति नष्ट हो गई थी, राक्षस सस्कृति का मुकाबला करने वाला कोई नहीं था। इन्होंने यशो

पर भी दयाव डाला और अनन्य स्थाना पर उनके हाथ स शक्ति और व्यापार चीन लिया ।

लगभग एक हजार वर्ष तक स्व द यथा नेव और यथा रथ— सत्र का पूर्य बना रहा । किंतु प्रलय के बाद मनु न एक नई ससृति सत्र कुता का मिलाकर बना— मानव ससृति । धीरे धीरे मानवा न शक्ति ग्रन्थ की । पाच मी वर्ष के बाद न दान शक्तिज्ञानी हा उठ नि राशसा म टनर न सत्र । सत्र कुता का सम्मिलित मानव शक्ति क सामन राशसा न ठर सने । ध दक्षिण की आर गए आर वु उदाने अपन स पहल गा यथा (यथा निर्माण आदि) और प्राचीन नागा और ज्ञानवा पर विजय प्राप्त की । सहायजन क समय म व नमन के दक्षिणी तट पर ध जहाँ स हैहया न उह और दक्षिण म सने दिया ।

अगस्त्य और राशसा म कोई भगडा नहीं था दाना शिव वा मानन वाले थ । उसी समय समस्त विश्व को आय रते । क नर पर चरन हूण महर्षि पुनस्त्य राशसा म जा यम थ । दक्षिण की धरती उम समय अच्छी थी केवल पहान पर गाडवानाल के आदिवासी (जो दक्षिण अफ्रीका अण्डमान पूर्वी द्वीप समूह आस्ट्रेलिया तथा भारत मे रही वही आज तक पाए जात हैं) असभ्यान्वया म रहत थ । वहाँ रावण वा अधीनता म राशसा न अपनी शक्ति और व्यापार खूब बनाया और व जति प्रबन हा उठे । गर्वीत राशसा न धीरे धीरे अगस्त्य पुन की भी अवमानना आरम्भ कर दा और ऋषिया को राशसा की शक्ति भग करने के लिए राम का दक्षिण घुलाना पडा । राशसा मम्यता मग हूँ उम पर मानव ससृति न विजय प्राप्त की । फिर भी राशसा शक्ति नायम रहा विभीषण ने राम की बताई मानव ससृति को अपना लिया ।

आज भी दक्षिण म जनसख्या म तीन स्पष्ट धाराएँ लिया पडती है— एक घुघरात दाना दाने आदिवासी दूसरे यथा रथ पुन के गाल सुन्दर मुख बटी-बडा बाघा सुन्दर नासिका और गान चन्द्र के समान स्तन धार मानव जिनका लित्प म चित्रानन मथुरा से लेकर सुन्दर वायकुभारा तक है और तीसरे लम्ब मुख बाघे गार देवकुल क प्रतिनिधि ।

स्कन्द की अगस्त्य के सामन तक मानव कुल म पूजा थी । अगस्त्य शिव क साथ उनके पुन स्कन्द को भी दक्षिण ल गए थे । रथा क व जाति पूज्य थ जस दबा क इन्द्र थे । ज्यातिपी विश्वामित्र ने आकाश म छह वृत्तिकाओं से सम्बन्धित एक तार को उनका नाम लिया । लेकिन जम वृष जो एक समय दबा म भी पूर्य था देवासुर संग्राम के कारण अपने पत् से गिर गया उसी प्रकार मानव राशसा संग्राम क कारण मानवा ने स्कन्द की पूजा छोड दी बल्कि उसका बन्नाम किया । (पुराणा म उत्तर पश्चिम भारत म सिन्दर का स्कन्द ककर वुग भला वर्णन किया गया ?) केवल महाराष्ट्र बंगाल और पूर दक्षिण म स्कन्द की पूजा

मरी इस मायता को बल देती है ।

(१) स्वन्द जो ब्रह्म साहित्य में महामेन और उपसन कहा गया है । यह उसकी शक्ति और उसने अनुपायिया की मर्यादा लिखाता है । (२) भरतनाथ शास्त्र में स्वन्द का रंग देवताओं (स्वन्द के देवताओं) में मण्डल बताया गया है ।^१ स्वन्द का देवता के सेनापति भगवान् शंकर के प्रिय और पद्मेश्वर कहकर बणन है । (३) अग्निपुराण में स्वन्द का संस्कृत व्याकरण का आचार्य बताया है जिसका शिष्य कात्यायन है । (४) मुद्गल महिता में शिशुजा और बालना की अनन्य बीमारियाँ की अध्ययनता स्वन्द को बरत बताया गया है । चिरिस्ता के साथ स्वन्द की नगानार प्राथना करना भी सफरता के लिए आवश्यक कहा है । (५) मृच्छकटिक में डाकुआका चोरी की कला और विधान के आचार्य के रूप में स्वन्द की पूजा करने लिखाया है । बीघायन गृह्यशपथ में स्वन्द को दूत, उपसन, अपना-पुत्र कहा गया है । अथर्ववेद के खिल भाग का नाम अक्षय या स्वन्दया है । इसमें स्वन्द दूत को जो प्रसाद चढ़ाया जाना है वह स्पष्टतः तमिल भाजन है ।

विभिन्न समय का भिन्न भिन्न बणन स्वन्द के अपने उच्च स्थान से नीचे गिरा स्पष्ट लिखाता है ।

वगान और उड़ीसा में आज भी स्वन्द की मूर्ति बनाकर पूजा और विमर्जन की जाती है । इधर महाराष्ट्र में ऐतिहासिक काल से आद्य वंश के जनक शिलाभय्या में स्वन्द का देवता के रूप में उल्लेख है । आद्य वंश के महाराजाओं के नाम भी स्वन्द के ऊपर रखे गए हैं । उसके बाद गुप्त वंश के प्रसिद्ध कुमारगुप्त और स्वन्दगुप्त भी तथा कालिदास का कुमारसम्भव भी स्वन्द की प्रमुखता लिखाता है । उनमें पहले कुपाणा न सर्वप्रथम स्वन्द महासेन का अपना देवता माना । सातवाहन वंश के उपरांत दक्षिण और सुदूर दक्षिण के सर्व वंशों में स्वन्द का अपना पूज्य देवता माना ।

उत्तर में स्वन्द का कोई मन्दिर नहीं है किन्तु दक्षिण में स्वन्द के जनक मन्दिर स्थान-स्थान पर पाए जाते हैं ।

तमिल के सप्त पुराणों के समय का (इसा की प्रथम शताब्दी) दक्षिण कामियो का देवता मुद्गल बताया गया है । यह प्राचीन पवतवामिया का देवता है । इसकी पत्नी का नाम बली है जो कौरव कुल की है । यह अपने हाथी पिनिमुनम् पर सवार होकर युद्ध करता है । रक्षा ने इसको अपने देवता स्वन्द से

१ भरत नाट्यशास्त्र ३ २४-६०

२ ३४९-३५६

३ परिच्छेद १७-३२

४ अंक ३ श्लोक १४ से बाद

मिना दिया जिमग आदिनामी पिना लडे ही रागस मभ्यता रा माना लग । वती का स्वन्द की दूसरी पत्नी बना दिया गया । स्वन्द व जावन की सर घटनाए मुग्ग व जीवन पर लगा दी ग । येवन माना पिना व राम वही ग— मुग्ग की माँ नारावाई जीर पिना पनयाल थ ।

मुग्ग ने तारक रा नही मारा । उमन अमुरा रा नल दिया अमुरान का नाम मुर या मुग्गपत्र है । यही तमिळ दनयथा त्रिभुल अलग है । जय स्वन्द मुग्ग न मुर व शक्ति मारी तय उसकी देह के दा टुनडे हा ग— एक म मुर्गा निजला दूमर स मा । पहल य दोना लहन का आण पर फिर इह अनन जा गई । मुग्ग न एण को अपन भण्ट का स्थान लिया जीर दूसर को वाहन का ।

वीरव वया त्रलि को स्वन्द की दूसरी पत्नी बनान व वाण त्रिणा परम्परा न एण अनुचर इडुम्बन भी लिया । जस राम व हनुमान थे वस स्वन्द व इडुम्बन । स्थानाय परम्परा व अनुमार इडुम्बन प्रण के बनवामी घुमसुड कुल का था और अगस्त्य का गिष्य हो गया था । यह अमुर या राम भी बताया गया है । बाद म यह स्वन्द स जुग गया । स्वन्द व अनन मन्दि म गनी मूनि पाइ जाना है तथा कुछ मन्दिर स्वतंत्र रूप म भी समने है ।

दक्षिण म आजकल शिव व वाण स्वन्द मुग्ग सबसे प्रमुख देवता है विष्णु स भी अधिन पूज्य । यह स्पष्ट मरी भावना को बल देना है कि दक्षिण की जनसम्या म प्रमुखता प्राचीन भारत की सबश्रष्ट जनजाति यम/गगम की है ।

यक्षपूजा

ऊपर मीने यक्षा द्वारा पूजित देवताओ जीर उनके हमाणे धम म स्थान का वणन किया है । व तो हमार पूय देवता हैं ही समय बीत जाने पर य रा की पूजा भी लाव म पन गई जस इद्र अग्नि साम जादि देवा की पनी थी । इन देवा की पूजा तो समाप्तप्राय है जबकि यक्षपूजा इस विशाल देश के गाँव गाँव म फली हुई है । शिवालिंग दस पाच गावा म एक हाता है पर गाव का मुखिया और पूजनीय यम हर गाव म होता है—

‘गाँव गाव को ठाकुर
गाव गाव को बीर ।

भारतीय सस्कृति बडी अद्भुत और रहस्यमयी है । इसकी परत खोलन पर उनका जय समझना बडा दूमर काय है । किसने इस कितना दिया और किसन एससे कितना लिया ?

फिर भी यह स्पष्ट है कि एक समय यहाँ यक्ष प्रमुख देवता मान जाते थे । देवा (आर्यों) के जागमन पर उनके देवताओ न इह कुछ देवा लिया किन्तु उनके

हर देवता को वेद म या धर्मि माहित्य म रहा । त रहा यम कान्त मग्मात त्रिग गया ।

महाभारत गात्र म यम फिर प्रमुख न उर ५ । महाभारत म गाराऽरु त पात्रवाका वापायन (वग्नावा) नगर यममह का म्भारत यम क त्रिग भात था । भीम द्वाग वराभुर त। मागत पर एकाग्रा तगरी त य म्भ उगव मागत था । महाभारत म गे जनर एगा कथाए आता है त्रिम म्भारताधितो त्रिगियाँ म्भारत का एका म वृता क अपत्रवा यथा के पात जानी था । यत । त य त्रिगिया त उवरता जनर त्रवता ममभा जाना था । रामायण म भी यम वर्णित है । यम म बौद्ध और जन साहित्य म भी म्भारता त्रिपुत्र वगन है । म्भारत योत्र गया गाँवो जति क त्रिगिया म भी नागिया का म्भारत की रामना म यथा क साप्रिध्व क त्रिग वृथा ने पाग जाता टरित है । हा वृथा क नात अत्रित मूर्तिदा की त्रिगियाँ प्राय तग हैं आर यत्रत वटि प्रत्ये म एर गौडी म्भारता परत है । जान भा गाँव गाँव म बीर वरय त। पूजा म एर कामता यह भा होती है ।

बौद्ध यमपूजा

महामा बुद्ध न त्रिम समय अपन धम का प्रचार किया उम समय माधारण जनता म यमपूजा कात पती हुई थी । एपर त्रिगिया त। बुसा है त्रि गुजाना का उत्तरी दामी न गौतम को त्रम का यम देवता बनाया था । बौद्ध साहित्य म विशेषकर जात्र तथात्रा म यमपूजा की आत कथाएँ पात जाती है । यथा का मन्दिद्वर अथात् वृत्त ऋद्धि और प्रभाव याता दयता बनाया गया है । बुद्ध त यथा का गनत त्रिगा त्र वाता बनाया है । कुछ यम बुद्ध त त्रिगिया जीर त्रिगुआ त। तय वरत है परंतु जो महायनर हैं व धम म सहायक है जीर एका यथा पर वार् करत थ । त्रम प्रयथ है त्रि जनता पर यथा का त्रवता प्रभाव था त्रि बौद्धा का मय यथा का विराध करत का माहम त हुआ ।

तीसरी सदी ईसवी का एर बौद्धयथ महामायुगी है । इसम प्रत्येक स्थान म त्रिनय गाँवो पूजा होती है उनकी लम्बी सूची दी गई है। इनने अनुमार कुछ यथा क नाम य ५— राजगह म वज्रपाणि और वसुल कपिलवस्तु म कात और उय पातव, विराट म मन्थरन, ध्रायस्त्री म वृहस्पति सातन म सागर वशात्री म वज्रायु चम्पा म मुग्गन, वाराणसी म महानाव, द्वाररा म विष्णु ताम्पणी म विभीषण, उरणा (पागत्र देश की राजधानी उरगपुर) म मन्त वन्धायक (गहितव का राजधानी) म कपित, उज्जयिनी म वसुधात, अवति म रमुभूति, भररच्छ म भरक जाग्रान्त (अग्राहा पूर्वी पजात्र) मे मायधर गुमाम्नु (स्वात) म शुररद्रष्ट गिरिनगर म महागिरि, त्रिगिशा म वासव, रोहितक म कुमार कानिनेय, कलिय म

१ दीर्घनिकाय क एत अन्तर का ध्यानका के मन्थरत और सतितवित्तर में भी दिसाया गया है ।

वृहद्रथ स्युधन म दुर्यात्रा जजुनावन (अर्जुनायन) म अजुन, मालवा म गिरिकूट, शाकल के सवभद्र वणु (वतू) म कपिल, गंधार म प्रमत्तन तथाशिला म प्रमजन, भद्रशल म चरपास्ता गौर (गौरीर का राजधानी) म प्रभकर, लम्पान म बलह प्रिय मथुरा म गदभन पाण्ड्यमथुरा (दक्षिण भारत मन्त्रा) म विजय वजयत, मलय म पूणव करल म विन्नर नामिक म सुन्दर वनवासी (दक्षिण तनाडा) म पालन अहिच्छत्रा म रतिन काम्पित्य म कपिल, पाचाल म नगमेश हृस्तिनापुर म प्रसव जौधयो म पुरजय कुम्भेत्र म तरान जीर कुतरान (महाभारत के तरतुन अरतुन) एव उलूखनमखलानाम की यथी काटिवप (वगाल) म महासेन, कौशाम्बी म अनायास चम्पा म पुष्पन्त पाटलिपुत्र म भूतमुख काशा म अशोक मत्सूमि म जम्भन दरदेश म दवशर्मा काश्मीर म प्रभवर काश्मीर म सीमा प्रदेश म पाचिक जीर उनक ५०० पुत्र चीनभूमि म पाचिक का ज्यरठ पुत्र कापिथी (अफगानिस्तान म वेग्राम) म लवेश्वर रस देश म धमपाल वात्कीव (बल्लव) म महाभुज तपार देश म वण्णव का पुत्र सुवराज जिजपभ सिन्धुमागर म सातगिरि और हैमवत द्रविडदेश म पचालगड सिंहल म धनश्वर पारस देश म पागशर शकस्थान म शकर पह्लव दश म वेमचित्र उट्टियान दश म कराल गापकान (वखान) म चित्रसेन रमठ (हीग का प्रदेश जागुण या गजनी) म रावण ।¹

इसम मगध के नत्तीवधन नगर के नदी और वधन युगल यथा का वणन हे जो इस नगर क पूज्य दवता थ ।² इसी सूची म मणिभद्र और पूणभद्र हे जा भाई बनाए गए है । इसम जय यथा विष्णु कार्तिभय शकर म्मुच्छर सुप्रगुड दुर्योधन अजुन नगमेश (पाचाल का सरक्षक यथा) मकरध्वज (कामदेव या बौद्ध मार का दूसरा नाम) जार वज्रपाणि (राजग्रह की गृह चाटी का यथा) है । एक अन्य स्थल पर सक्क का माग के दन का यथा कहा गया है ।

इसम शकर जा शिव का दूसरा प्रसिद्ध नाम है को भी लिया जाना जाशक्य जनक नहीं है । शकर का यथा स निकट का सम्बंध उसक यथा नामो पर बनाए अनक मदिरो के पाए जान स मिद्ध हाता है जने विरपाय का प्रमिद्ध मदिर । साथ ही तुदियल यथा उसके पापद लिखाए गए है ।³

यथा का व्यवहार जनता के प्रति दयालु दिखाया गया है । साथ हा यह भी बताया गया है कि व बुद्ध की शिक्षा का को नहीं मानत थे । उनम भल और बुर दाना प्रकार के यथा थे । यह अवश्य है कि यथा यथा स अधिक भयावता जीर दुष्ट प्रकृति की था । कहा जाता था कि व भास खाती है रक्त पाती है और

1 वासुदेवशरण अश्रवान प्रचान भारतीय भौक्धम पुष्ठ 127 128

2 कुमारस्वामी यथा पृ० 11 12

3 कुमारस्वामी वही पुस्तको 2 हापकिल पत्रिक माट्थोलोजी 1951 पष्ठ

पुण्या का निगन जाना है।'

बौद्ध पाणि ग्योता के अनुसार जनक प्रकार के यक्ष हान हैं। कुछ वृथा में वसने वाले देवता हैं। कुछ सागर के व्यापारिया के अपने यक्ष विमान (स्वयं बनाए प्रामाणा) में सागर पर या भील के निवट मिलते हैं।

जन यक्षपूजा

जिनो के सरक्षण का जिहृ हमचन्द्र ने शासन-शक्तता कहा है जन सेवा में काम बणन है। कभी के धुन-पता कह जाने हैं कभी केवल देवता या देव। हमचन्द्र में बौद्धों में तीर्थ-परा में स प्रत्येक का एक युगल पुष्प-स्त्री देवताओं का जोड़ा है जो उनके सरक्षण हैं। वे यक्ष आर यो या यक्षिणी कह गए हैं। अपनी रचना त्रिशक्ति में हमचन्द्र ने उनमें से हरएक का नाम बाह्य रंग, भुजाआ की संख्या और हर हाथ में लिए चिह्न का सावधानी से बणन किया है। उनके नाम निम्न हैं —

जिनो के शासन देवता

जिन	देव	दवी
1 वृषभ	गामुख 4 हाथ वाल	अप्रतिचक्रा 8 हाथ वाली
2 अजित	महासक्ष 8	अजितवला 4
2 सम्भव	निमुख 6 ,	रुगितारी 4 ,
4 अभिनन्दन	यक्षेश्वर 4	वातिना 4
5 सुमति	तुम्बर 4	महाराली 4 ,
6 पद्मप्रभ	कुसुम 4	अच्युता 4
7 सुपाश्व	मानग 4	शाता 4
8 चन्द्रप्रभ	विजय 2	भृकुटि 4
9 सुविधि	अजित 4 ,	सुतारा 4
10 शातल	ब्रह्मा 8 ,	अशाता 4 , ,
11 श्रेयास	केशर 4	मानवी 4 ,
12 वामुपूय	कुमार 4 ,	चण्डा 4 ,
13 विमल	पद्ममुख 12 ,	विदिता 4
14 अनत	पाताय 6 , ,	अकुशा 4 , ,
15 धम	किन्नर 6 ,	कदपा 4 , ,
16 धाति	गरण 4 ,	निर्वाणी 4 , ,
17 कुय	गंधव 4 ,	यला 4 , ,
18 अर	यक्षेन्द्र 12	धारिणी 4 , ,

क्र.सं.	जिन	द्वय	देवी
19	मल्ली	कुंवर 8 हाथ वाल	वराटी 4 हाथ वाली
20	सुवन	वर्ण 8 , ,	नरदत्ता 4 , ,
21	नमि	भृकुटि 8 ,,	गात्रारा 4 ,
22	नमि	गोमध 6 ,	अम्बिका 4 ,
23	पाश्व	पाश्व 4	पद्मावती 4 ,
24	महावीर	मातंग 2 ,	मिद्धायिका 4

शासन-देवता ही नहीं, जना की यक्ष पूजा, उनके साहित्य चित्रकला और शिल्पा में बड़ा वर्णों से चित्रित है। जना में उह विस्तृत पूजा होती है जिसमें वह उह वरदान आशीर्वाद और संरक्षण प्रदान कर और कहा-कहा तो उह जिना में भी उपा उठा लिया है विशेषकर गुप्त काल के उपरान्त छोटी शक्तियों में और मुख्यतया स्थिति भारत में।¹

प्रसिद्ध तीन ग्रंथ भगवतीसूत्र सबसे प्रमुख पुस्तक है जिसमें वधवर्ण (कुबेर) के पुत्रों के समान जागपालक देवताओं के नाम लिए हुए हैं। वे हैं —

1 पुण्यभद्र	2 मणिभद्र
3 सालिभद्र	4 सुमणभद्र
5 चक्र	6 रक्ष
7 पुण्यरत्न	8 सन्ध
9 सत्रजम	10 समिद्ध
11 अमाह	12 जसत्त
13 सवकाम ।	

उमास्वाति के तत्त्वाथ भाष्य³ में तरह प्रकार के यक्षा की दूसरी सूची दी है —

1 पूणभद्रस	2 मणिभद्रस
3 शत्रुभद्रस	4 हरिभद्रस
5 समानभद्रस	6 व्याप्तिभद्रस
7 सुभद्रम	8 सवताभद्रस
9 मनुष्ययत्स	10 वनाहारस
11 वनाधिपतिस	12 रूपयक्षस
13 यथात्तमस ।	

1 या की देसाई 'जिन' में उन साउथ इण्डिया एण्ड सम जैन एपीग्राफिस 1957 पृ० 72-74

2 यू पी शास्त्र 'यम वर्ण' में जैन लिटरेचर JOI Vol III 1953 पृ० 54-71

3 तत्त्वाथ भाष्य (रत्नलाल सक्करण) पृष्ठ 49

एक दोना सूचिया का देखने से पता चलता है कि लगभग सभी यथा का नाम 'भद्र' पर अंत होता है। वे भल आदमा ये और शान्ति समृद्धि को देने वाले थे। इन यथान वाली जैन साहित्य में अनेक कथाएँ भी मिलती हैं। सन्तान की कामना में राजगृह के व्यापारी घन का निपूती पत्नी भद्रा नगर में बाहर जाकर नाग, भूत, यक्ष इन्द्र, स्वप्न शिव वश्रवण का पुष्प और मुर्गा घत सामग्री से पूजन करती थी।¹ आवश्यक चूर्ण में (II 193) सुभद्रा नामक स्त्री ने सुरम्बर जक्य को सौ भस देने का वादा किया था यदि उसने पुत्र उत्पन्न हो। पूजा के इमी कारण से विवागमूय ग्रंथ में लिखा है कि निपूती गगदत्ता ने अपनी सहलिया के साथ पाटलिपुत्र नगर में बाहर जाकर अम्बरदत्त जक्य की पूजा की थी।

जैन ग्रंथा में यथा को सुरक्षण और ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला बताया है। उत्तराध्ययन सूत्र (# 12) में वाराणसी के गण्डितिण्डूय जक्य ने तिण्डूय वाग में मानव ऋषि की सुरक्षा की थी। यह भी लिखा गया है कि आत्मनियंत्रण से मानव जक्य में उत्पन्न होता है (3 14)। जक्य स्त्रिया के कुलटापन का पना लगा लन थ (अशचूर्ण 90)।

यथा को निमाण के महारथी कहा जाता था। लोक-कथाएँ प्राचीन समय से लेकर आज तक यथा को रात रात में महल छोड़ कर दन वाला बताती हैं। वामुखिण्डी (162 63) विनीता नगर का वणन करती है जो प्रथम जिन अणभ का राजधानी थी और जिसमें वश्रवण ने बनाया था।

जैन ग्रंथा में मणिभद्र और पूणभद्र का विशेष वणन है। व्यांतर देवताओं में इन्द्र दो इन्द्र बनाया गया है। पूणभद्र का यथा के दक्षिणी भाग का और मणिभद्र को उत्तरी भाग का देवता बताया गया है। वाशम कहते हैं कि 'जाजीविन दवसमूह का निर्माण पूणभद्र, मणिभद्र और ब्रह्मा पर आकर समाप्त हो जाता है। उनके और देवता भी हाग लेकिन हम उनके नामा का वाइ साय नहा है।'² मणिभद्र का चत्य मिथिला के बाहर था और पूणभद्र का चम्पा के बाहर। यथी बहूपुत्रिका का चत्य वशाली के निकट था।³

भगवती सूत्र में महावीर के अठारह चत्या का गिनाया है जहाँ महावार जिन होने के उपरांत अपने प्रवचना के दौरान वर्षा विताने के लिए स्वतः —

1	वशाली	का	दूतिपलाश चत्य
2	थावस्ती	"	काण्डन ,
3	कौशाम्बी		चन्द्रावतण "
4	चम्पा	"	पूणभद्र "

1 मायाधम्मकहाओ II पृ 47-50

2 Basham A L History and Doctrines of the Ajivikas pp 273 74

3 भगवतीसूत्र 18 2

5	उलूक-तीर-नगर	३	जम्बूक	चत्य
6	वशानी		बहुपुत्रिका	,
7	राजगृह	,	गुणशील	"
8	वशाली	"	बहुशालक	,
9	वशाली		कुण्डियायन	,
10	मेण्डिक		साणकोष्ठक	,
11	गाका		नन्दन	
12	तुमिका		पुष्पवती	
13	राजगृह		मण्डिकुक्षी	
14	उद्दणपुर	,	चन्द्रावतण	
15	चम्पा		अगमदिर	
16	आलभिका		प्राप्तकाल	
17	आलभिका		शखवन	
18	कृतगला		छत्रपलाश	

ये चत्य उद्यान या वनखण्ड म स्थित होते थे। यहा पूजास्थल होना है और एक परिवार का गृह। पूजास्थल और यक्ष का नाम प्रदृष्टा एक समान होते थे। यक्ष पूजास्थल

यक्षपूजा वृक्षो मे आरम्भ से ही सम्बन्धित रही है। महाभारत म लिखा है—

एते वृक्षो हि यो ग्रामे भवत् पणफलावित ।

चत्या भवति निर्नातिरचनीय सुपुजित ॥¹

किसी गाव म जब कोई वृक्ष ऐसा दिखाई पडता है जा पत्ता से भरा हो और फला से लदा हो तब वह पूजन योग्य जाना जाता है और वह चत्य वन जाना है। प्रत्येक गाव म यक्ष का स्थान या चत्य होता है। पूजा की मायता बढन पर उम चत्यवृक्ष को चारा आर किसी वेदिका (छोटे कटघर) म घर दिया जाने लगा। प्राचीनकाल मे पूजास्थल की पहचान इसी वेदिका से की जाता थी। वृक्ष स्तूप या स्थण्डिल के चारा ओर खीची हुई वेदिका का चित्रण प्राचीन भारताय कला म बहुत पाया जाता है। रामायण और महाभारत म भी इन वेदिकाजा का वर्णन है। धीरे धीरे ये मय्य और अवशान स्थान धरन वाली हाती चत्री गड और इनम प्रवेश के लिए चार द्वार बनन लग जा तारण कहलाने थे। ये ऊपर से बिल्कुल खुल रहते थे। ये ही दौड़ चत्या और स्तूपा के लिए उदाहरण थे।

वृक्ष पर रहन वाल देवता के लिए बलि भी दी जान लगा। वह यक्ष लोग

फल फूल-सत्त खीर खीर आदि स करत थे । कुछ यम और राक्षस उसम प्राणी बलि भी देत थे ।

सकडा वर्षों का व्यवधान होने पर मानव यक्षा को ही वृक्षा का देवता मानने लग और अपनी भलाई के लिए उन पर बलि चढ़ाने लग । सुजाता की दासी ने गीतम बुद्ध को वृष का यक्षत्वना समझा था और सुजाता ने उन पर खीर का प्रसाद चढ़ाया था ।

बौद्ध जन और हिंदू धर्मों ने यक्षा का वृषपूजा की परम्परा को उन्मुक्त भाव से स्वीकार किया । प्रत्येक बुद्ध और प्रत्येक तीर्थंकर के लिए एक एक पवित्र वृष की बलिदान की गई जा उनका मोधि वृक्ष था । जथववेद म अश्वत्य को देवताओं का निवास स्थान कहा गया । और यह आज तक भी माना जाता है कि पीपल के पेड़ पर देव निवास करत हैं और कोई हिंदू उसरी शाखा तक काटन को सहन नहा कर सरता ।

यही वृषपूजा आगे चलकर लाक म बल्पवृषा सकपना म प्रस्फुटित हुई । द्रम सागर मथन म प्राप्त किया गया और देवराज इंद्र के नन्दन वन म इस जोड़ दिया गया । इसके सम्बन्ध म दूमरी कथा लोक के अधिन निकट है । इसके अनुसार यह उत्तर कुर देश (कुपेर का स्थान, गडवाल) का वृक्ष था । महाभारत, रामायण जातन लिप्यादान जन मान्दिय इन सबम उत्तर कुर देश और वहाँ हान वाल बल्पवृषा का वणन पाया जाता है । भीष्म पत्र के अनुसार उत्तर कुरु देश म मिद्ध लाग रहत हैं । वहाँ सदा पुष्प फल देन वाले वृक्ष हैं । उनम स कुछ वृषा सत्रकामनाओं की पूर्ति करन वान है । कुछ वृषा म म जमृत के समान स्वास्तिष्ट दूध निजलता है जिसम छटा रसा का स्वाद मिलता है । उनरी शाखाओं म यस्त्र जाम्बूयण उत्पन्न हान है और कुछ शाखाओं म जम्पराओं के समान स्त्रियाँ और स्त्री पुष्पा के जोड़ उत्पन्न होने हे । (भीष्म पत्र - २ ११) इसी प्रकार रामायण म जत्र नुषाव जपन कुछ वीरा की सीता की खाज म उत्तर की आर भेजा है तत्र उत्तर कुर प्रन्श के बल्पवृषा का वणन जाना है ।^१ महा वाणिज जातक (मन्था ४८२) की कथा म कुछ व्यापारी निधि की खाज म निजलत हैं और उम नन्दन हुए एन विंगल बट वृषा का छाया म पटुचन है जा बल्पवृषा है ।^२

बल्पवृषा का मयम मुन्दर विषयण जा ताक-बल्यना को चरित्रण करत है मिशिया (आज का बसनगर) म प्राप्त हुआ है जो लगभग ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी का है । इसम नीचे एन चौमार बटहरा है उसने ऊपर एन गोल धामना है उम धामल के भीतर म बट वृषा अपनी जना शाखा प्रशाखाओं के बितान के

१ बिर् - धा कीड अध्याय 43

२ उत्तर 4/3९

माथ निवन रहा है। उसकी मिनी ही गदाय पृथ्वी की जार नटन रहा है। एक जार दा बड धने जिनके मुह बंधे हुए है जार जिनम सम्भवत रन जार मणिया भरा नुद है भूत रह है। न दाता क नीच म चांनि का वापापण मुद्राआ सं भरा हुआ एक घन नटवा आ ह। दूमरी ओर पद्यनिधि है जो अपन मुख म चांदा की मुण्ये उगन रही है। उगने जकार म दूमरा जार पद्यनिधि है जिसकी कणिया म उसी प्रकार की मुद्रा वापर जा रही है। गंगा के बीच म शायाआ म भवन हुए कुछ जाभूषण जोर उसी प्रकार मणिया म भरा एक धी नटन रहा है। उग चौड पत जार घन पना म नटनहा रहा ह। यह कपटुप सम्भवन कुपेर के धनस्तम्भ का शीप भाग था। उसम अति पद्यनिधि थार पद्यनिधि कपेर की तिधिया आ ह जिनकी गणना उसका नौ तिधिया म की जाती है।

दन गंगा के नीचे चवूतरा बना लिया जाता है। उग चवूते पर एक पिण् स्थापित किया जाता है पर वं शिवांग न समान नही होना। शिवांग पथर का बना होना है छाटा होना है। नीच म ऊपर तक मपाट और शीप गानाई लिए हाता है। वीर का पूरा जमला होना है जसकि शिवांग क साथ पावती गणा की मूर्तिया हो सनती है। वीर या वरुदा क जा पूरा हात है व मिट्टी क बने हात है जार बड विशान होत ह। वरमन वीर की ऊचाद ५ फुट है और तल म धरा ७ फुट है। इसका ऊपरा सिरा तिहोना और नीचे गानाई म पना होता ह। वीर के चार (चतुरस) के पिण् की एक विशपता और हाती है इसम बीच म तास पना हाता है जिसम दापक जनता है। इस सिद्धर म रगा जाता है। हनुमान की मूर्ति वले विशान हाती ह और व मी सिद्धर से त्रिप पुत हात है। काशी क वीर म मन्त्रीर नाम के भी एक वार ध। गाम्बामा तुनसीपस की पत्रिका म उनका उचख हुआ ह। उसम उहान इस हनुमान म मिना लिया है। उस धारणा की दा वाता म वन मिना है जा ऊपर बताद जा चुकी ह। हनुमान की मूर्ति भा यग मूर्तिया की तरह विशान होता है। दूमर उह सिद्धर म पना जाता है।

जाज के हिन्दू धम बौद्ध धम तथा और सा कया मुसलमान पीर की मजाग पर (पीर वीर यक्ष का मुसलमानी रूप) जा भण कपड या तास बाधे जान ह वं यगपूजा म आया जाचार है। दम्मप अत्यकया का निम्नलिखित कया म पुन उचनि की कामना क लिए एक वृक्ष की पूजा का वणन जाया —

साजदों म महासवण नाम का एक गहपति रहता था। वह धनी था असीम सम्पदा रखता था और जीवन क हर माधन का स्वामा था फिर भी वह

निपूता था। एक दिन जब वह घाट से नहाकर घर लौट रहा था उसने सबके तिनारे पर एक विशाल वृक्ष देखा जिसकी शाखाएँ चारा और फल रही थी। उसने सोचा— इस पक्ष पर अवश्य कोई शक्तिशाली वृक्ष दवना रहन ह। सो उसने पक्ष के नीचे की भूमि साफ करके पक्ष का चारों ओर में पावार (प्राकार) बनवा दिया और सबेष्टन (अज्ञाने) में रेत बिछवाया। वृक्ष पर भण्डे और वस्त्र बांधकर उसने निम्न प्रण लिया। यदि मरे पुन या पुत्री उत्पन्न हुआ तो मैं जापका बहुत सम्मान करूँगा। इतना बग्वे वह अपने घर चला गया।

इसी प्रकार की एक कथा काहें मूर में दी हुई है।¹

यज्ञपूजा का एक विशेष प्रकार था। इसका नाम था— पुष्प माय धूप दीप मध नवेद्य या प्रसाद और सगीत। यही आज के हिन्दू धर्म की पूजा का अंग है। गीता में इस पत्र पुष्प फल तोयम् कथा है। देव युग की पूजा पद्धति यन समाप्त हो चुकी है।

मध्यकाल में यक्षपूजा

यक्षपूजा में यज्ञाल में और आज भी वीर वरह्य की पूजा में जीवित है। मध्यकालीन साहित्य में ५२ वीरा का अनेक स्थान पर उल्लेख है। ५२ वीरा की सूची अलग-अलग मिलती है। पृथ्वीराज रासो का एक है कुछ हस्तलिखित प्रतियां में और। उनमें से दस हैं

बावनवीर नामावली (१)

१ छाविना	१८ बालोवीर	२० गारिनोवीर
२ घुलियावीर	२० गारावीर	८ घूटवीर
३ तलपआहारीवीर	२१ अगिननावीर	९ कूटवीर
४ गुलाभजनवीर	२२ विषकातवीर	१० बंदवीर
५ नाडानोडणवीर	२३ रगतियावीर	११ मन्वीर
६ मसामनोणवीर	२४ कालीयाधार	१२ सतोसवार
७ गडउपाडणवीर	२५ बालवनवीर	१३ त्रमरवीर
८ समुद्रउत्तारणवीर	२६ बालघग्गटवीर	१४ महामरवीर
९ समुद्रगापणवार	२७ इन्द्रवीर	१५ बन्गवीर
१० परतउत्तारणवार	२८ जमवार	१६ सहस्रपाणवीर
११ साभजनवीर	२९ दवारिवीर	१७ तन्धानवीर
१२ गावतनारणवार	३० दूरिनारवीर	१८ भूतपाणवार
१ विषपट्टागवीर	३१ दूरिपारवार	१९ शारनीनारवार

१०८ यथा की भारत को दन

१४ रुमालवीर	३२ हरियारिवीर	१० टाकनीमारवीर
१५ जागिपाउवीर	३३ भापडोवीर	५१ सह्याष्यवीर
१६ सापपाउवीर	३४ भाणभद्रवीर	५२ उत्तमादिववीर
१७ जमघटीवीर	३५ वापडोवीर	
१८ असलटीवीर	३६ नारसिंहवीर	

बाबावीर नामावली (२)

१ कपिलजैवीर	१६ जग्निकतवीर	२७ घटवीर
२ खोटियावीर	२० विपात्रतवीर	८ कानरवार
३ तलपहारीवीर	२१ रगनायावीर	२६ बागुवीर
४ नाडिनाचनवीर	२२ बायलावार	६० महतवीर
५ मुनाभजनवार	२३ कालीयावीर	६१ सतोपवीर
६ मसाणनाटनवीर	२४ कानवेलवीर	६२ सतापमहावीर
७ गण्डपाटणवार	२५ कालघटवार	४३ भमरवीर
८ समुद्रतिरणवीर	२६ इन्द्रवीर	६४ महाभमरवीर
९ समुद्रसापणवीर	२७ जमवीर	४५ क्षेत्रपालवीर
१० लाहभजनवीर	२८ दवगरिवीर	४६ भूतपाणवीर
११ साकलिताडनवीर	२९ दुतरारिवीर	४७ हिंडनखानवीर
१२ विश्वपारवरवीर	३० हराटिवीर	४८ मकपाणवीर
१३ रुडमानावीर	३१ भापडावीर	४९ सावित्राभूतवीर
१४ आगीयावीर	३२ मार्णभद्रवार	१० दन्तभानवीर
१५ वापवीर	३३ कापडोयावीर	५१ एराजमालवाहनवीर
१६ यमघटवीर	३४ वेदारावार	६२ जाद्रववीर
१७ कालिवीर	३५ नारसिंहवीर	
१८ अकालवीर	३६ गुरचलोवार	

१२ यथा क पूजन की विधि बता थी । इसमें मुख्य तो वही रहें लेकिन कुछ स्थान स्थान पर स्थानाय पूजनीय यथा के साथ बन्दते रहे । एक समय यह साक्षा जाता हागा कि ये ५२ यथा लका म बसत थे । तभी साक म मुहावर प्रचलित हुआ कि लका म सभी बावन गजे नहा गते । इसी प्रकार आज यह किंवदन्ती है कि कागी म बावन वीरा का चीरा है ।

मध्य काल म चामठ यागिनिया की भी पूजा होती था । खजुराहा जीर जय स्वामि पर चामठ योगिनिया के मन्दिर पाए गए हैं । इनकी एक सूची निम्न है —

चौसठ योगिनी नामावली

१ दिव्या जोगिनी	२३ धार रक्ताश्या	८५ कृण्डली
२ महाजागिनी	२४ त्रिरक्ताश्री	८६ मानिनी
३ मिद्ध जागिनी	२५ भयङ्गी	८७ यन्मा
४ युगशरी	२६ वारी	८८ धनदुरा
५ प्रताश्री	२७ कुमारी	८९ कराना
६ डागिनी	२८ चटिका	९० वोगिका
७ काली	२९ निरानी	९१ भद्राणी
८ वातरात्रि	३० मुटुप्रागिणी	९२ व्याघ्रणी
९ निशाचरी	३१ भग्वा	९३ यन्माय
१० वनोदारी	३२ वज्रणी	९४ यक्षणा
११ मिद्धि वतानी	३३ क्रोधाय	९५ कुमारी
१२ ह्रीनारी	३४ दुमुषा	९६ यतवाहिनी
१३ भूनडाम	३५ प्रेतवाहनी	९७ विशानी
१४ उज्यवेशी	३६ बटनी	९८ कामाश्री
१५ त्रिपाश्री	३७ लज्जोष्ठा	९९ विपहागिणी
१६ रक्षाश्या	३८ मानिनी	१०० द्वीजटी
१७ नग्भाजनी	३९ मन्त्र जागिनी	१०१ बिन्दटी
१८ वाष्णी	४० वाताश्री	१०२ घाराय
१९ वीर यद्राश्री	४१ माहिना	१०३ वपानी
२० धूमानी	४२ चट्टी	१०४ विपदानी
२१ कलहप्रिया	४३ क्वानी	
२२ रागसा	४४ भुवनशरी	

इन योगिनियां में कितनी यन्त्र जानि की हैं और कितनी जन्म जनजातियां की यह कहना कठिन है । अन्तरी सूचियां भी एक ही अधिन हैं । उनमें नाम भी बहुत हुए हैं ।

वर्तमान काल में यन्त्रपूजा

बारी जा भी बीर बरतत पूजा में जुडा हुआ है । यहाँ के दो प्रसिद्ध मुहूर्त हैं— लद्दाखार और भाजबीर । भूतुर के पास शैलियाबीर है । एर साक्षप्रसन्नित बौद्ध कथा है कि बगानी तार के बाहर घण्टायन्त्र का आयतन (चतुर्भुजा) था । जब कभी वाद बानी छिन तार में धुमन का प्रयत्न करता था तो यन्त्र के गन का घण्टा बज उठता था और तार परदा गता था । इसी प्रकार वाताश्री नगर के बाहर त्रिदिग्म (डागिनी) बीर का चौरा हागा जा रात का

टिनोरा (डिडिम) पीटकर नगर की रक्षा करत होंगे। काशी विश्वविद्यालय के फाटन क पास त्रहवार तथा उसके अंदर करमनवीर मानिकवीर ह। पचकोसा माग पर दवरावीर है। जगतगज मे दतरावीर है। सम्भृत विश्वविद्यालय के सामन एक वीर का श्हा (स्तूप) है जिसन ऊपर किसी भक्त न देवीरूपी नारी का चित्र बनाकर ऊपर कल्याणी देवी लिख दिया है। यह कल्याणवीर होगा। भरतुत की शिरप मे वहुत से यथा क नाम मिले है जिनमे एक हे महाकोका और दूसरा चुल्ला कोका (बडा कोका और छोटा कोका)। काशी मे लगरावीर (छाटा वीर) है तो तुलावीर (विपुल = वडा वीर) भी होगा। बुल्ला नाला क आस पास वही बुल्ला वीर का धान होगा। एक बुल्लावार विश्वविद्यालय मे भी है।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के कथनानुसार बलिया जिले के गाव गाव मे वरह्हा का चौरा पाया जाता है जिस पर मिट्टी का थूहा जमा बना रहता है।¹ इसी प्रकार श्री ब्यौहार राजेन्द्रसिंह ने डा० जगवाल को बताया कि मध्य प्रदेश मे वरह्हादेव या वरह्हावामा की पूजा होती है। वरह्हा प्राय भाड पर रहता है। यह वृष वहुधा पीपल का होता है। गरीठा मे ओर आजमगट जिल मे भी वीर वरह्हा की पूजा होती है यही जौनपुर जिल मे भी। मगही क्षेत्र मे भी वीर की पूजा होनी है।

गुजरात मे भी वावन वीरा की पूजा की जाती है। वहा जगन्नेष्य या जगन्नाथपयन मिलते ह। जना मे ५२ वीरो की सूची है। इन सूचिया मे माणिक वीर सब मे है। वह अवश्य मणिभद्र यथा का देशज नाम है। यह यक्ष मारे दण मे पूजा जाता था। हमारी वाती मे रहावत ह— तुम भी वावन वीरा मे अपना नाम लिया ला। एसा कह ता वावन वीर कहाउं।

प्राचिन काल मे पचवीर या पाच यथा की पूजा वहुत प्रसिद्ध थी। भागवत धर्म मे पचवीर को पच वृष्णिवीर मे वतन दिया और उनकी पूजा आरम्भ की गई।

पचवीर— मणिभद्र पूषभद्र दीधभद्र यथभद्र और स्वभद्र।

पच वृष्णिवीर— सक्पण वामुदेव प्रद्यम्न अनिरुद्ध और साम्य।

(मथुरा के भोरा कूप लख स प्राप्त)

मुसलमान काल मे आन पर पचवीर पचपीर मे बदल गए और उनकी पूजा होन नगी। मुसलमाना मे पीरो की पूजा भारत की दन है। पश्चिमी भारत मे स्थान-स्थान पर पारा के मजार हैं जिन पर कपडे राधे जाते हैं और मन्त्रत मानी जाती है। मरुत मे कई पीर हैं— शाह पीर भण्ड पीर उडाल पीर नौगडा पीर आदि। नौगडा पार क्या उसका यथा मूल नहा लिखाता? पश्चिमी भारत मे जन्माष्टमा क दिन धी के भर हाथ के थापे मार कर उनके सामन

भाषा और लिपि

तुलनात्मक भाषा शास्त्र का आरम्भ उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में हुआ। भवमूलक न समझने और लेखन आदि के अध्ययन में बताया कि ये भाषाएँ एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। प्राचीन यूरोपीय भाषाएँ ससृष्ट जनता की पुत्री हैं। उन्होंने इस समूह को आय भाषा समूह का नाम दिया जो बाद में प्रचलित बन गया। बाद के भाषावैज्ञानिकों ने उन्हें एक सुप्त भाषा की सहोदरी पुत्रियाँ बताया।

इसी तरह विशेष कारणों से द्रविड भाषाओं का अध्ययन करके बताया कि ये ससृष्ट से बिल्कुल अलग भाषाएँ हैं और भारत के मूल निवासियों की भाषाएँ हैं। उनमें ससृष्ट के अनेक शब्द मिलते हैं जो उन पर उत्तर वाला न थाप दिया है यह भाषा साम्राज्यवाद है। उन्होंने बोलने वाला का द्रविड जाति नाम दिया। द्रविड भाषा विज्ञान के विद्वान् काल्डवेल का कथा है— 'द्रविड लोग का सम्बन्ध तुर्कानियन जातियों से है। जायों के भारतवर्ष में आने के पहले ही द्रविड भाषाएँ बहुत विकसित हो चुकी थीं। कनाक्ट शब्द मन्थर आदि की दृष्टि से द्रविड भाषाओं का सम्बन्ध ससृष्ट में न हाकर तुर्कानियन और सेमेटिक परिवार की भाषाओं के साथ है। इनमें जाय भाषाओं का जो अंश पाया जाता है, वह आय और द्रविड दोनों के भारतवर्ष में आने के पूर्व इन्हीं यूरोपियन और तुर्कानियन जातियों के साथ प्राग ऐतिहासिक काल के निकट निवास का परिणाम है।

राज आगे बढ़ने पर बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में पता चला कि जाय की हिन्दू ससृष्टि में जाय जाय व्यवहार जैसी प्रतिशत तथाकथित द्रविड जाति से आया है। भाषावैज्ञानिकों के खोजों ने मजबूती मजबूत की। द्रविड भाषा की समानता घनघोरता से यूरोप में दूढ़ी गई और वे सफ्त हुए— उस फिना उपग्रह भाषा से जाड़ा गया और एक नई द्रविड प्रजाति पत्नी की गई जो भूमध्य सागर के पास के देशों से भारत में आई।

ये दोनों निष्कर्ष वातावाक्य प्रमाणों में मान लिये गये और इन दोनों को ध्यान में रखकर आगे की शोध की गई।

ससृष्ट की उत्तर भारत की सब जाधुनिक भाषाओं का जननी बताया और समझा जाता था। इस विश्वास पर सबसे पहले कुठाराघात हिन्दी के 'पाणिनि महान् वयाकरण विशोरीनास वाजपेयी ने किया। उन्होंने सतक सिद्ध कर दिया कि

हिन्दी सस्कृत की पुत्री नहीं है। भाषाएँ व्याकरण से पहचानी जाती हैं और हिन्दी व्याकरण सस्कृत व्याकरण से अलग है।

आचार्य विश्वेश्वरदास वाजपेयी ने हिन्दी शाब्दानुशासन में आरम्भ में लिखा है— “हिन्दी की उत्पत्ति उम सस्कृत भाषा से नहीं है जाकि बदा में उपनिषदा में तथा वाल्मीकि या कालिदास आदि के काव्य ग्रन्थों में हम उपलब्ध हैं। (पृष्ठ १) हिन्दी की व्याकरण सस्कृत की व्याकरण से अलग है। द्राक्षी से दाक्ष, खटवा से खाट बनाना ‘यह सस्कृत (तथा उपलब्ध प्राकृत) से एकदम उठती पद्धति है न?’

य दोनों किसी एक मूल भाषा की शाखाएँ हैं। दोनों का स्वतन्त्र विकास हुआ है परन्तु है दोनों एक मूल भाषा से निकलीं। वाजपेयी जी कहते हैं कि हिन्दी के अनेक मूल तत्त्व बहुत प्राचीन हैं और सस्कृत प्राकृत अपभ्रंश की सीढ़ी के सहारे उन तक नहीं पहुँचा जा सकता। इसे उद्धान्ते में उदाहरण देकर समझाया है।

डा० सुनीलकुमार चटर्जी ने भाषा विज्ञान में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की और भारतीय भाषाओं पर अथक शोध किया है। उनका निष्कर्ष भी आय खोलने वाला है।

‘भारतीय जाय भाषा के वक्तेर शब्दों के जीर वाग्भङ्गिया के सबध में जा सशय है व अभी तक हल किए जा नहीं सथ और यह असम्भव नहा है कि व शब्द और वाक्य भंगी, निपात निरात जीर द्राविड के अतिरिक्त अगुना लुप्त और किसी चतुर्थ जनाय या जायेंतर मानवा की भाषा पर आधारित ह पर जो हो सा हो— कम से कम दो हजार वर्ष भर आय भाषा की प्रगति में भारतभूमि पर हम द्राविड (तथा कुछ स्वल्पतया कोल या निपात) भाषा को वायस्वर रूप में देख पाते हैं। आय पर द्राविड का प्रभाव केवल उपर की या बाहर की वस्तु नहीं है बल्कि वह प्रभाव तने से substratum या अवस्तर जसा जाया है, यह प्रभाव एन साथ गहरा भी है पना हुआ भी है।’

‘सस्कृत में जो नया भविष्य काल वाचक रूप प्रयाग में जाया जसा स कना = ‘वह करेगा, वर्ता + जन्मि = वर्तास्मि = मैं करूँगा यह भी द्राविड क्रिया गठन पद्धति के तौर पर है। आधुनिक पूर्वों आय भाषाओं में (जा कि मागधी प्राकृत में उद्भूत हुई हैं) क्रिया के अतीत काल और भविष्यत्-काल के जो रूप वन हैं विरूप वर्ण से उनमें आधुनिक द्राविड भाषा के रूपों से बहुत सी मेल मिल पायता है।’

भाषा में असमायिक क्रिया के प्रयोग का भरमार आधुनिक आयभाषा की एक लक्षणिय रीति है। अंग्रेजी में जहाँ कहें— Go home quick take your lunch, call a cab put your things in drive to the station

१ डॉ० सुनील कुमार चटर्जी भारत में जाय और जनाय पृ० 65

२ डॉ० सुनील कुमार चटर्जी भारत में जाय और जनाय पृ० 71

buy our tickets and wait on the platform) for me जिसमें अलग अलग कई समापिका क्रियाएँ हूँ हिन्दी या दूसरी भारतीय भाषा में (घाम करके यगला में) हम ऐसे चलने की आदत है— जल्दी घर जाकर घाना घाने एक तागा बुलाके, उसमें अपना सामान लादकर स्टेशन में जाकर हमारे टिकट घरीदर प्लेटफाम पर मर त्रिये ठहरोगे — इसमें सिफ जत में एर ही समापिका क्रिया है। पहले मैं इसका जिकर किया था— यत् रीति किरात भाषा की है, द्राविड की भी। दोनो तरफ में प्रभाव आना सम्भव है। पर जाय भाषा पर दा हडार वप पहले यह प्रभाव आया था— जस हम पालि तथा मस्वत में देख पाते हैं।¹

डा० रामविलास शर्मा ने वाजपयी जी के मत को लेकर पहले भाषा और समाज ग्रथ लिखा। फिर अपना शोध आग वलान हुण उहाने तीन खण्डा में भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी ग्रथ लिया जिसके निष्पन्न क्रांतिकारी थ। इन विद्वाना का निष्पन्न यह था कि पहल एक मूल भाषा थी पुरानी प्राकृत जो अनेक बोलिया का अपने में समाए हुए थी। उस शुद्ध करके सुमस्वृत परिमाजित करके सस्वृत भाषा बनाई गई जो राजदरवारा में सिमट कर रह गई। मूल प्राकृत साधारण जन में फूलती फलती रही। उमे फिर पालि में तत्पश्चात् सार्हित्यक प्राकृत में सुमस्वृत किया गया जिसमें ६५ प्रतिशत सस्वृत थी किंतु य सब परिष्कृत भाषाएँ परिष्कृताऊ वृत्त में ही सिमटकर रह गई। जनता में मूल प्राकृत परिवतना के साथ चलती रही उसा में जपन्नश जीर आज की सारी भाषाएँ निकला।

इन विद्वाना की आग स्थापना यह है कि सस्वृत जीर तमिळ का मिलान करने के स्थान पर अवधी जीर तमिळ का मिलान करने से आश्चयजनक परिणाम आये है। ये दोनो एक मूलभाषा से निकली हैं और जो शब्द हम द्रविड भाषाओं में सस्वृत से आग समझते हैं वे द्रविड भाषाओं में उस विद्वत्तापूर्ण परिष्कृत भाषा को दिए है जिस सस्वृत कहते है।

मैंने इसमें एक प्रश्नचिह्न उपस्थित कर दिया है जो मर मस्विप्न को लगातार कचाट रहा है। क्या यह मूल प्राकृत यथा की भाषा थी? क्या यह उनके साथ अवधा खड़ी बोली जीर व्रज भाषा के प्रवेश से होती हुई दक्षिण चली गई? क्या प्रजाति और भाषा के कारण जन और बौद्ध धर्म दक्षिण भारत में विस्तृत रूप से फये? क्योंकि तमिळ भाषा का स्वर्ण काल और जमर साहित्य जन और बौद्ध भिक्षुओं की देन है।

आज दक्षिण के अनेक विद्वाना का इस ओर ध्यान गया है और उहान भी यही निष्पन्न निकाले है। 'आय द्रविड भाषाओं की मूलभूत एकता एयर की इस

पुस्तक में यही लिखाया गया है। व एम श्रीनिवासन ने भी 'तमिळ का उत्तर भारतीय मध्ययुग' दशाया है।

प्रसिद्ध इतिहासक वे ए नीवरण्ट शास्त्री कहते हैं कि द्रविड भाषाओं का बोलन वान विभिन्न प्रजातियाँ न सन्त्यथ । द्रविड एव भाषाई शब्द है जो सत्र प्रथम उन्नीसवा सती व उत्तरायु म सम्बन्धित भाषाओं के एव वग जिमम तमिळ तलुगु आनी हैं के लिय प्रयोग किया गया था इसम प्रजाति ना तत्रिक् भी भान न था । यह सस्वृत द्रमिड (प्राकृत दमिन) शब्द स बना है ।

एक तमिल प्रोफेसर एम एनरुवनर ने एव पुस्तक लिखी है जिमम तमिळ का ससार की प्राचीनतम भाषा बताया है और कहा है तमिळ भाषा की उत्पत्ति उननी ही रहस्यपूर्ण और दुर्गोच है जितनी कि ससार की उत्पत्ति ।

यह क्या इस कारण नही कि हम द्रविड और वदिक् को मिलुन अलग भाषाए मानकर चलते हैं। क्या व एव प्राचीन प्राकृत (मगभाषा) म तहा निरनी है इस पर शाय करन की बड़ी आवश्यकता है ।

इन सत्र बातों का विस्तृत विवेचन तो एव कृत्य ग्रथ का विषय है। एव एव शब्द विस्तृत रहम मानता है। उदाहरण व रूप म सस्वृत का वधू गल्ल । वधू शब्द को 'वध (मारना) से निबला जानकर यह कल्पना की जा सकती है कि पुरान समय म वधू का इतना कष्ट किया जाता था कि व मर जाती था या मार भी जाती था। किन्तु याम्म न निरस्त म बनाया है कि यह शब्द वध (लाना) धातु स बना है। विवाह व वान पतिशुद्ध म तार्ई जान व कारण यह वधू (वह) कहनाती है। क्या इसम यह निष्पत्ति नही निबलता कि यह पुराना शब्द था जिन मुमस्वृत कर का बनाया गया है।

पाठ का गल्ल । सम्मन्त म अश्व राजि, ह्य आदि हैं परन्तु हिन्दी के धातु के समान वाद नहा। किन्तु तमिळ म पाठक है।

या फिर मिली को लें। सस्वृत म माजार तमिळ पून वत्र प्युदयू तलुगु पूनू मुग पूगो निरनी (मगभाषा) पीसी, अरगान पीगो पारसी प्रमक उत्तर-पश्चिम भारत पूगो, ब्राह्मी पीगो, युराय पुन । ब्राह्मी और मगभाषा म समान शब्द पीगो है। नीच उतर ता लिंदा जीर मुण्डा का पूगो हा गया जो अर्य जाजातिया म मित्रा पर योगन म बनाता रता। उधर उतर पश्चिम म रागम शब्द की मगदना को जान वर ता पीगा पूगक आदि ।

मातृभाषा म समान म स्त्री गामिता हानी धा। हिन्दी का गाम या गाम शब्द उगी का धातु है। सस्वृत का शब्द गृत्रिणीकरण पर आधारित है।

कुत्र सस्वृत म कुट्टन भा मित्रता है वही वही शब्द भी। जगन का मरानी पड है जर्न और जव जव का पड नहा हाता, जर्न व निर्भो पड उगता है और गागी र्मों मग छल पूना स कतराता रता है।

यह शब्द आयभाषा का नहीं है। वहाँ से आया? सिलवा लंबी कह गए हैं कि मस्कृत भाषा में फूला वृक्षा और खेती वागवानी के अधिनाश शब्द आग्नेय शब्द-परिवार के हैं। क्या यह मूल प्राकृत के नो नहीं है?

डा० सुनीति कुमार चटर्जी लिखत है "६०० ईसा पूर्व में आयभाषा बंगाल में तथा दक्षिण में फैली। वहाँ मस्कृत और प्राकृत दोनों साथ साथ गई। तमिळ में अनेक प्राकृत के शब्द हैं जो आसानी से पहचाने नहीं जाते।" "नका में ६०० ईसा पूर्व के लगभग गुजरात से एक दूसरी प्राकृत आई।"

कुछ तथ्य यहाँ संक्षेप में दिए जा रहे हैं।

भाषा विज्ञान की स्थापना

भारत के सदम में भाषा विज्ञान की श्रांति जो कायम की गई है उसका मुलाहजा फरमाए। मस्कृत और उसकी पुत्री भाषाया का स्रोत एक ङण्डो जमनिङ भाषा जिसके बालने वाले बाहर से आए। दूसरा है द्रविड भाषा परिवार जिसका सम्बन्ध अत्र फिनो उग्रयिन से जोना जाता है द्रविड भी यूरोप से भारत में आए जायों में पहले। तीसरा भाषा परिवार बाल या मुन्ग कहलाता है जिसका एक नाम आस्ट्रो एशियाटिक है। इसके बालने बाल जास्ट्रलिया या सुदूर पूर्व के द्वीपों से आए। अत्र में पूर्वाचल में नाग भाषा-परिवार का भाषाएँ बानी जाती हैं जिसका बानानिक नाम साइनो टिबेटन है। इसका मूल केन्द्र भी हिमालय के उम पार है सो इसके बोलने वाले भी चीन और तिब्बत से भारत में आए।

दूसरे जो ग्रीक लटिन और जमन में मस्कृत के शब्द मिलत हैं वे शुद्ध आय तत्त्व हैं जो वे जो मस्कृत में हैं वह जनाय है। इसी प्रकार तमिळ आदि में जो फिनलड की भाषा में मिलता है वह शुद्ध द्रविड तत्त्व है बानी भारत की मिलावट है। इस प्रकार मुंडा परिवार में। और नाग परिवार तो भारत की भाषा है ही नहीं उसके क्या कहने!

इस में से एक श्रांति का पोषण और किया गया है कि हजारों साल से जायों ने द्रविडों पर अत्याचार किया है उन्हें उत्तर भारत में भगा लिया उन्हें दास बना दिया उनकी भाषाएँ नष्ट कर दी, उनकी भाषाया में अनेक मस्कृत के शब्दों की भरमार कर दी और जब स्वतंत्रता के बाद उन पर अपनी हिंदी लागू रहे हैं।

1953 ई० में हावर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से डॉ० नामन ब्राउन की एक पुस्तक निकली जिसमें दुनिया का समझाया गया कि सिंधु घाटी की सभ्यता ईरान और

1 ङण्डो आयन एण्ड हिंदी पृ० 52-53

2 ङण्डो-आयन एण्ड हिंदी पृ० 66-67

ईरान के साथ सम्बन्धित थी भारत के साथ नहीं। जब वेद मन्त्र बोलने वाले आय पञ्चाश्व म आन्तर वसे तो वे ईरान और तुर्की (हत्ती) से सम्बन्धित थे। मुस्लिम युग में भी ताहिौर और उत्तर पश्चिम प्रांत का सम्बन्ध ईरान बल्ख बुखारा और मध्य एशिया से था। सो जाज नाम पड़ा पाकिस्तान वभी भारत का हिस्सा नहा रहा।

इसी प्रकार जब दक्षिणी भारत और पूर्वी भारत को अलग सिद्ध करने का पडयत्र चल रहा है।

जिसे भारत का भाषाया का अध्ययन करना है उन्ह पहल से नुटिरहित खण्डा में वाटकर और पूवाग्रह से ग्रस्त हाकर नही करना चाहिये। सब भाषाया का साथ तुलनात्मक अध्ययन करने पर नई राह दिखेगी।

सबसे पहले तो विजेता आय-परिवार और विजित द्रविड परिवार का पूर्वाग्रह मन से निकाल देना चाहिये। स्मृत और द्रविड भाषाया में जो समान शब्द हैं वे सस्कृत में उधार दिये हैं यही क्या कहा जाय? द्रविड भाषाया में सस्कृत का क्या नहा? क्या इसलिय कि ये यूरोप की आय भाषाया में मिलत है। उन पर भी द्रविड भाषाया का प्रभाव आँका जाय तो आँख खुली रह जायगी। एव शब्द लो। सस्कृत— पत्/पात्, ग्रीक— पज/पाद् लटिन— पस/पद् अंग्रेजी— फुट, हिन्दी— पग/पर/पाँव। इनके लिये सस्कृत या इण्डो जमनिक् परिवार में कोई क्रियापद नहीं है और द्रविड भाषाया में चलने के लिए पो क्रियापद का बहुत चलन है। इसी पो में आगे निकल हैं सस्कृत— पथ/पथ, अंग्रेजी— पाथ जमन— पफ्ट रूसी— पूत्। द्रविड और आय परिवारों में वासियो शब्द इस 'पा' से बन हैं जो द्रविड है।

स्मृत में वीथी शब्द है तमिळ में वीत्ति। यह सस्कृत से नहीं लिया गया बल्कि उल्टा है। तमिळ में चलने के लिए वा/वत् क्रिया है जिममें ये सब बन हैं लटिन— विया अंग्रेजी— व। इसी से बना है वायु और अंग्रेजी का विण्ड। तमिळ में है विण्डु (आकाश, हवा)। तमिळ वार (बहना) से बना वारि वयार (तमिळ का है सस्कृत में हिन्दी में नहा आया)।

सस्कृत और उत्तरी पुत्रिया में संधाप महाप्राण स्पश ध्वनिया घ घ में का व्यवहार होना है द्रविड परिवार में नहीं। माय ही यूरोप की आय भाषाया में भी नहा। ये इण्डो जमनिक् भाषा में थीं। मजे की बात है जहाँ भारत में अल्प और द्रविड परिवार वाला की टनरर हुई वहाँ तो ये वाम में आ रही हैं और तथान्वित मूल देश के निवासियों की भाषा से इनका लोप हो गया। यूरोप ही नहीं, ईरान अफगानिस्तान मध्य एशिया जहाँ भी उनका मूल था या वे घूमन रह सय जगह ये ध्वनियाँ गुनन को नहीं मिनता। न लटिन, ग्रीक में, न फारसी और हिन्दी में।

आय वारहवाँ सदी ईसा पूर्व में भारत में घुसे और मिथु पार करत हा उनके मुख से घ घ भ के धन शब्द निकलन लग जबकि उरुता युद्ध द्रविडा से हा रहा था जो स्वयं य शब्द नहीं बोलत थ । क्या यह शोध का विषय नहीं है ? क्या यह सत्य नहीं हो सकता कि द्रव्य जमनिक् भाषा परिवार के यक्ति जब भारत से निकले तब किसी कारणवश इन ध्वनिया का फारस में लेकर आसलान तब लाप हो गया ? (तभी सस्कृत का मग मिस्र का फरो बन सकता है ।)

इसमें यह बात होता है कि किसी समय भारत के उत्तर पश्चिम में द्रविड भाषा बोलन वाला का काफी बड़ा जमघट था । भारत से जायभाषा जब बाहर निकली तभी उस भाषा में इन परिवर्तना का द्रविड प्रभाव समझ में आ सकता है । जागे व कुछ परिवर्तन देखकर यह कहा जा सकता है कि यूरोप की जाय भाषाओं के विश्वास में द्रविड भाषा परिवार का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है ।

कन्नड द्रविड कुल की भाषा है जिसमें शुरु के प का ह हा जाता है यही गादी भाषा में है यही जाय परिवार की आर्मीनियन में है और जमन कुल की भाषाओं में ।

स और श शब्द के शुरु में द्रविड भाषाओं की मूल ध्वनि गही है । तमिळ में बिल्कुल नहीं पाए जाते तलग में कुछ हैं कन्नड में उससे अधिक । उत्तर में आय भाषाओं के मिश्रण से जागे हैं । तमिळ में स श का त या क हो जाता है । जायभाषाओं के भी ल वग के लिए है— शतम् और केतुम् । कहा जाना है यूरोप वान केतुम् वग के हैं सस्कृत वाले शतम् वग के । क्या द्रविड वग न यूरोप में प्रभाव डाला है ? अग्रजी में सट्टर शब्द है सस्कृत में केद्र । यह तो उल्टा हो गया ? श्रावत बनात निश निर ह्य ह्य— तो क्या सस्कृत में दोना वग जागे ? नासा सस्कृत में, नाक हिन्दी में ता क्या हिन्दी लटिन से निकली है ?

हिमालय के उत्तर में तोखारी भाषा मिला है जो सस्कृत से मिलती जाय भाषा है किंतु वह केतुम् वग की है । वह पूर्व में कसे आगई ?

उसमें भी द्रविड भाषाओं की तरह घ ज भ ध्वनि अधोप रहती है ।

वही उपरल हिंद (चानी तुकिस्तान) में खराष्टी विधि में लिखी यातानी भाषा मिली है वह भी उच्चारण में द्रविड नियम का अनुसरण करती है । और य अभिलेख इनके बाद के हैं कि यह नहीं कहा जा सकता कि आय लाग भारत में आने से पहले वहां व भाषाओं छोड़ आए थ ।

र और ल से शुरु होने वाले शब्दों में तमिळ में ज इ या उ स्वर जोड़ दिया जाता है ऐसा ही श्राव में होता है ।

शतम् केतुम् कसे हागया ? जाधा न कहा से आगया ? सस्कृत में भा जनेन शब्दों में जाधा न जाया है जस— पय पय निद् निद् । यह द्रविड

भाषाभावा का प्रभाव है। हिन्दी में आधे न वाले सस्त्र शब्द ही चले हैं। निदा गुम्पिन आदि।

फिर लटिन आदि वेत्तुम् भाषाएँ द्रविड प्रभाव वाली भाषा क्या हैं, मौलिक गतम् क्या नहीं, सस्त्र जसी। इसका अर्थ है द्रविड भाषाभावा का सम्मिलन न बदलने के उपरान्त सस्त्र सुराप और मध्य एशिया में पनी।

सस्त्र म ट ड, ण का बहुत अभाव है और प का भी। यहाँ यह जाता था कि य ध्वनियाँ द्रविड में आँ। परन्तु उनमें भी इनका अभाव पाया गया। और हरियाणा, महाराष्ट्र से लेकर आसाम तक की बोलियाँ में ये खूब पाई जाती हैं— टस्मण, बटण, फोरण। प्राकृत, पालि अथ गागधी, शमन में इन ध्वनियों का भ्रमण है। तो क्या यह सम्भव नहीं कि उत्तरी भारत में एक तीसरा भाषा परिवार था जो मौलिक था और जिनसे द्रविड भाषाभावा आर आर भाषाभावा पर बहुत गहरा प्रभाव डाला।

मध्यकाल में जो प्राकृत पालि अपभ्रंश भाषा प्रचलित हुईं वे सस्त्र का त्रिगुण रूप नहीं था। वे एक नगर्गिन भाषा प्राकृत का रूप थी जो बर्दिन भाषा से भी पूरे विभक्त थी। बर्दिन भाषा स्वयं उस समय की बालिया का साहित्यिक रूप माना जाता है। उसी मौलिक प्राकृत से पाँच तरह की प्राकृत अपभ्रंश, पालि आदि निकलीं। उसी न द्रविड भाषाभावा को उनका वर्तमान रूप दिया। उसी लोक भाषा का सस्त्र किया हुआ रूप सस्त्र कहलाया, जो साहित्यिक भाषा रही किन्तु प्राकृतिक नगर्गिन नहीं। प्राकृत महासाध्य 'गोडयहो' में कहा गया है 'जिस प्रकार जल समुद्र में प्रवण करता है और भाप बनकर पुनः समुद्र से बाहर जाता है, उसी प्रकार प्राकृत से सब भाषाभावा का उद्गम होता है और फिर सब उसी में समाहित हो जाती हैं।

सस्त्र साहित्य की भाषा रहा, उच्च वर्ग की भाषा रही राजपरिवार की भाषा रहा क्या उत्तर में क्या दक्षिण में, लेकिन वह लोकभाषा नहीं रही। लोकभाषा पुरानी प्राकृत या उसकी अनवरत बर्दियाँ ही रही। ब्राह्मणों ने उस सौतला व्यवहार दिया किन्तु बुद्ध, महावीर की ब्रान्ति में इन जनभाषा का भी साहित्यिक भाषा बना लिया और इसी से आज की सारी भारतीय भाषाएँ निकली, सस्त्र में नहीं।

सस्त्र हस्त का फारसी में रूप दस्त है। पर हस्त का दस्त नहीं बन सकता, न दस्त का हस्त। इसका मूल रूप घस्त डालना चाहिये, शायद घा श्रिया से जिसका अर्थ करना रहा होगा। इसका एक रूप हिन्दी का घघा है अंग्रेजी का डू और डाड। यह मूल प्राकृत का शब्द होगा जो चारा और फला। हिन्दी के घघा का आधा न द्रविड भाषा का प्रभाव दिखाना है।

हिन्दी (अवधी पहाड़ी, हरियाणवी आदि) में बोलियाँ शब्द ऐसे हैं जो द्रविड

भाषाओं में लिये गये हैं। उनको सुनकर तो दग रह जाना पड़ता है व एम हैं जो हमारी रोजमर्रा की जिंदगी में आते हैं। जैसे—जम्मा मामा ताई भाई जजिया धुनू मुनू चिडिया, चिरइ, मनइ चुकना बाजी धीलर, कौर, काहू, देवली आदि।

तभी भारत की भाषाओं का विकास केवल जाय भाषा या केवल द्रविड भाषा के विकास पर जोर डालने से सम्भन्न नहीं आ सकता। दोनों का साथ साथ अध्ययन हम केवल भाषा का विकास ही नहीं समझा सकता इतिहास का सही रूप भी समझने में सहायता कर सकता है।

वैदिक भारत में रहने वाली जनजातियाँ का भाषा थी जो एक दूसरे के सम्पर्क में बलियाँ एक तीसरे सबसे महान् प्राकृत परिवार के साथ रहकर बनीं। ये सब मिलजुल कर बनीं जिनमें शब्द इनमें समान हुए उनका जय विकास और ध्वनि साम्य भी समान हुआ। और इन समान शब्दों का व्यापक रूप जितना द्रविड परिवार में है उतना आय परिवार में नहीं। सो उनका मूल द्रविड या प्राकृत में ही सकता है जाय भाषाओं में नहीं। साथ ही इन दोनों भाषाओं में कहा भी ऐसा बणन नहीं है जिससे आय की द्रविड या द्रविड की आय पर विजय सिद्ध हो सके। बल्कि बाहर की जाय भाषाओं पर द्रविड भाषा का प्रभाव पड़ा है जिससे वह भारतीय जाय भाषा से बदल गई है। ऊपर दिये जनक उदाहरणों के अनिश्चित गिनती में देखें। भारतीय आय भाषाओं में १ स लेकर १० तक द्वादश पहले जोर दहाई बाद में जाता है। द्रविड भाषाओं में इसका उल्टा होता है जोर भारत से बाहर की सब जाय भाषाओं में १ स २० तक भारत का और उससे जागे द्रविड भाषा का अनुकरण होता है।

एक बात जोर। द्रविड से पाय शब्द चाहे संस्कृत में चाहे हिंदी आदि में अधिक कवित्वमय जोर प्रभावपूर्ण है दास्य वृत्ति के नहीं। जैसे अनल कानन कुत्तल महिला मल्लिका मुकुट, मुक्ता कुवलय आदि। इनके साथ के संस्कृत शब्दों में उतना माधुर्य नहीं।

एक समान शब्द भंडार

कहा यह जाता है कि संस्कृत प्राकृत, लटिन आदि का एक समान शब्द भंडार है, इस कारण ये किसी एक भाषा से निकला है या इनमें से कोई एक भाषा बाकी की जनना है।

इनमें से कुछ शब्द जो मिलते हैं, उनका उदाहरण लेकर यह निष्कर्ष निकाला गया है और जो हजारों शब्द नहीं मिलते उनका कोई नहीं गिनता। पिता के लिये ग्रीक शब्द है पतिर पर दूसरा है गोनउस। और तासरा है तोकेउस जो न भारतीय भाषाओं में है जोर न लैटिन में।

इसी प्रकार त्रियाएँ हैं। दस मिलती हैं ता चालीम नहीं मिलती। यह

सम्मिश्रण है जिसमें भारतीय आगतुना का स्थान सांस्कृतिक दृष्टि से उच्च-स्तरीय था। वही जन्म जाज भारत में अंग्रेजी का है। ममी, डडी और गार्जार्दि शब्द राजमर्मा काम में आते हैं कहानियाँ में, उपयोग में लिखे जाते हैं। जैसे अंग्रेजी में फामीनी शब्द लिखे जाते हैं। साला बाद लोग कहने लगे कि 'दी अंग्रेजी से निकली है।

संस्कृत समान शब्द ग्रीस में पित्रसत्तात्मक समाज के अधिन हैं। मजे की बात है ग्रीक और लेटिन ने अपने देवी-देवता पुराने रखे हैं बस एक नया अपना लिया है जो पिता रूप है जिसका सम्बन्ध संस्कृत परिवार से है। यह जेउस है जिसका पत्नी रूप लियाम मून रूप लीस की याद दिनाता है। यह लेटिन यूपितर है (युपितर)।

ग्रीस की प्रसिद्ध पौराणिक गाथा है कि नए देवताओं में पुराने देवताओं को हरा दिया। नए देवताओं का नेता 'जेउस' है और पुराना का 'क्रोनोस' जो संस्कृत परिवार से बाहर का है। जेउस क्रोनोस का बड़ा बेटा बनकर देवताओं का राजा बन बैठा। सूर्य हर्नियोस बनकर इनमें शामिल हुआ जबकि सूरज के ग्रीक देवताओं का अनेक नाम थे ह्यपरिआन फोइबोस जपार्लोन।

यूनान की पौराणिक गाथाओं में देवता उच्छल हैं और देवी बदनीय। उनका विवाह नहीं होते, उनकी पूजा करते थे। वह एक मानव समाजक देश था। उन देवियों का भारतीय भाषाओं में कोई सम्बन्धित नाम नहीं है।

भारोपीय भाषा की भाँति

संस्कृत के मूलतत्त्व उत्तर भारत की उन भाषाओं से निर्मित हुए हैं जिनका सम्बन्ध न द्रविड परिवार से है न यूरोप की भाषाओं से। मान लिया ही ग्रीक लेटिन से मिलता है। किन्तु आकाश किस परिवार का है? शुक्र देव, देवता मिल जाते हैं किन्तु सूर्य? भगवान का 'भग' स्लाव हों से किन ईश्वर? मधु? सविता? आन्तिय गवि? किरण और प्रकाश? उदु रात्रि? भूमि और पृथ्वी? जल? वह्नि, पावक, अन्नल? मनुष्य, मानव और पुरुष? नगर और गृह? स्त्री महिला रमणी, वामा? एक तथान्वित भारोपीय परिवार के शब्द के साथ भारतीय पर्याय दिए जा सकते हैं जो अब नहीं मिलते। पति-पत्नी का वर वधू, दुहिता के साथ वध्या, युवा के साथ तरुण स्वधिर के साथ वृद्ध माता व साथ जननी स्वसा व साथ भगिनी पिता व साथ तात और जनक मूत्र के साथ पुत्र भ्राता के साथ वधु कपाल के साथ सिर पाद के साथ चरण, जीव के साथ प्राणी, अश्व व साथ हय सप के साथ अहि या के साथ धेनु श्वान के साथ कुक्कुर वृक के साथ काक (भेड़िया)।

के तुम्हें क्या पुराना है या शतम्

विद्वाना का विचार है कि व मूल ध्वनि है जो लेटिन ने सुरक्षित रखी

और पूरव की भाषाओं ने उस श कर लिया । किंतु किम् क कुत कुन जस प्रतिदिन के व्यवहार म जान वान अनेक शब्दों क विशाल भण्डार वाली भाषा क का श म क्या पलटती । उर लटिन और ग्रीक म श की ध्वनि नहा है । इसी लिये सभावना यही ठीक है कि उहोने शतम् का केतुम् रूप अपनाया ।

दूसरे अगर केतुम् मूलरूप हाता तो जमन और जग्रेजी म हुण्ट और हेडे क्या हाता क्याकि इन भाषाओं म भी र के अनेक शब्द हैं ? सभावना यहा है कि श का ह किमी जनजाति के सम्मिलन से बना ।

लेटिन ने संस्कृत पर प्रभाव डाला या इससे उल्टा ?

यदि यूरोप से आय हुए आर्या ने भारतीय भाषाओं को जन्म दिया होता या प्रभावित किया हाता तो यहा की भाषाओं म यूरोप की प्राचीन जर्वाचीन भाषाओं की वाक्य रचना से साम्य हाता । पर है इसके विपरीत ।

१ संस्कृत म और उससे सम्बन्धित भारतीय भाषाओं म इकाई की मय्या को पहल और दहाई की मय्या वाद म रखी जाती ह— ग्यारह बारह इकाम चक्तीस आदि । यूरोप की भाषाओं म उनीस तक संस्कृत का क्रम है फिर अपनी भाव प्रकृति चलती है दहाई पहल इकाई वाद म । उनम वा विचारधारारों का सम्मिलन स्पष्ट ह ।

२ जन्त विभक्ति चिह्न का भा स्पष्ट है । रामस्य राम का राम क ऊपर विभक्ति चिह्न या सम्बन्धवाचक शब्द वाद म जाता है । यूरोप म दो नियम है— विभक्ति वाद म आयगी (Ramas) और सम्बन्धवाचक पहले (of Rama) इससे उन पर संस्कृत का प्रभाव लिखाई पटना है । विभक्ति उहाने संस्कृत से ली पर सम्बन्धवाचक अपना रखा ।

३ संस्कृत का नियम विशेषण का मून शब्द से पहने रखा जा है । ग्राक लटिन जाति भाषाओं म पहल भी हाता है वाच म भी ।

४ संस्कृत या सम्बन्धी भाषाओं म क्रिया वाक्य के अन्त म जाती है । यूरोपीय भाषाओं म क्रिया कम से पहल जाती ह । लटिन और ग्रीक म यही माधारण नियम है पर उही वही क्रिया वाच्य क अन्त म भा आती है । यहा वाक्य रचना पर संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट लिखाचर हाता है ।

ऊपर के तीना वाक्य रचना क नियम अरबी म भी यूरोपीय भाषाओं वाल है । हा सक्ता है यह शमी भाषा का प्रभाव यूरोप पर पडा हो । फारसी लटिन रसी संस्कृत हिंदी म उपपन्न निश्चयवाचक विशेषण (a an the) का प्रयोग नहा है । ग्रीक इतालवी जमन फ्रच, इंग्लिश जादि भाषाओं म अरबी भाषा की तरह (अन) उरूरी ह ।

हमारी द्रविड भाषाओं की प्रकृति भी साधारण भारतीय भाषाओं से मिलती

है यूरोपीय भाषाओं से नहीं। वहाँ भी क्रिया अत म आती है। सम्बन्धसूचक शब्द भी तमिळ वाद म रखती है। विशेषण क्रिया या शब्द के पहले जायेगा।

एक भारोपीय सस्कृति की भ्रांति

यूनान मे लग टर्की के भाग म प्राचीन हत्ती साम्राज्य पाया गया है जिसके देवता वही है जो ऋग्वेद के ह और भाषा भी वही है। पश्चिमी इतिहासकारों का मत है कि आय अपनी विजय यात्रा म पहले एशिया माइनर (टर्की) म जाए और फिर पूरब की ओर बढ़े। वेद पुराणों पर हमारी खोज के अनुसार वदिक जन अफगानिस्तान से पश्चिम की ओर उत्तर की ओर निरले और अपनी सम्यता बाहर फलाई।

आश्चर्य की बात है कि यूनान के आय विजता जपन निकटवर्ती हत्तिया का अपने ग्रीक देवता नहीं द पाए जयकि लटिन जना ने अधिकतर ग्रीक देवी-देवताओं को अपना लिया चाहे उनका नाम कुछ बदल दिए ह।

इसी प्रकार जमन देवमण्डल— अग्नि घोर, वाल्डर, फिद आदि हमारे देवमण्डल से बिल्कुल अलग चलन है। यदि भारोपीय भाषा एक होती और एक जाय जाति की हाती तो ग्रीक लेटिन और जमन देवमण्डल हमारे देवमण्डल से भिन्न न हान। यह इन भाषाओं की स्वतंत्रता और भिन्न सना लिखलाता है।

अनेक बोलियाँ

जसे आजकल कहा जाता है कि बड कोस पर वाली बदल जाती है, उसी प्रकार पुराने काल म भी बोलियाँ विभिन्न थीं। अनेक जन वम हुए व अनेक जन जाति था। उनकी अपनी बोलियाँ थी। कुछ जन मिले, एक सघ बना, उनकी वाली मिलकर एक हुई। भरत और पुरु जन मिलकर कुरु वन। कुरु पाचाज एक साथ बहे गए। इतिहास म एमे तीन सघ मिलन है। वृष्णि क अधिक और वृष्णि सघ से लेकर बौद्ध काल क वज्जि सघ तक।

सरस्वती क तटवासि जना की वदिक बोली थी जिसम जाज भी ऋग्वेद पाया जाता है। ऋग्वेद की अनेक शाखाएँ थी का अर्थ है अनेक बोलियाँ मे विद्यमान था। सरस्वती तीर के ऋषिया के गुरतित रखने के कारण ववल वदिक वाली म वचा। बदयास के समय म सरस्वती मूख चुकी थी वहा से बिडान् उत्तर म शानल नगर म चल गए व। सो शात्रिन शाखा बची कहा जाता है।

मरठ अम्बाला की बोली अलग था। भरत, कुरु, पाचाल क प्रबल होन पर उसने वदिक पर प्रभाव डाना और इस मिश्रण को परिष्कृत करके विद्वाना न सस्कृत भाषा बनाई ता एक वृथिम भाषा थी, साहित्यिक भाषा थी। साम्राज्या का निर्माण व्यापार म अग्रणी होकर सत्र और फनना, जनसग्या अधिक हान पर

इधर उधर फैलना— इन सब कारणों से वह अतन्त्रनजाति भाषा बनी। इसका मतलब यह नहीं कि अथ बोलिया समाप्त हो गई। विभिन्न जनजातियाँ भी विकसित होकर भाषा का रूप ले रही थी। संस्कृत भाषा से उह प्रास्ताह्न ही मिला। यहाँ तक कि कुरु प्रदेश की जो बाली थी वह संस्कृत के रूप में मिश्रित हान पर भी पतपती रही। साम्राज्या के विघटन के बाद जब संस्कृत का वचस्व घटा तब विभिन्न बोलियाँ फिर सामने आईं।

मुसलमान आक्रमणकारी तुर्क और अफगान थे। वे फारसी, अरबी व म समभक्त थे। उनकी भाषा इतनी विकसित नहीं थी। इसलिये उन्होंने मेरठ दरला की खड़ी बोली को अपनाया। वह गोलि मध्य देश की अथ बोलियाँ के साथ मिश्रण कर लिनी बनकर प्रतिष्ठित हो गई। शेरशाह ने हिंदी का अपना राज्य की भाषा बनाया। अकबर का पता लिखा नहीं कहा गया शायद फारसी न जानने की वजह से। वसे खड़ी बोली से उस प्रेम था।

अंग्रेज जब भारत में आए तो उनके अनेक विद्वानों ने लिखा कि कलकत्ते से कावरी तक हिंदुस्तानी जानना जरूरी थी और यह विश्व की सबसे अग्रिम प्रचलित भाषा थी।

हिंदी शब्द कैसे बना ?

इस बारे में प्रचलित धारणा यह है कि इरान के लोग सिंधु (या सिंध) को हिंद कहते थे और बगल रहने वाला को हिंदू हिंदुई या सिंधा कहने लग। से को धारण में उह कठिनाई होती होगी उस वक ह बालत थे।

परंतु यह दलील त्रिकुल थाथी है। फारसी में सकडा शब्द में से गुरु हाने वाल है जस— सादगी सामान सजा सिपाही सरकार सुरमा आदि। इसके अतिरिक्त क्रिया की धातु भी अनेक में से गुरु होती हैं। फिर अरबी से सकडा शब्द फारसी में से से गुरु होने वाले सण (सराय सफर सिफर सान्नि आदि) जो से में ही बाल गण ह से गली।

अधर सर जाज प्रियसन न कश्मीरी भाषा में ह वष की अधिकता पर ध्यान दिया था। वह शान हाथ श्वसुर हिंदुर सानल हानर जस अनेक शब्द से से ह में बल है। यही गजस्थानी भाषा में है बगला तथा असमिया में मिलता है। सिंधी में रहनी में मगठी की कुछ बोलियाँ में, गुजराती की उपभाषा में। स्वयं हिंदी में अनेक स्थानों पर में की जगह ह जाता है। दस दहम् सी। ताश के पत्ता में दहला। गिनती में छह पय की जगह जाया है। ग्यारह से अठारह तक ह का प्रवेश है। इनहतर से आग सत्तर की जगह हतर होग्या। ब्रज भाषा और अवधी में स्नान का हनान या नहान, पापाण का पाहन, पुष्प का पुष्प वृष्ण का वाह कसरी का कहरी।

और यत् प्रवृत्ति सस्कृत म भी पाई जा रही थी। मूल रूप ऋ (थदा) से हृद या हृदय बना है। अस्मद् से जहम् बना है।

यसस निम्न हाता है कि हिंद और हिन्दी शब्द का निमाण भारत म ही हुआ था।

जस यूगप की भाषाआ की तुलना म ह का महत्त्व सस्कृत म अधिक है वम ही वैदिक की तुलना म सस्कृत म, सस्कृत की तुलना म हिंदी म साधु हिंदी की तुलना म जनपदीय बोलिया म और इन बोलिया म भी पछाह की तुलना म पूरव म 'ह' का प्राधाय है।

सस्कृत बोलचाल की भाषा थी या केवल पढ़िताळ ?

सस्कृत म 'इप' धातु है जिसके रूपा म (इच्छति आदि म) प का स्थान छ न लता है। यह आज भी हम अनेक भाषाआ म देखते ह। हिंदी म पप का छ बनना। अय भाषाआ म छे आटे, छ इसी प्रवृत्ति की दन है। और यह आज की नहा, ऋग्वेद जितनी पुरानी है। यहाँ अनुमान करना पडता है कि कोई जनजाति प का उच्चारण करती थी दूसरी नहीं कर पाती थी और उसे छ करके बोलती थी।

सस्कृत म इच्छति पृच्छति अहम् आदि रम दान का धानत हैं कि सस्कृत जितनी ही परिष्कृत की गई फिर भी बालचाल की भाषा न उस पर प्रभाव डाला और उस साधारण जन की बोली बनाया केवल विशिष्ट प ले लिखा की नहीं।

वैदिक ऋचाएँ कहा रची गई ?

यदि ऋचाएँ बाहर रची गई तो हम देखना है कि कौनसा ध्य है जो ऋच म को छ म बदल देना है ? यदि याहर यह नहीं पाया जाता, ता भारत भूमि म किम भाग म है ?

अवधी म लोग छान आन पर ऋतजीव को 'छतजी कहते हैं। यही मरठ के आनपास रहा जाता है। लम्बी वा रन लछमी है। लक्ष्मण वा लछिमन कहत हैं। बल्ग को यच्छ मत्स्य का मच्छ मछरी वा मछनी।

सस्कृत म सधिय व अतक नियम वतमान वातिया क इम रूप पर आधारित है जम— उच्छ्रान उच्छ्राम उच्छ्रष्ट आदि।

भाषा और इतिहास

हमार पुरा इतिहास म आरम्भ म कौशल रण सक्तिपाता रहा ऋचातु वम क राज्यता म। उधर परिवम म मंडा वम बाद भरत गण और कुर गण हुए। इन्नातु वम कोमन वा था— आज की जवरी का प्रदा, पुरानी प्राग्म वा प्रग्म जिनम विद्वारीणा वाजनी वन् हैं सस्कृत हिन्दी आदि सब भाषाओं निता।

(ii) पाणिनि धमसूत्रा के समय तत्र लोकप्रिय नहीं हुआ था। (यह भी गन्त है।)

(iii) वे पाणिनि की जप्ताभ्यायी के यत्राय किसी और याकरण के अनुसार चलत है।

(iv) धमसूत्र पाणिनि के स्थान से बहुत दूर के स्थाना पर तिख गण है और वह इन स्थाना के शब्दा स परिधिन्त नहीं था।

(i) स्थानीय बोलिया का अत्यधिक प्रभाव है।

(ii) धमसूत्रो के समय ससृत्त वान शालकी भाषा थी और एसा भाषा को नियमा स बाधकर रखता असम्भव है।

मर विचार से इन सब वाद विवाद का निष्कप मर इन मत के समथन म जाता है कि ससृत्त पुरानी भाषा नहीं है, उसका नाम ही उस बनाई हुई, ठीक का गई भाषा बताता है। उसमे पहले भी भारत म अनेक जनजातिया और उनको बोली मौजूद थी। किशोरीदास वाजपेयी के अनुसार ससृत्त से पहले भी कोई पुरानी प्राकृत भाषा थी उसी से प्राकृत हिन्दी, आदि भाषाएँ निकली ससृत्त से नहीं। वेद कई शाखाओ म पाया जाता था आज केवल शाकन का ऋग्वेद मिनता है। शानल के जास पाम रहने वाली जनजाति को बोली म यह पाया जाता है अय बोलिया म नहीं। इसी शाली को तथा अय बोलिया का सुससृत्त करके त्नासिन्नी ससृत्त भाषा बनी जो हमेशा पण्डित बग की और साहित्यिक भाषा रहा और जिसन भारत का एक समान भाषा दी।

धमसूत्र धम का वतान है जो जनता अपनी दिन प्रतिदिन की बोली म साचता है पूजता है किसी बनाई गई भाषा म नहीं। इसी कारण दोना मे भिन्नता है।

ये सब बोलिया बोलन वाली जनजातिया भारत म मिथित हानी रहा और इनके शक एक जाम भाषा ससृत्त या हिन्दी म निय जात रह। इसी कारण हमारी भाषाया म एर एक बस्तु को बताने वाले अनेक शब्द है। जितन पर्याय हमारी भाषा म हैं ससार की किसी भाषा म नहा।

नए पुराण का खडन मडन

पुराने पुराण को तो कपोल कल्पित माना जाने लगा और नए विद्वाना न अपना पुराण गन्त। उहाने ऐतिहासिक प्रक्रिया या विकासवादी प्रक्रिया को उलट दिया। डा० सुनीति कुमार चटर्जी निघत हैं —

जाय जन भारोपीय भाषाभाषी जाय यायावर जना के ही अग थ जिहाने कम से कम ईसा स ३००० वष पूव अपनी विशिष्ट ससृत्ति का निर्माण कर लिया था। किहा कारण्णा से जिनका हम पता नहीं है मूल भारोपीय भाषी जना का विविध वभाषिक समुदायो (डाइलक्स ग्रुप्स) म बिघटन हो गया और वे नए

वात्रिया व ऊपर त्रिसी सात्रजनित साहित्यिक अथवा सम्पन्न भाषा का विकास कर लिया हो। संस्कृत भारत में इसी प्रकार विस्तृत हुई है। बाह्य के अन्तर्गत दशा पर वह प्रभाव अपने विकास के उपरान्त ही डाल सकती है। स्पष्ट है कि हमने जन्म जीव विज्ञान व बाद इसका बालन वाली जनजातियां भारत से बाहर गई। पारसी, यूनानी, शक हूण आदि भी भारत में हमलावर बनकर आए। क्या नहीं उनकी भाषा हमारी भाषा बन गई ?

असल में मूल जन यायावर कबीला के रूप में नहीं विद्यमान थे। एक भूभाग पर जनक यायावरी कबीला ने इकट्ठा होने पर जहाँ उनके भोजन की समस्या स्थान-स्थान पर रहकर ही हल होने लगी थी, उनकी बोलियां में मिश्रण हुआ था शब्द बने थे वृषि के नए शब्द बने थे व्यापार न अका का उत्पन्न किया था। साथ ही भाषाशास्त्र का देव ऋषि का सम्मिश्रण हुआ था धर्म बना दशन उपनयन हुआ, संस्कृति आई सम्भन्ध बढ़ी। इस दशा में पहुँचने के उपरान्त ही उस भूभाग में जन अन्तर्गत भाषा में फल तभी उन्होंने अपनी भाषा अपना संस्कृति का प्रसार किया। साचन की बात है— भारोपीय देव शास्त्र का बीज भारत में क्या अकृत्रित हुआ और पश्चिमी भारोपीय देव शास्त्र क्या ह्रासमुख दिखाद बना है ?

दूसरे जातिभारोपीय साहित्य का सर्वोत्कृष्ट रूप भारत में क्या दिखाई देता है ?

अन्त में संस्कृत भाषा सबसे अधिक समृद्ध और समर्थ अपनी शेष जहाना में है जबकि उस बहुत दूर से सान भी वर्षों तक भटकते भटकते जनक जनजातियां आर बालियां में लड़ते भारत में स्थान मिला। उसे ता सत्रसे अधिक विद्यमान हो जाना चाहिए था।

आजकल नई खोजों ने यह सिद्ध कर लिया था कि भारोपीय भाषाशास्त्र का द्रविड भाषाशास्त्र से बहुत सम्बन्ध है। इसमें अन्तर्गत शब्द ऐसे हैं जो द्रविड मूल के हैं। फिर सिद्धांत पलट। यह माना जान लगा कि द्रविड भी उसी जन्म से जहाँ से आय आए थे, जायों से कुछ पहले भारत में आए। यूरोपियनों को तो अपना भारत में जाना जायज करना था।

हमारे लिए महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि अपने मूल निवास में आय और द्रविड दोनों ही जन लगभग एक साथ और लम्बे समय से रहते आए थे। पशु चारण और अध-यायावर अवस्था में जिस गतिशीलता की सम्भावना रहती है उसमें यह वह सन्नता बठिन है कि वस य दाना जन एक दूसरे में कतरान या अपनी भाषाशास्त्र को अलग बनाए रहे। था भी ऐसा नहीं। भारतीय भाषिक उप स्तर की खोज कर रहे हुए जिन भाषिक तथ्यों का उद्घाटन जाना है व य है —

१ भारोपीय और द्रविड भाषाशास्त्र में तात्त्विक भेद नहीं है।

२ इन भाषाशास्त्र का विकास भारतीय परिवेश में हुआ था।

१. एक निश्चित विकास व वाद अर्थात् आहार अवयवण और जादिम कृषि तथा पशुचारण की अवस्था को पार करती आर स्थायी कृषि-व्यवस्था के वाद द्रविड भाषा भाषी व्यापार के लिए विद्रोह के दानिण की आर बट चने और विद्रोह स उत्तर और दक्षिण म द्रो पृथक् भाषाभाषा का विकास होने गगा ।

४. भारोपीय अथवा जायभाषी जना का विकास लगभग उनी जनजातिया व समकाल से हुआ था जिनसे द्रविडभाषी जना का और आरम्भ से ही वम जन समाज म कोई एक नृवशीय तत्व नहा था अपितु दसम अनेक जनजातिया का रक्त मिला हुआ था ।

५. तत्पश्चात् पूजा निमाण के साथ व्यापार वाणिज्य का भी आरम्भ हुआ और सबप्रथम भारत के पश्चिमी अंचल से कुछ जना का वगिगमना हुआ जिनकी शब्दाएँ भारोपीय ही नहीं सामी अंचल म भी फनी । विस्थापित जना ने अपनी जावादी के प्रभावकारी होन पर एक स्वतंत्र और स्वविशिष्ट सस्कृति का निर्माण किया और वे अपनी भाषा तथा जातीय गुणा को अधिक बनाए रख सके । जहा उनकी जावादी इनकी प्रधान रही थी वहा य स्थानीय जना और भाषाभाषा से अपनी पृथक्ता अधिक समय तक नहा बनाए रह सके और कुछ समय तक अपनी निजता की रक्षा करते रहन के बाद स्थानीय रग म रग कर एकसात् हो गए ।^१

उत्तर भारतीय और द्रविड बालिया म कुछ शब्द है जिनके साथ को घटक जुडा हुआ है और जो खान से अपना मूल साहचर्य प्रकट करते है । उदाहरण के लिए —

उत्तर भारतीय बालिया

कोदा = पीपल पाकड या बरगद का फल
कोदो = एक अविभक्त अन्न गात्र । गहू । गोधूम फा० गद्दम
कादा = कटहल के भीतर का पाद्य सार भाग
गूदा = फल का मार मकोय एक भाडी का फल मक्का (मकई) — मक्का कोड़ना मट्टे का फल गाना — फल का रस कदली (कोननी ?) — कना कत कृषि त्व छाया — दूध का कदम्य कोहडा स० कुत्माण्ड ।

द्रविड बालिया

त० कोदुम मल० कोतमु कन्न० गोधि गहू त० कोट्ट मल० काणम् कन्न० कुरट्टि = कुलधी त० वाकोट्टुण = जव त० कायत्तानियम् — मयूर त० कटले यल० निलवक टल कन्न० नैलकउल्ले = मूगफनी त० कटल मल० कटल मल० कटल कन्न० कवलकालु चना त० कोय्या घणम् — अमहत् त० वेत्तरि-वत्राय = वक्ली त० फोट्ट = कटहन त० काय = फल शाक ।

द्रविड म काय पूर वग के साथ जुडा हुआ है और जिनसे यह जुडा हुआ है

व सभी भारतीय परिवेश में पत्त हात हैं और इनका सम्बन्ध आहार-अवपण की अवस्था से जुड़ता है। काय को का मूलतः उसी रूप का प्रतिनिधित्व करता है जिससे स० का घात और सम्भवतः गुद् 'रस तना, मजा सेना' आदि 'युत्पत्ति' हैं। इनमें गोधूम को काया व साय मिलाकर दखन पर लगाया कि मूत्र शक्त वात्सु ही था जिसमें गोधूम बना है। सस्कृतना ने देवा के भोजन में गहूँ न पाने पर गो म की 'युत्पत्ति' की है कि वह जगती पौत्रा था जिसका धुआँ देकर गो की दह के कीड़ मार जान ये सम्मिलित वह गोधूम कहनाता था। फारसी में मत्स्य शक्त की उपास्यति 'म' यान का मूचक है कि 'सस्य' निगमन भाग्य से हुआ है कारण भारतीय परिवेश में यह शब्द प्रायः वस्तुआ क एन पूरे दग में से एक होन व कारण अपना अर्थ स्पष्ट करता है पर सस्कृतीकृत होन और उसमें पुन फारसी में पट्टचन पर यह अपना अर्थ खो गता है। यूरोपीय दशा में इसका लिए प्रयुक्त शब्द का अर्थ है सपत्न जिसमें प्रनट होना है कि यह अन्न वहाँ न परिवेश में बाहर में जायातित हुआ था और 'म'का मत्स्य गुण इसका रग माना गया था। य सभी बातें यह सिद्ध करता है कि जिस परिवेश में य जन अपनी जातिम अवस्था में रहते थे वह भाग्य में बाहर न जाकर मारन में ही था।

'सस्य' पुष्टि स्वयं भारतीय साहित्य में भी हाती है। न कवन भारतीय जायों को अपने बाहर से आन व विषय में कुछ भी पात नहा जयितु व स्पष्ट रूप में इस भूमि का ही सदा से अपना मानते आए है जबकि दूसरे अन्त में समाज जना का अपने रिश्तेगी उद्भव की गामी यात बनी हुई है। जहाँ आय जन अपनी विशिष्ट सस्कृति के बाट शप जना को अपने में हेठा ममभा गता हैं और उनके बीच जान पर घमच्युत हान के अज्ञेया पालत हैं वहाँ भी व यह रत्न दिग्गई दन है कि तीथ यात्रा व लिए अनाथ क्षेत्रा में जाया जा सरता है।¹ जिस जगत् व पहल गए न हा व तीथ-स्थान कम हो सरत है। बाहर आनर उनके पूनजा व त्रिभिन्न रत्न अपने घम भाषा सस्कृति को मूत्र गए यत् पुगण महाराय जाति के त्रिभिन्न स्थाना पर बणित है।

भाषा का विनाश अधिन सरन जनसार्थी शक्त में अधिन जतिम अवस्था का जार हुआ है। यत् जतिना मूत्र व्यजनाभा व अमूर्तीकरण जनर मूत्र शक्त व गयाजन में नए रूप गन्त शक्त को वाक्या में नियोजित करन आदि व कारण आई है। मूत्र ध्वनिया की अनरायता एनाधिन वस्तुआ और त्रियाजा में उत्पन्न हान वाली समान ध्वनिया व कारण भी आई है। अतः भाषा की प्राचीनतर अवस्थाओं में जनसार्थी शक्त अधिन रत्न है।

एन ही वस्तु की विविध त्रियाजा या गतिया व कारण उगम भिन्न भिन्न ध्वनिया उत्पन्न हा सरता है और एसी अवस्था में उम एन ही वस्तु व लिए

एकाधिक शब्दा का भा प्रयोग हो सकता है। अतः भाषा की प्राचीनतर अवस्थाओं में पर्यायों की अधिक संख्या देखने को मिलगी। यह तथ्य उन विद्वानों के सरनी कृत विश्लेषणों का निषेध करता है जो यह मान लेते हैं कि अमुक भाषा में अमुक वस्तु के लिए अमुक शब्द प्रचलित था अतः उसमें पाया जान वाला दूसरा शब्द किसी अन्य भाषा का हो सकता है। वह पुनः इस रहस्य को भी उद्घाटित करता है कि भारत का प्राचीनतर कृतियाँ में और द्रविड भाषाओं में पर्यायों और अनेकवचन शब्दों की इतनी बहुलता क्या है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि जाय और द्रविड भाषाएँ परस्पर भिन्न कुला की भाषाएँ नहीं हैं अपितु वे एक ही मूल से निकली हैं। निश्चय ही उनका सम्बन्ध अधिक प्राचीन अवस्थाओं पर जाकर जुड़ता है न कि ऊपरी स्तर पर।

पर्याय शब्दों का बाहुल्य

मूलतः एक नहीं था, अपितु कई बोलियों के मिलन में बन था। क्या उन्होंने अपनी बोलियों का परित्याग करके एक ही बोली को अपना लिया? पर यह एक असम्भव सी बात है। कारण कुछ थोड़े से जनता की भाषा शेष समाज पर तब आरोपित हो सकती है पर होता नहीं जब राजनीतिक या धार्मिक प्रभुत्व के कारण वह बगैर विशिष्ट हैसियत रखता होता है और अपनी भाषा का शेष समाज पर लागू करने की अनुकूल स्थिति में होता है। कबीलाई स्तर पर इस प्रकार का विशिष्ट प्रभुत्व किसी एक का हाता ही नहीं। अतः यदि जनता का संकरण होता है तो उनकी बोलियों का भी संकरण होता है और इस संकरण में सभी बोलियों को अपना उचित हिस्सा मिलता है। ऐसी अवस्था में कोई भी बोली एसी नहीं रहती जिसे सम्पूर्ण जनता जीवित रह। सब के कुछ जशा का क्षय हो जाता है। इसका वाक्यजुद जनक बोलियों के जाय हुए बहुत से शब्दों के अनेकवचन पर्याय समानांतर प्रचलित रहते हैं और इसी प्रकार सभी बोलियों में पर्यायवाची शब्दों की वृद्धि हो जाता है। इसी कारण हिन्दी आदि भारतीय भाषाओं में पर्याय शब्दों की बाढ़ है क्योंकि यहाँ बोलियों के जनजातियों का सम्मिश्रण हुआ है।

संस्कृत की आप्तता जहाँ सदिग्ध बनती है वहाँ भारतीय बोलियों पर दृष्टिपात करना उचित होगा। हम इस तथ्य को व्यावहारिक विश्लेषणों में भी स्वीकार करना चाहिए कि संस्कृत एक कृत्रिम भाषा है जिसका जन्म तत्कालीन भारतीय बोलियों से हुआ था। अतः यह न तो समस्त शब्द सम्पदा का उद्घाटन कर सकती है न ही समस्त प्रामाणिक रूपों का, क्योंकि प्रजनन करने वाले जन केवल मुषटिन और सामान्य बगैर के नहीं थे अपितु उनमें अतिशय व्यक्तियों का अधिक प्रभावशाली अनुपात रहा होगा जिनकी बोलियाँ संस्कृत के निकट थीं पर तद्रूप नहीं। साथ ही इस प्रजनन में एक अचला के भी व्यक्ति सम्मिलित रहे हैं नवते हैं

जिनकी बोली मसृत्त या उसकी आधारभूत बालिया स अधिक दूरी ग्यती थी ।

‘मसृत्त यत् प्राचीनतर रूपा का शन प्रविशत प्रनिधिधत्व वरन म अथम है ना सम्भव है भारतीय बोलियाँ हमारे लिए मसृत्त स भा अधिन विश्ववर्गीय हा मन । एसी स्थिति म तुलनात्मक भाषाविज्ञान का एन महत्त्वपूर्ण काय हा जाना है नि प्राचीन बालिया या पुनसजन कने ।’¹

ससृत्त मे बोलियो से ली गई धातुएं

मसृत्त म कुछ मिलानर लगभग दो हजार धातुएं हैं । बनफी क मतानुमार यह सख्या १७०० है । वास्तव म कुछ धातुएं एक स अधिक गणा म शामिल का गई हैं और उह निरान दन क बाद मूल सख्या म कुछ कमा का जा जाना स्वाभाविक ह । हा सग्रह भी धातुआ म भी बहुत धातुएं एसा है जिनका मसृत्त म कन प्रयोग नहीं हुआ है । एजरेन न एसी धातुआ की सख्या ६८२ निर्धारित की है जिनकी पुष्टि मसृत्त साहित्य के आधार पर हाता है । और मक्समून्गर का मन है नि एजरेन की इस सख्या म थोडा-सा पर सम्भव है पर पूरी सख्या का किमी भी दशा म १००० स ऊपर नहा स जाया जा सकता । जिन धातुआ की पुष्टि मसृत्त साहित्य के आधार पर नहीं हाता उाके विषय म वेनफा न बहुत पहन ही यह मत व्यक्त किया था कि दनम स अनक तत्कालीन भारतीय बालिया म स ली गई हा सक्ती हैं ।

यत्ति हम पाणिनि क धातुपाठ पर दृष्टिपान कर ता पाएग कि वन्त भा धातुएं एक ही धातु का रूपांतर प्रस्तुत करती है । मसृत्त म यथामम्भव परि निष्ठित रूपा का हा अधिक मत्त्व दिया जाता था । अत इस प्रकार क शिबिल रूपा का पुष्टि की आशा मसृत्त म नहा की जा सक्ती पर य रूप अपने मसृत्त प्रनिरूपा के लौकिक रूपांतर हो सक्त है इसकी बहुत अधिक सम्भावना दिखाई देती है । पतञ्जलि का यह कथन कि भूयासी अपशन्ता जत्पीयास शन्ता । एरकस्य हि शन्त्यस्य वहुना अपभ्रशा । तद्यथा । गौरित्यस्य शब्दस्य गादी गाणी गोता गापातलिकत्यवमादयो अपभ्रशा । काफी राचक है । हम इसी के मादृश्य पर कह सकत ह अनकश अपधातुएं है और बहुत थोडी सी धातुआ क अनक अपभ्रश रूप ह जस गम् ग्य ज्य आदि ।

कात्यायन न जब इस बात का उल्लेख किया था कि पाणिनि क समय क अनक शन्ता जाञ्जल प्रयोग म नहीं आत तो उहान पाणिनि के समय स अपन समय तन की भाषा क अंतर के माध्यम स अतवर्ती काल की दीघता का ता कुछ सूचना दी थी पर शायद उहान इस तथ्य का अपनी दृष्टि से जाभल कर लिया था नि पाणिनि द्वारा गिनाए गए अनक धातु रूप लौकिक बालिया के हा

समत है ।

संस्कृत धातुपाठ में जिन धातुओं के विषय में यह दापारोपण किया जाता है कि उनकी पुष्टि संस्कृत वाङ्मय से नहीं होती उनमें से बहुत-सी आज तक भारतीय बोलियों में प्राप्त शब्दों में सुरक्षित हैं और बहुतों से इस दीर्घ अंतरान में अप्रयाग के कारण काल-कवलित हो गईं लगती हैं । इस दृष्टि से निम्न धातुओं और उनकी पुष्टि करने वाले देशज शब्दों पर दृष्टिपात किया जा सकता है —

वधि गत्याशेषे

मणि वनि गत्यर्था

लछ लाछि लक्ष्य

खज मय

अठि गती

हेठ विवाधायाम्

एठ च

कुडि दाह

वडि विभाजने

हड हाड अनादरे

वाच आप्लाव्ये

रट परिभाष्य

वट वेष्टन

किट पिट श्वास

जट भट सघात

पिट शब्दसघातयो

मडि भूपायाम्

नुडि स्तय

वड्वा कार श्य

मुड ताडन

लवि शब्द

धूप सशय

चमु, जमु छमु भमु अदने

मल मल्ल धारण

रवृ प्लवगती

वग्गी, वग्गी = घाडा गाडी

बहकना = मागच्युत होना

मग, मग, माग

लछमी लछिमी लछमीना

खजविलाइल खजवज, खवजा

जठिनाइल इठलाना

हठ, हड्डी, हाडा हाडी

एठल, ऐठन ऐँह

कुडल, कुडन, वजाह वडाही

वडी वडई

हेठ हठी वा० हडवाग, मा० हरवालार्ई

वाड, वाडि

रटना रदन

वटुआ

घटका, चुटका

भटका, भटहा

पीटना, पिटना

मत्वावल, मत्वाई मिरहावल

नूट, लुटरा

कडा, कडाई

ताडना, टूटना

लवारो, लवार लवारिया लवलह्व,

लह्वरिया

धूप

जेवना जेवनार, जवनट्ट जैवल

माना, मलमल मलाई

रवठल, रवा (नदी का नाम)

हय गतौ
ब्रूल जाचरण
बल, वेरन चलने
तक्षू त्वक्षू तनूनरग
रिस हिमायाम्
नस शनेपणत्रीडनया

हउहारि, हाऊ हाऊ ह्य = घोडा
कुलही, कुलहा
बलन, बेलावल
ताछन चाछल, चासल
रीस रीमी रिम रिमिआइल रिसिहा
लासा लसलसा लसाह लसरा, लसारा

पुरानो बोलियो से शब्द

ससृत्त न दशी भापाआ स बहुत स शब्द भी अपनाए है । इनकी एन बहुत सम्बी और उपयोगी सूची टी० बरा न अपनी पुस्तक 'ससृत्त नग्बज १८४५ व अध्याय ८ म दी है । उसम स कुछ उद्धृत किए जा रहे हैं—

आग्नेय कुल की भाषाओ से— अताबु (लोका) उद्दुह (चूरा) कदली (केला) कर्पास (कपास) जम्बाल (जीबड) जैमति (जीमना) ताम्बूल (पान) मरिच लागल (हन) सपप (भरसा) आदि ।

द्रविड कुल से— अगुरु, अनल, अक, अलस आरभट (फिसानी) उच्छ (पाछना) उलप (भाडा), उल्लुल, एड (भेड) कज्जल, कटु कठिन करीर क्लुष काक काच कान पुटि कुदिल, कुट्ट (कूटना), कुण्ड, कुण्डल कुदाल कुतल, कुचलय (कमल) केतक कोटर कोण, कोरक खल गण्ड पुण धूक चिक्कण (चिक्का) चतुर चदन चपेटा रुम्ब च्चा ताडक या तालक (ताला) तामरस (कमन) ताल, तूल दण्ड नक निविड, नार पण पण्डित पल्ली पालि पिटक पिण्ड पुट बक बल विडाल बिल, बिल्व मयूर, मल्लिका, मयि, महिला माला मीन, मुकुट मुकुल मुक्ता मुरज लाला, बलय बल्ला शकल, शठ शव शूप हेरम्ब (भस) इत्यादि ।

एक जोर विद्वान् प्रिलुस्की न मिद्ध किया है कि ससृत्त क कपोल नारिकेल भेक जथा कपोत हलाहल दाडिम कदव शिम्ब निम्ब जम्बु गुड, जाति शब्द भी मुडा स आए हैं ।

पहल प्रकरण म हम बला आए ह कि आर्या का यहा के जातिवासिया की भाषा न अनेक तत्त्व अपनाए पड़े हाग । अब इस प्रश्न पर गीन डग मे विचार किया जा सकेगा कि क्या हिन्दी के जा शब्द—जस आक (मत्तार) काजल, कडुआ केवडा घुन, डडा जाघ, मीम आदि—ससृत्त स मिद्ध किए जा सक्ते है वे अनाय नही रहे ? क्या इन्ह देशी नही कहा जायगा ?

प्राकृत न भी अपने समय म जट्टक (हि० अटकना), कोरा (हि० कोरा), खिल्ला (हि० खाला) गोड्ड (हि० गोड) गाद् (हि० गा) दुड (हि० दूडना) फिक्का (हि० फीका) लोट्ट (हि० लाटना) लुक्क (हि० लुक्का) जादि बहुत स

शब्द अनाय भाषाओं से लिए जा हिन्दी में आज भी चल रहे हैं। अपभ्रंश के इस प्रकार के शब्दों की संख्या बहुत अधिक है। इस दिशा में अभी खोज करने की आवश्यकता है। हिन्दी में सीधे तो बहुत ही कम शब्द अनाय भाषाओं से अपनाए हैं, किन्तु मध्यकालीन आय भाषाओं के माध्यम से आई हुई एतद् बहुत बड़ी संख्या इसमें विद्यमान है।

हिन्दी में अनुकरणात्मक शब्द बनाने की प्रवृत्ति प्रमुख है, ये शब्द दशोपरोध के उत्प्लुष्ट नभून और देशी सम्पत्ति का मुख्य भाग हैं उदाहरणतया—
टें टें, काय काय चू चू, खुसर पुसर, भड भड बक बक ठक ठक पो पो डकार भनकार, पटकार, डगमग, जगमग, तडातड गडगड भिलभिल हुलमुल लचक थपक, ठनक भक धक्का टक्कर भुमका, बिदकना सटकना एटकना आदि आदि।

कई शब्द प्रतिध्वनि के रूप में गठ लिए गए हैं जैसे सामने पड़ोस या पास में पहले ब्रह्मण आमन अडोस, और आस अथवा गोल रोटी भेल, रूप नगा आदि के बाद ब्रह्मण मटोल घोटी जोल, चाप घडगा आदि।

कभी-कभी प्रतिध्वनित शब्द स्वतंत्र अर्थसत्ता स्थापित कर लेते हैं जैसे उल्टा-मुलटा, टुड-मुड डील डील में मुलटा मुड और डील।

विभिन्न भाषाएँ

पुरा प्राकृत या यक्षभाषा

आरम्भ में कुछ अनुकारी ध्वनि थी जिन्हें जनजातियाँ न बोलना आरम्भ किया, उमी में जाय द्रविड और समस्त भाषाओं का विकास हुआ। ये ही आदिम बालियाँ की बीज रूप थीं। कुछ उदाहरण लीजिए—

पत्— किसी मुलायम चीज के गिरने की ध्वनि (पत्ता पानी बूद जादि)। इनके अलावा हजारों शब्द पत्तल, पत्तीनी तमिल पत्तर (पानी निकालने का यंत्र) मन्थालम पत्तम् (भाजन) सस्कृतीकृत पात्र पाती पात (स पक्ति) वधु (बधा हुआ) त० पतम् (बदन) पताफा, पतग पान पद, पाद पय, पतन वध वात जादि सब भाषाओं में यने।

अर— पानी या हवा के बहने की हल्की आवाज। इसका बालन के भ्रंश कर भर शर आदि थे जिनसे हजारों शब्द सब भाषाओं में बन गए।

क्च— कीचड़ में पाँव पड़ने से उत्पन्न आवाज हरी टहनी के टूटने या चाटने की आवाज। कचरा कीचड़ कछार कछुआ आदि अनेक शब्द।

कर— रगड़ घान या किसी चीज के फटने की आवाज।

कुर— पशु के गले से फूटने वाली आवाज या सूखी चीज सरसने की आवाज।— मुरगा मुराना मुर, कुरकुरा।

बुट—पाणी पीत समय गल स निःश्लन की जावाज, घूट, गटवता गु गुडी ।

चट—चिपनी हृद चीजा की अलग हान की आवाज लकडिया क जलन की जावाज भुलायम चीज के गिरन की जावाज ।

चप—किसी लससार चीज स उगला या काई चीज चिपकने पर अलग हान की जावाज जस चिपचिपा चिष्पी, चप्पन चपी, चूमना ।

पज—पायलो चीज जसे मुह स एकाएक निःश्लन वाली जावाज । जस भग, पी बकना वाक ।

पर—पत्ती पख को पकडन की आवाज ।

प्राकृत सस्कृत स पहल बनी हृइ (प्राक् + कृत) है । नमिसाधु ने काव्या चकार का टीका म प्राकृत को जनता का वह स्वाभाविक बचन व्यापार माना है जिसम व्याकरण के नियमों की पाबंदी नहीं होती । वाक्पतिराज न गजडबहो म प्राकृत को समस्त भाषाओं का उद्गम तथा गतय स्थान माना है ।

प्राकृत म सस्कृत के तत्सम शब्द बहुत कम ह अधिकतर तद्भव और दशज शब्द ह । प्राकृत बोलों बहुत पहल स थी पर भाषा के रूप म बौद्ध और जन काल म उभरी । पण्डिताऊ प्राकृत सबसे अधिक सातवाहन काल म फूली फरी ।

प्राकृत शब्द का प्रयोग जनभाषा के जथ म भी हुआ है— प्राकृतजनाना भाषा प्राकृतम् । सस्कृत का जथ है शुद्ध का हृई मजी हृई भाषा । प्रथम यह उठता है कि किसको शुद्ध किया गया किस भाषा को माजा गया ? प्रकट है कि पाणिनि की सस्कृत स पहल कोई जटपती सम्मिथित अनकरूपा विवृतिबहुता भाषा बनी जाती थी । उसी का सस्कार और स्थिरीकरण हुआ ता सस्कृत नाम पडा । साहित्य भाषा किसी लोक भाषा के ही विकसित रूप स बनती है । प्राकृत लारुभाषा थी सस्कृत देवभाषा बनी । बद म जनक प्राकृतिक जीर प्राकृत शब्द आर प्रयोग मिलते है । पाणिनि न भी जनक जनभाषाओं का उल्लेख किया है ।¹

समीकरण का यह सिद्धांत आय भाषा म तबस देखा जा सकता है, जबस बर्दिक का सम्पक मध्य प्रश्न स हुआ । वेद म दूढभ ($\sqrt{\text{दुदभ}}$) उच्छ्रेक ($\sqrt{\text{उस्र}}$) आत्ति रूप, एव सस्कृत म उभ्र ($\sqrt{\text{उद्ग उज्जहाति}}$), बुट्टयति ($\sqrt{\text{कनति}}$) कदति ($\sqrt{\text{कदति}}$) टगति ($\sqrt{\text{टवलति}}$) पठ ($\sqrt{\text{प्रघ}}$), शुभ ($\sqrt{\text{शुभ्र}}$) कोट ($\sqrt{\text{कोष्ट}}$) केवट ($\sqrt{\text{वदिक कवत}}$) सूर ($\sqrt{\text{सूय}}$) लाछन ($\sqrt{\text{लक्षण}}$) पुत्तल ($\sqrt{\text{पुत्तल}}$) नापित ($\sqrt{\text{स्नापित}}$) पश्यति ($\sqrt{\text{स्पश्यति}}$ स्पष्ट म यह रूप प्रकट है) तायु ($\sqrt{\text{स्तायु}}$), नल्ल ($\sqrt{\text{नल्ल}}$) फन ($\sqrt{\text{स्फल}}$), भट्ट ($\sqrt{\text{भत}}$) इत्यादि बहुत स शब्द मध्यदशीय प्राकृत प्रवृत्ति के कारण बन ह ।²

1 टा हरेव बाहरी भाषा का इतिहास हिन्दी साहित्य प्रथम खण्ड में पृष्ठ 141

2 हिन्दी साहित्य प्रथम खण्ड में डॉ. हरेव बाहरी का भाषा का इतिहास पृष्ठ 145

संस्कृत म प्राकृत के प्रभाव के फलस्वरूप कुछ निम्नलिखित गण — म्नाय (√सघायम) त्ति (√धित) अह (अघ) मह (मघ)। (यही, पृष्ठ १५६)

वदिक भाषा

वदिक भाषा का जाप भाषा कहा जाता है मगना दूमरा नाम छद् की भाषा भी था। जाप भाषा शब्द अपन जाप म बोल सायक है। य सामाय जना का भाषा न थी ऋषिपा की भाषा थी। य उन लागा की भाषा थी जा देवताजा क सम्पक म हान का दावा करत थ और मत्र बातर उनका आह्वान करत थ। यह छद् की भाषा थी। यह कविया की भाषा थी। इस शब्द और इसका गायन औपचारिकताआ म किया जाना था। उन वदिक कविया का दावा था कि व सामाय जालचाल की भाषा म मूक्त नहीं रचन। मूक्ता का भी विशेष उच्चारण स मानना चाहिए नहीं ता आशावात् थ स्यान पर अनथ हा सयता है।

वदिक भाषा का मौनिक स्वरूप क्या था इसका भी हम जानसारी नहीं है। हा सकना है अलग अलग ऋषि कुल की अलग जनग वाली हा। आज सभी विशेषण मानते हैं कि वदिक साहित्य आज हम जिम रूप म उपलब्ध है वह पम्बर्ती सम्पानन का परिणाम है। वदा की अनेक शाखाआ का तात्पर्य भी इसी म है। आज हम ऋग्वेद की शाकल भाषा का पाठ मिलता है और अय शाखाआ का विवरण। अय शाखाएँ दूमरी वालिया म इही मत्रा का अनुवाद हागा। जिस भाषा के मूक्त वेत्पास न एरत्र किण वह आज की वदिक भाषा कहानी है।

ऋग्वेद की भाषा जनभाषा नथ है वदिक वह कविया की पना लिखा की भाषा ह। जववद की भाषा उस समय की अमली जनभाषा है। तभी वह भाषा और शक्ती म विल्कुन अलग यनग है और कुछ विद्वान् उस वद नहीं मानत।

यही ऋग्वेद की मातृभाषा विद्वाना द्वारा परिष्कृत की जास संस्कृत जाली गई।

मूल निवासिया की भाषा तथा वाला का प्रभाव वद की भाषा पर साफ दिखार्नेा है। यानुप प्रातिशाख्य और शिभाकार न प का य उच्चारण माना है आर य का ज।¹

संस्कृत भाषा

उपर बताया है कि वदिक काल म अनजानेक बोन्धिपां प्रचरित थी और उनम स एक (कुरु प्रदेश और संस्कृती के जास पास के प्रदेश की बोनी)की आधार बनासर वदिक भाषा का निमाण किया गया। आज चलकर पाणिनि न जिस बोनी का आधार बनाकर जन व्याकरण की रचना की व वदिक म भिन्न थी

1. हिन्दो साहित्य का वृद्ध इतिहास प्रथम भाग पृ० 198

प्राकृत

भारतीय लक्षणकारा और वयाकरण के अनुसार प्राकृत का विकास संस्कृत से ही हुआ था। प्राकृत की परिभाषा करते हुए वे लिखते हैं कि संस्कृत ही प्रकृति है और उससे उत्पन्न होने के कारण इन भाषाओं का नाम प्राकृत पड़ा। यही आशय तमम आर तद्भव के साथ भी जुड़ा हुआ है। पर प्राकृत शब्द की ये व्याख्याएँ बहुत बाद की हैं और इनमें केवल इतना ही प्रकट होता है कि इस काल तक संस्कृत को ही जास्त और प्राचीनतम भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया गया था। इन व्याख्याकारों में नभिमाधु ही अकेले हैं जो प्राकृत को प्राकृत-कृत अर्थात् प्राचीन भाषा मानकर चलते हैं। जा भी हो हम प्राकृत के प्रभेदा में पुरा प्राकृत का भी उल्लेख पाते हैं जो प्राकृता की प्राचीनता का पोषक है।

हम इससे पूर्व देख जाते हैं कि ब्रह्मि और संस्कृत दोनों ही कृत्रिम भाषाएँ थीं जिनका आदिभाव और विकास एक विशिष्ट वग के बीच हुआ था। वैदिक काल में भी ग्राम जनता अपना साहित्य रचती रही होगी और जब तब ऐसे साहित्य को लिपिबद्ध भी किया गया होगा। ब्रह्मि साहित्य का एक अंश ऐसा है जो ब्रह्मदतिया पर आधारित लगता है और इसका छात लौकिक कथाएँ रही प्रतीत होती हैं। पौराणिक साहित्य का कुछ अंश तो निश्चित रूप से बोलिया में रचित रहा हो सकता है। प्राकृत भाषाओं का ब्रह्मि से कई दृष्टियों में साम्य भी हमकी पूर्णता करता है। जत यह कहना समीचीन नहीं लगता कि प्राकृत का विकास संस्कृत से या ब्रह्मि से हुआ अपितु वह उन बोलियाँ में से ही किसी एक का विकास था जिनका आधार मानकर ब्रह्मि और संस्कृत का विकास हुआ था। यदि ब्रह्मि काल ही प्राकृता का परवर्ती प्राकृता से कोई स्पष्ट अलगवाव रहा हो सकता है तो इस विशेष अर्थ में कि प्राचीन प्राकृत बोलियाँ सही अर्थ में जन बोलियाँ का प्रतिनिधित्व करती रही होगी जबकि परवर्ती काल में वे साहित्यिक महत्त्वाकांक्षाओं से ग्रस्त और इसलिए विह्वलित जाती चली गई।

संस्कृत को प्रकृति मानना एक बौद्धिक खीचता का परिणाम है। प्राकृत नाम से इतना स्पष्ट है कि यह नाम संस्कृत के विकास के बाद पड़ा था और इसका सत्य संस्कृत का जन-बोलियाँ से भेद प्रकट करना था। प्राकृत या प्रकृति शब्द से इस शब्द की व्युत्पत्ति यह प्रकट करता है कि यह सामान्य या अशिथिल जन समाज की भाषा थी जिनसे संस्कृत विशिष्ट वगकी, विशिष्ट प्रयोजन से निर्मित भाषा।

अपभ्रंश

अपभ्रंश शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग पतञ्जलि द्वारा अपना महाभाष्य में किया गया है जहाँ वह एक ही शब्द के जनकान्त अपभ्रंश की बात करते हैं और यहाँ उनका अभिप्राय प्रोनिया में पाए जाने वाले रूपों से है। जब तब प्राकृत भाषाएँ साहित्यिक रचनाओं की भाषा बनी हुईं या तब तक अपभ्रंश शब्द बोलियों

के लिए प्रयुक्त होता था। प्राकृत वैयाकरण न जब तब अपभ्रंश की विभाषाओं का उल्लेख किया है और यहाँ तो उनका स्पष्ट मन वाजिया स है। परन्तु इस प्रकार के वर्गीकरण में भी उनकी दृष्टि बहुत सुलभी हुई नहीं प्रतीत होती। इस विषय में पिशल लिखत है “माकण्ड्य अपनी पुस्तक के (पन्ना २) एक उद्धरण में आभीरा का भाषा को विभाषाओं में गिनता है और साथ ही उस अपभ्रंश भाषाओं की पत्ति में भी गिनता है। उसने पाञ्चाल मालव गौण व्रीड कालिंग्य काण्यक द्राविड गुजरात आदि छद्म नाम प्रकार की भाषाओं का उल्लेख किया है। उसके अनुसार अपभ्रंश भाषाओं का तात्पर्य जनता की बोलियाँ से है भले ही वे आर्य या अनाय युत्पत्ति की हों। हमें मन के विरुद्ध रामनक वागाश यह लिप्यता है कि विभाषाओं को अपभ्रंश नाम से न कहना चाहिए विशेषकर उस दशा में जब कि ये नाटक आदि में काम में लाए जाते। अपभ्रंश तो वे भाषाएँ हैं जो जनता द्वारा वास्तव में बोली जाती नहीं होती।

जो भाषा ही अपभ्रंश साहित्य में उपलब्ध भाषा जनता की बोलचाल की भाषा नहीं रह जाती वह उस वर्गीकरण में भी स्पष्ट है जिसमें बौद्धियाँ बोलियाँ को तीन चार श्रेणियों में रूपा लिया गया है। उदाहरण के लिए माकण्ड्य शाकरी चाण्डाली शायरा आभीरिकी आदि सत्ताइस प्रकार की अपभ्रंशों को केवल तीन वर्गों—नागर, ब्राह्मण और उपनागर में समाहित कर देते हैं। उन पुस्तकीय अपभ्रंश एक कृत्रिम भाषा है।

तमिल

तमिल पुराणा में लिखा है कि तमिल भाषा का निर्माण भगवान् शिव के द्वारा किया गया था और उतारने ही अगस्त्य मुनिको तमिल व्याकरण का उपदेश दिया। पर यह तो किंवदन्ती मात्र है। इससे इतना ही बात पता है कि अनात काल से तमिल भाषा इस देश में प्रचलित है और यहाँ ही वह मूल भाषा है।

तमिल के कुछ शब्द संस्कृत में भी मिलते हैं। त्रिशप एम० काल्टवेल ने एस शब्दों की एक लम्बी सूची दी है जो उनके मतानुसार तमिल से संस्कृत में गए हैं। उनमें से कुछ शब्द ये हैं—अक्का अत्त जम्मा कुट्टि काट्टे पट्टणय नीर मीन आदि।

तमिल में प्रायः शब्द के अन्त में आ की ध्वनि आने पर आ का ए हो जाता है। जैसे माला का माल गंगा का गग सोना का सीद आदि। प्रायः संस्कृत के जाकारात शब्दों का उच्चारण इस तरह होता है।

ऐसे संस्कृत शब्द जब तमिल में जाते हैं जो तमिल की प्रवृत्ति के विरुद्ध होते हैं या जिनका आरम्भ 'ल' या 'र' अक्षर में होता है जो तमिल में निषिद्ध माने जाते हैं तो इनके आगे स्वर लगा दिया जाता है जैसे रत्न रामन त्रक्षमण आदि शब्द तमिल में इरत्तिनम इरामन एलक्षुमणन आदि निचे जाते हैं। क्या

क्या रावण भी इरवण (राजा) इसी प्रकार हा गया ।

हिंदी में आधे स के पहले इ वाला जाता है जैसे स्कून स्कट स्टेशन स्थिर जादि । यह मस्कृत या पजाबी और हरियाणवी में नहीं है । पजाबी हरियाणवी में वह पूरा स बोला जाता है या स गायत्र हा जाता है जैसे सदल सकूल मकट, या फिर टम्सण आदि । क्या यह हिन्दी और तमिल का पुरा प्राकृत से निकलना दिखाना है ।

लिपि की अपूर्णता, सधिया की विकटता और क्रिया के रूपा में अनियमितता के कारण तमिल भाषा सीखन में कठिन और पठन में दुसह हो जाती है । भाषा जाने बिना तमिल पुस्तक पढ़ना कठिन है । जिस तरह उड़ या अग्नेत्री पठने के लिए शब्द के साथ पूर्व परिचय की जरूरत है, उसी तरह तमिल पढ़ने के लिए भी भाषा की जानकारी और तीव्र अभ्यास की आवश्यकता है । तमिल की ध्वनि भी हिन्दी की ध्वनि से भिन्न है । तमिल शब्द का जय मीठा है । तमिल लोग अपनी भाषा को बहुत मीठा मानते हैं पर द्विताक्षरो की प्रचुरता के कारण अनभ्यस्त कानों को तमिल भाषा कठोर प्रतीत होता है ।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि तमिल और संस्कृत का सम्बन्ध जति प्राचीन काल से है और मध्यम-काल के साहित्य में भी संस्कृत में शब्द पाये जाते हैं । कुछ विद्वानों की राय है कि संस्कृत भी द्रविड भाषा में प्रभावित हुई है और वस्तु संस्कृत के बाद, भारतवर्ष में आने के बाद संस्कृत का जो रूप विकसित हुआ है उस पर द्रविड भाषा का प्रभाव है । उनका ख्याल है कि आर्य लोग जब भारत के पश्चिमोत्तर प्रांत में आये तब वहां उनको एक विकसित संस्कृति मिली जो द्रविड संस्कृति थी । उसके सम्पर्क में आने के बाद ही संस्कृत भाषा का विकास हुआ । इसलिये उस पर द्रविड भाषाओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था । श्री पी टी श्रीनिवास अय्यंगर का कथन है कि प्राचीन काल में भारत के निवासियों के उच्चारण भी बदल गये और संस्कृत के व्याकरण में भी थोड़ा बहुत परिवर्तन हुआ । प्राप्तर रीज डेविड का भी कथन है कि प्राचीन भारत में द्रविड भाषाओं ने वदिक संस्कृति को बहुत प्रभावित किया जिसके कारण उसके उच्चारण शब्दावली ध्वनि वनावट मुहावरे जादि में बहुत अंतर आ गया । द्रविड भाषाओं का संस्कृत पर यह प्रभाव शताब्दिया तक जारी रहा । प्राप्तर गुन्ट ने लिखा है कि द्रविड भाषा को अनेक धातुओं को संस्कृत में आत्मसात् कर लिया है ।

अभी तक भाषाविज्ञानियों का ध्यान द्रविड और जायपरिवार की भाषाओं की तुलना की ओर नहीं गया है । आर्य परिवार की भाषाओं की तुलना द्रविड भाषाओं से करने से अनेक रहस्यों का उद्घाटन हो सकता है । हम देखते हैं कि यद्यपि हिन्दी, मराठी बंगला, गुजराती आदि भाषाएँ संस्कृत में सम्बन्ध रखती हैं परंतु उनकी वाक्य रचना व्याकरण, मुहावरे प्रयोग क्रिया के रूप आदि संस्कृत

की अपना नवि भाषाआ म अधिा मित्त-जुन है । तमिऱ भाषा क तिा वास का नानुवा यि हिनी म तिा जात ता व पूर पूर पुड डारता । दमग वा हाता है ति िनी वगता मशडी जाि की वास ररना-मडनि द्रविऱ भाषाआ म मित्ती जुनो है । ताा पन्ियाग की भाषाआ क विराम म तिा मूऱ भाषा का हाव अवप र्ता गता जिगत जाय और द्रविऱ दाना पन्ियाग की भाषाआ पर जाना प्रभाव जाता हाता । माहनजाऱा और ऱट्पा की गुर्न र वा व साऱिा हा चुता है ति आयो र भागवत म आत र पूर हो भाग्न म गत विरमिा मश्टनि वनमात थो । आणव व बूऱा सभप है ति उग मश्टनि र वा वा आत वात जायो की भाषा व मश्टनि का न् िा प्रतात वा हा । ढों हाऱ र वर विरार प्राऱ तिा है ति ऱिा की वनमान भाषाआ की तमनाथी वीद भाषा गाऱ भारतवप म प्ररतिा थो और वहा भागवत की तमाम भाषाआ वा जाधार बना । श्री वी टी श्रीनिवाऱ ज्येश्ठर का विराम है ति उत्तर भाग्न वी गीतीय वही जान वायी जाय-परिवारकी भाषाण हिनी वगता उन्िया जाि मश्टन म अवधिऱ प्रभाविा प्ररतिात प्रायो द्रविड या द्रविड जसो तिा भाषा वा ही रूप है ।

तमिऱ का जा विराम हुआ है र वीद और जन अनुपाधिया र तारण हुआ । वे िगिगमन म विश्वाग वरन थ और जन आऱायो का िा जनता वा उमकी थोती म र म विश्वास करते थ । महावीर और बुड व मरन क उपरानत उऱाने भाग्न म फता आरम्भ कर िया था । दऱिण म उनका एतना जल्ता फतना हा वात वा छोटर है ति वहा उऱाने अपन जम आऱमी पाए और अपनी वाली र मित्ती बानी पाऱ उच्चारण उऱात वही रहवर सीध िया । उऱान जम पाऱि अध भागधी प्राऱन द्विमिन की ऱमी प्ररार साहित्यिक तमिऱ थो । आरम्भिक वनासित सिऱण्णक्किरम् और मणिमयलई जन और वीद लघनो व प्रथ थ । यहाँ तऱ कि कुरान भी जो तमिऱ मश्टनि का प्रति िधि माना जाता है एऱ जन मिशन का नपन था । उमऱ लघन िश्वरतूर का नाम श्रीवत्तभ का र्पातर था ।¹

तमिऱ की सगम् वविता वूऱन प्रमिड है । पन्ला मूऱ सप कुदवूऱ न पहली शताऱी ईसवी म कुऱानूर म स्थापित िया था । यह नगर उस समय पाटलि—मगध राय की राजधानी का धानक—वहलाता था । उसवे गीत आगम् और पुरम् म विभाजित हैं जो गीता शऱ द्रविड नहा हैं वऱिा प्राऱत म निवचित हैं । उन गीता और प्राऱत की गाथाआ म बहुत समानता है । वऱन का नाटयीय ढग में वऱ और सखी क जान माने पात्र भी दोना म एकगे हैं । कुछ वविता के नाम भी प्राऱत की गाथा सप्तशती वाले ही हैं ।

1. के एऱ श्रीनिवाऱन

‘भाषाई रूप में भी प्राकृत का तमिळ पर प्रभाव स्पष्ट है जिस नियम से माता तमिळ में मालइ हो जाता है वह प्राकृत का है। यह भी कहा जा सकता है कि तमिळ प्रभाव है प्राकृत पर ? लेकिन इस सिद्धांत के लिए कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है।’¹

भेगस्थनीज ने इण्डिका में लिखा है कि चन्द्रगुप्त के राज्य में पाण्ड्य राजा का दून था। बाद में पाण्ड्य राजा की सभा में पांच समिति होती थी और वे त्रिकुल मौर्य सभा के प्रतिरूप थी— जनता, सत वय ज्योतिषी और अमाय की। उनके नाम भी एक ही थे —

मौर्य (प्राकृत)— माने पारपार मरुत्त निमित्त, अमच ।

पाण्ड्य (तमिळ)— मासनम् पारपार, मरुत्तर निमित्तर अमचर ।

तमिळ ने अपने इस ऋण को मध्य युग में बखूबी लौटाया जब द्रविड देश में उपजी भक्ति ने सार भारत पर विजय प्राप्त की।

लिपि

ब्राह्मी लिपि अतएव गत भारत की सबसे प्राचीन और सबसे प्रसिद्ध लिपि है। सिन्धु लिपि पढ़ली जाते पर या खुदाई में अत्यंत प्रमाण मिलने तक यह स्थिति ठीक है। इस नाम का सद्भव हम अनेक स्त्रोत्रों पर पाते हैं। ललितविस्तार बाद के बौद्ध ग्रंथ में, ६४ लिपियों का वर्णन है जिनमें ब्राह्मी का नाम सबसे ऊपर है। जन पणवना और समवायाग सुत्ता में १८ लिपियों का वर्णन है, उनमें भी ब्राह्मी लिपि सबसे प्रमुख है। भगवती सूत्र का आरम्भ दम्भिलिपि के अतिवादन से होता है। लगभग ६६८ ई. में लिखा चीनी महाकाव्य फन-यान लु लिन लिपियों का वर्णन करते हुए ब्राह्मी का प्रथम स्थान देता है और बताता है कि ब्राह्मी बाएँ से दाएँ का लिपि जानी है।

ब्राह्मी लिपि का उद्भव कब हुआ, इस पर मुख्यतया दो राय हैं। कुछ दार्शनिकों का मत है कि ऐतिहासिक विज्ञान मानते हैं और कुछ इस अणक द्वारा निर्मित लिपि मानते हैं। यह अवश्य है कि जब तक खुदाई में अत्यंत प्रमाण न मिले आज तक के सबसे पुराने ब्राह्मी अभिलेख अशोक के लिये हैं। अशोक ने चार लिपियों में अपने अभिलेख सृष्टाएँ थे जो विभिन्न प्रदेशों में पढ़े जाते थे। इस विचार में विस्तार में जान की आवश्यकता नहीं है। हम यह स्पष्ट है कि इस लिपि का क्या नाम में कुछ संशय है।

भारतीय परम्पराएँ एकमात्र ब्राह्मी लिपि को ब्रह्मा द्वारा आविष्कृत मानती हैं। यह दृष्टिकोण गार्हपत्य्य मनु पर सृष्टि के धार्मिक मुद्दानों के माता-पिता और ऊपर लिखे तीन समवायाग सुत्त और पणवना सुत्त का है।

लगभग १८० ई के बादामी में प्रशिक्षित ब्रह्मा में भी इस कहानी को लिखलाया गया है जिसमें देवता अपने हाथ में ताण्डव का प्रय लिए बैठ हैं। चीनी महादेश पत्रवान गुलिन में लिखा है कि लिखन का आविष्कार तीन देवताओं में किया था। उनमें पहले पत्रवान ब्रह्मा थे जिन्होंने ब्राह्मी का आविष्कार किया। दूसरे परोप्टी के आविष्कारक खराष्ट्र थे जो दाएँ से बाएँ को लिखी जाती थी। ये दोनों देवता भारत के थे। तीसरी लिपि तम्र की थी जो ऊपर से नीचे लिखी जाती थी। यह चीन में आविष्कृत हुई थी।

इस पुस्तक में हम अत्रय दिखा चुके हैं कि यक्ष का मूल जनजाति नाम ग्रामा था जिसका संस्कृतकरण ब्रह्मा हुआ। हमारे साहित्य, शिल्प आदि में सब ज्ञान का मूल ब्रह्मा को बताया गया है। यह कहा तब ठीक है अभी निश्चय में नहीं कहा जा सकता कि नु लिपि के बारे में एक तथ्य सत्तार की समस्त लिपिशा पर लागू होता है। ऋषि की वाणी आश्रमा में रचकर एक से दूसरे को दी जा सकती है पर लिपि का प्रचलन व्यापार के साथ सम्बद्ध है। आज भी एक कहावत अत्यंत प्रचलित है—

पहले लिख और पीछे ले । मूल पडे कागज से न ।

जहाँ जनसमुदाय का आपस में सम्बन्ध जुड़ता है वहाँ लिखन की आवश्यकता अनुभव होती है। यक्ष व्यापारी थे और उन्हें हिसाब रखन की जरूरत महसूस हुई जो आदिम अवस्था में विकसित होती जाती जगान की ब्राह्मी लिपि में दिखाई देती है।

इसका प्रमाण हम महाभारत में मिलता है। ८००० श्लोक के जय का लिखवाते समय वेत्यास को लिपिकार गणेश की सहायता लनी पड़ी थी। प्रयक्ष है उनका आश्रम में कार्य जाता रहा था और उन्होंने यक्ष लिपिकाग को दूटा। इस तथ्य को अल्बरनी ने भी लिखा है 'हिंदुओं का लिखन खो गया था और भुला दिया गया था। लेकिन फिर पराशर के पुत्र, यास ने देवता की कृपा से ५० अक्षरों की वणमाला का दूट निकारा।'^१

विनासवादी दृष्टिकोण का दूसरा नाम ही ऐतिहासिक दृष्टिकोण है यह हम शिक्षा के प्रत्येक अंग का सीपने पर पाते हैं चाहे वह जीवशास्त्र का प्राणी हो या राजनीति शास्त्र का राज्य। फिर लिपि का इतिहास दूटने हुए हम उस किसी का गटा हुआ मानें यह जचता नहीं। डेविट टिरिजर आइ जे नेल्स जीर अनक विद्वानों ने सत्तार का लिपियों के एक दिशा में विकास के सिद्धांत पर प्रकाश डाला है। प्रा० गेट्टर कहते हैं कि आरम्भ से पूण विकास तक किसी भी लिपि को शक्तिशाली अक्षर-अक्षर और वणानुक्रम अक्षर की आवश्यक अवस्थाओं से गुजरना पडता है। यही हमारे उत्तर दक्षिण ग्रामा में वर्णित है।

कौरव प्रतीप के समय दक्षिण पाचाल का महान् राजा ब्रह्मदत्त था। उसका एक मंत्री कण्डरीक पाचात¹ और दूसरा सुवालक वाभ्रव्य पाचान था। तीना जगीपव्य मुनि के शिष्य थे। ब्रह्मदत्त ने जगीपव्य ऋषि से योग विद्या प्राप्त कर, यागत्रय नामक ग्रन्थ का निर्माण किया था। यह वक्शास्त्रविद् था। इमने अपववेत् तथा कण्डरीक पाचाल ने सामवेत् के ब्रमपाठ की रचना की थी।

सुवालक वाभ्रव्य को बहवृच एवं आचाय की उपाधियाँ प्राप्त थीं।² इसने ऋग्वेत् की शिक्षा तमार करके उसका प्रचार किया। इसने ऋक-सहिता का ब्रम पाठ पहले पहल निश्चित किया।³ ऋक संहिता के ब्रम पाठ की रचना का श्रेय बर्दिक ग्रन्थ में भी इसे लिया गया है।⁴ पाणिनि ने भी वाभ्रव्य तथा इसके द्वारा रचित ब्रम का निर्देश किया है।⁵ ध्वनिया का घानवीन पहले चल रही थी, इसने उनके सिद्धांत निश्चित कर लिये। दूसरे शास्त्र में ब्राह्मी वणमाला महाभारत युद्ध से आठ पीढ़ी पूर्व लगभग १२५० ईसा पूर्व में सुवालक वाभ्रव्य द्वारा पूरा की गई। इसी कारण इमने बाद सब काना पान चल आत सूक्ता और गीता और सुभाषिता की संहिताओं की लहर चल पड़ी। उन संहिताओं का अन्तिम एकत्रीकरण तथा सस्करण वेदव्यास ने किया।

पाचान राज्य हिमालय की तलहटी में पांच जनजातियां न मिनकर बनाया था और यह महाभारत में पूर्व उत्तर भारत का प्रमुख राज्य था। क्या वे जनजातियाँ यक्षा की थीं आज की हमारी जानकारी में कहना दूभर है।

पाचालराज द्रुपद ने अपनी पुत्री शिखण्डिनी को लघन और शिल्प कला की शिक्षा मिलवाई थी।⁶ इसने इस बात को ध्यान मिलाता है कि ब्राह्मी लिपि को अन्तिम रूप पाचाल देश में ही मिला था और वहाँ लघन की शिक्षा मिलती थी।

लिपि अपववेत् के काल तक सम्भवतः बन चुकी थी। अपववेद में जुए का हिसाब रखा जाने (लिखित) का सबेत् है।⁷ बर्दिक साहित्य में ही परोक्ष प्रमाण केवल लघन का ही नहीं लिखित पुस्तकों का भी है। अपववेद १६ ७२ में वेद को कोप अर्थान् डिप्ति में निवालन और अन्तर रखने का वणन है। इसी प्रकार एतरेय जारण्यक में (५ ३ २) लिखा है कि शिष्य को पीढ़ भुक्कर या आन भुक्कर शिक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिए न मास खाने के उपरांत न रक्त देखने के

1 हरिवंश 1 0 13 मत्स्य पुराण 21 25 हरिवंश 1 23 21-22

2 हरिवंश 1 23 21 मत्स्य पुराण 20 24 21 30

3 पद्म पातान खंड 10 हरिवंश 1 24 32 महाभारत शांति पर्व 310 17-38

4 ऋग्वेद प्रातिहार्य 11 33

5 पाणिनि सूत्र 4 1 106 2 61

6 महाभारत उद्योग पर्व 189 1 13

7 भारतीय प्राचीन लिपिमाला पृष्ठ 12

पश्चात् न माला पहनने के उपरांत, न लिखने के पश्चात् न लिखित मिटान व
 दान ।

कालिदास न लिखा है कि रघु न लिखन की कला सीखन के बान साहित्य
 के सागर म प्रवेश किया ।¹

पाणिनि ने अष्टाध्यायी म लिपि और लिपिकार का बणन किया है, साथ
 ही गामा के काना म अक डानने की प्रथा (गिनती के लिए) का भी बणन किया
 है ।² स्वयं पाणिनि की अष्टाध्याया स पता चलता है कि सहस्रा शब्दों का
 चयन और उनके अथ ढ्ढना गिना लिपि के सम्भव होना नामुमकिन है । लौकिक
 और वैदिक साहित्य म फले शब्दा को छांटना विभिन्न स्थला, दश प्रदश से उनके
 अथ एकर बना बिना लिपि व असम्भव था । एर देनी लिपि हाने व कारण ही
 पाणिनि ने खराष्टा को यवनानी लिपि कहा है ।³

लिखने व लिए भूत पत्र का उदलख भी आरम्भ स पाया जाता है यह भी
 अशोक से पहले लिपि विद्यमान हाने का प्रमाण है । भूज-पत्र हिमालय म उँचाई
 पर मिलते हैं इससे भी यक्षा द्वारा ब्राह्मी लिपि व क्रमिक विकास क सिद्धांत
 को बल मिलता है । बाद म तो सिन्दर के जनरल नियरक्स ने जो पजाब म
 उसके साथ था लिखा है कि "इस प्रदेश व निवासी कपास और फटे कपडों से
 कागज बनाने की कला जानते थे । दूसर ग्रीक लेखक कटियस के अनुसार कुछ
 वृक्षों की कोमल अदरनी त्वचा लिखन की सामग्री के रूप म प्रयुक्त होती थी ।
 अथर्ववेद के जुए का हिसाब रखना तथा पाणिनि के गामा के कानों म अक
 डालना भी व्यापार की आर इगित करता है ।

जातका म निजी और सरकारी पत्राचार शासकीय सूचनाएँ पारिवारिक
 समाचार ऋण-पत्र जादि का इफरात से बणन है । बौद्ध और जन सूत्रा क
 बणन म इसकी प्राचीनता म कोई सन्दह नहीं है । भगवती सूत्र तो नमो बम्भिए
 लिविए अभिवादन स आरम्भ होता है ।

ब्राह्मी लिपि और तमिळ

एडवड टामस और कुछ अय विद्वान् मानते है कि ब्राह्मी लिपि द्रविडा की
 दन है जा भारत क मूल निवासी थे और वह बान म आर्यों द्वारा अपना ली गई ।
 किन्तु आज यह सिद्धांत सबको जमाय हो गया है ।

टी एन सुब्रह्मण्यम् को इस सिद्धांत पर कट्टर विश्वास है कि ब्राह्मी लिपि
 तमिळ भाषा के लिए आविष्कार की गई थी जो बाद म प्राकृत के लिए अपना ली

1 रघुवश 3 28

2 बामुदेव शरण अग्रवाल पाणिनिकालीन भारत पृ० 306

3 पाणिनि 4 1 49 और उस पर कात्यायन का वार्तिक

गर्दं क्याकि प्राकृत जीर तमिळ म जनक समान विशेषताएँ हैं

- (i) भाषा और व्याकरण की सरलता
- (ii) केवल दो, एकवचन और बहुवचन की उपस्थिति
- (iii) स्वर ऋ, ल ऐ और औ का अप्रचलन
- (iv) ए और आ के ह्रस्व और दीर्घ आकार
- (v) प और ष का अप्रचलन जीर स से वाम चर्त्ताना
- (vi) ङ की उपस्थिति ।

यह घाडे के आग गाडी रघन का प्रश्न है । ब्राह्मी लिपि वसे पहले उत्तरी भारत म हुआ है और प्राकृत क लिए हुआ । दक्षिण म लेए वृत्त ब्राह्मण म हुआ । यदि सुब्रह्मण्यम् के तक मान लिए जायें तब भी प्राकृत के तमिळ पर प्रभाव स यह समानता आई है जिस तक को मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ ।

तमिल और देवनागरी वणमाला और अक्षरों के बीच बहुत सी बातें एक दूसर स मिलनी जुलती दृष्टिगोचर हानी हैं । तमिळ और नागरी वणमालाआ की परस्पर तुलना करन पर दोना की वणमालाआ म भेद होते हुए भी कुछ विलक्षण समानता देघन म आती है जिससे यह प्रतीत होता है कि या तो इन दोना वणमालाआ का सोन एक ही रहा होगा (ब्राह्मी लिपि) या दोना म जादान प्रदान हुआ होगा । समेटिक या पारचात्य देशा की वणमालाआ से भारत की सभी भाषाआ की वणमाला भिन्न है चाहे वे द्रविड पारवार की हा या आर्य-परिवार की । तमिळ और देवनागरी म निम्नलिखित समानताएँ देखने को मिलती हैं —

१ देवनागरी और तमिळ दोना म स्वरा का क्रम समान है । यद्यपि तमिळ और उस परिवार की भाषाआ म ह्रस्व एँ जीर आ अक्षर भी पाये जाते हैं परंतु अक्षरा के क्रम म कोई अन्तर नहीं पाया जाता ।

२ यद्यपि तमिळ म कवारादि वर्णों म बीच क तीन अक्षर नहीं होते तो भी जो अक्षर वतमान हैं उनका क्रम भी देवनागरी वणमाला के ही अनुरूप है ।

३ य, र ल व जादि वर्णों का भी वही क्रम है जो देवनागरी म है । हाँ, स, श, ष ह आदि अक्षर तमिळ वणमाला म नहीं है ।

४ स्वरचिह्ना की परिपाटी भी देवनागरी म ही मिलती जुलती है । युरोपीय और समेटिक भाषाआ म अक्षरही स्वर का काम दते हैं परंतु भारतीय भाषाआ म स्वरचिह्न अलग हात हैं यही नियम तमिळ क लिय भी लागू है ।

५ तमिळ के अनेक अक्षरा क रूप ब्राह्मी स मिलत जुलते हैं । इसी आधार पर अनेक विद्वाना न यह मत प्रकट रिया है कि तमिळ लिपि भा ब्राह्मी लिपि क ही आधार पर बनाई गई है ।¹

लिपि क वियघन स इस पुस्तक के नियम पर बन मिलता है कि यथा की

भाषा मूल प्राकृत थी जिसने लिए व्यापार और जन सम्पर्क के कारण ब्राह्मी लिपि का विकास हुआ। यह भाषा यथा राशसा और अथ किरात कुलो क साथ दण्डि गई। यथा, रथ, वानर और ऋक्ष जीर स्थानीय जनजातिया की बालियों के सम्पर्क स यह तमिल जादि द्रविड भाषाआ म विनसित हुई। उधर उत्तर म मून प्राकृत वा अनेक स्थानीय जीर वाहन स आर्द्र देव, असुर आदि जनजातिया की बोलिया ने सम्मिश्रण हुआ और उन सब वा परिष्कार कर सस्कृत भाषा वा जन्म हुआ। सस्कृत पण्डिताऊ भाषा रही जिसे पाणिनि न व्याकरण लिखकर स्थिर किया, किन्तु आम जनता मे पुरानी प्राकृत चलती रही विशेषकर हिमालय तराई के गंगा-यमुना क मदान म। दसा भाषा म महावीर जीर बुद्ध न अपन प्रवचन दिए जिहे ग्रन्थ म सम्पादित करन के लिए पालि अधमागधी और परिष्कृत प्राकृत का विकास हुआ जो देशज शब्द सस्कृत पर निभर भाषाए थी। यह पण्डिताऊ प्राकृत जस की तस सस्कृत म बली जाने वागा सातवाहन काल म सब से अधिक फली फूली।

जब प्राकृत भी सुसस्कृत की जाकर पढा लिया की भाषा सस्कृत क समान बन गई ता जो देसी भाषा बोलन की रह गई उसे अपभ्रंश कहा गया।

सस्कृत को 'दधी वाक' मानन वाल वयाकरण दशी भाषा वा अष्ट अपभ्रष्ट, विगडल इत्यादि कहत रह। उधर अपभ्रंश के पुजारी लेखक उस अपभ्रंश या अपभ्रष्ट कहन के स्थान पर देसी भाषा कहना ठीक समझते व। विद्यापति न कीर्तिलता म कहा है सस्कृत वाणी बहुता की अच्छी नहीं लगती। प्राकृत रस वा मम नहीं प्राप्त करती। देसी वचन सबसे मीठे हात है। इसीलिए मैं उसी अपभ्रंश (अवहट्ट) म क्या कहता हूँ। इहा लेखका के द्वारा मूल प्राकृत आज की तथाकथित जायभाषाआ हिंदी बगानी आदि म फूली फनी।

गिनती

अग्नेजा मे आर ससार की जय भाषाआ म द्वितीय महायुद्ध स पहन गिनता द्काई दहाई सक्डा हजार पर समाप्त हो जाती वा। उसस जाग चलता थी दस हजार और सौ हजार। कुछ अग्रज भारतीय गिनती की नमन करके लाख आर करोड भी अग्नेजी लिपि म लिखने लग थ। द्वितीय महायुद्ध के बाद विनाय म विस्फोट जीर तांत्र प्रगति हाने स गिनती म मिलियन बिलियन और ट्रिलियन भी सम्मिलित हो गए।

इधर हिंदी की गिनती म एक क जाग जठारह बिंदुआ तक की गिनती है। आज की अग्नेजी प्रभावित भारतीय शिक्षा म नहा मैं सन् 1931 की बात करता हूँ जब मेरी प्रथम वणमाला की पुस्तक म यह गिनती था थी और हर वच्चे वा याद कराई जाती थी। यह मुझे आज तक भली भांति याद है—इकाई

दहाई सक्का, हजार, दस हजार, लाख, दस लाख, करोड़, दस करोड़ अरब दस अरब, खरब, दस खरब, नील, दस नील, पद्म, दस पद्म शख, महाशख ।

आज इस गिनती को याद करने की बात तो दूर रही पत्र ही आपको हसी आयेगी । आखिर इसका क्या लाभ । आजकल समार में बड़े उड़ धनपति भर पड़े हैं पर खरबपति में ऊपर नहीं, फिर इस ग्याली पुलाव का पकाने से क्या लाभ । लेकिन यह गिनती यहाँ तक पहुँची क्या ? इसकी आवश्यकता पूरी होगी अवश्य पढ़ी होगी । तभी महाशख तक गिनती पहुँची ।

कुबेर की नव निधि प्रसिद्ध है । वे हैं— पद्म महापद्म शख मन्त्र वच्छप, मुकुन्द नन्द, नील और खव । इनमें से शख पद्म नील और खव के नाम वही हैं, बाकी के आज तक जन में आते श्रात बदन गए हैं । यही नहीं इम से हर्क का विस्मृत वणन है कि कितने कोप को धन हीरे मोती को, नील बहूत है कितने का पद्म, आदि । नील पद्म, शख कुबेर के चतुर्भुज रूप के हाथा में स्थान पाए हैं । इससे प्रत्यक्ष है कि यह गिनती यक्षा न भ्रम का दी और वह एक समय प्राप्य गी, सपना या ग्याली पुलाव नहीं ।

य नौ निधि जाग ससृष्ट नानिहित्य में जल के चिह्न (symbols) है । सम्भवतः समुद्री व्यापार से यथा न इतनी दीलित एकाग्रित की थी कि १ पर उठारह विदी तक गिनना पडा और फिर दार मान कर दस शख की बजाय महाशख कह दिया ।

कुछ शब्द गिनती में पुरानी नामों के स्थान पर नये नामों के प्रयोग पर । क्या पहले भी एक दो तीन चार कह जाते थे या ये संस्कृत से हिन्दी में आए हैं ? संस्कृत में । पुरानी प्राकृत में क्या थे ? यह हम अपने एक खल से पता चलता है । खल में गिनते हैं— अक्कड बक्कड बम्बे भी, अस्मी नदने पूरे सौ । ऐसे ही ओझा वाजा का खेल है । इसमें प्रत्येक लडका हाथ की उगलिया को जमीन पर रख कर हथेली ऊपर उठा लेता है । खिलाडिया का नता सबकी हथेलिया को चारी-चारी से छूता गाता है— ओजा वाजा तीन तडोका यह पुरानी प्राकृत की गिनती है । अक्कड या अक्का एक । बक्कड या वाजा दो । तडोका तीन । बम्बे भी का अर्थ आज छो गया है । शायद लय के अनुसार नत्र और सौ होगा । बम्बे भी दस, बीस, तीस, चालिस पचास के हिमाय से तीस या नास्सी होना चाहिए था नत्र नहीं । इससे प्रत्यक्ष है कि नत्रे सौ तिसी और वाली के शब्दों से बने हैं ।

बम्बड का एक रचित्र प्रसंग है । उसकी जगह द्वितीय को दा हा गया परन्तु जाग चतानर उमन अपना स्वामित्व भाडा । दा और दस— द्वादश नहीं बारह है बीस है, बार्दस है, बत्तीस जानवे तक दो के स्थान पर द का प्रयोग हुआ है ।

१५२ यक्षो की भारत का देन

दूसर, ससृष्टत म प्रथम है और उसके साथ एन भा है। क्या यह एक जक्कड का रूप है ?

तीसरे, लक्ष से हिंदी म लाख बना है। लकिन पुराने आत्मिया स बात करो तो व लक्ष बोलेंगे। लडगे ता नहग बडे बडे लक्षपति देखे हैं। या बडे लक्षपति बने फिरत हो। यह लक्ष बसे ही है जैसे यक्ष का मून प्राकृत रूप यक्ष है।

कुछ अन्य सूत्र

भद्र और आय की तुलना

वन् म और आगे चलकर सस्कृत साहित्य म आय जातरमूचन शब्द के रूप म प्रयाग हुआ है। सस्कृत म पत्नी पति का आयपुत्र कहकर पुनारती था। यह शब्द इण्टा-यूरापियन प्रजाति की भाषाआ म पाय जान पर उस प्रजाति का आय भी कहने लगे। परन्तु ब्रह्म और सस्कृत भाषाआ म यह प्रतिष्ठित या भल यक्तिया के लिय आया है। कृष्णतु विश्वमायम् पन् म विश्व की प्रजाति बदनन को गहा कहा गया विश्व के प्रत्येक जन को भला बनाने के लिय कहा है। यह देव प्रजाति की बोली का शब्द है जिसका अर्थ प्रतिष्ठित भला आदरणीय या अन्धा व्यक्ति है।

भारतीयान न कहा था कृष्णतो विश्वमायम्। उसी स्थल पर आगे चलकर उहान कहा विश्वभद्र कुवतु। विश्व को कुलीन बनाआ अभिजात बनाओ भव्य बाओ।

इसी प्रकार का यह शब्द 'भद्र क्लासिक सस्कृत म है जो सम्भवत यक्ष भाषा (पूर्व प्राकृत) का सस्कृतीकरण है। जसा हम इतिहास और धर्म म देख चुके हैं भद्र यक्षा क राजाआ या पूज्य देवताआ के नाम का भाग है। मणिभद्र पूणभद्र आदि की पूजा आज तक भारत म होती है। शिव के प्रधान गण वीरभद्र न दम्ब का यन विध्वम किया था।

जब हनुमान राम के आन का सन्देश भरत को दते हैं ता व आयोध्या दौड़ जाने हैं और सबका सूचित करते हैं कि रामभद्र सीता महारानी और लक्ष्मण के साथ वापिस आ रहे हैं— तुलसीदास ने रामचरितमानस म लिखा है।

एक नाटक म राम के लिए रामभद्र शब्द अनेक स्थला पर आया है। कृष्ण के बड़े भाई बलराम का अर्थ नाम बलभद्र भी था श्रावण की पूणमासी को रक्षा बंधन वाले दिन उड़ीसा म वनभद्र की पूजा का पथ मनाया जाता है। साथ ही कृष्ण की बहन का नाम सुभद्रा था।

भद्र शब्द एक स्थान पर गौतम बुद्ध के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। सस्कृत म अनेक स्थलो पर यह सम्प्राधन के रूप म प्रयुक्त हुआ है। माकण्डेय पुराण की दुर्गा सप्तशती म यह प्रयोग म आया है। इसका अर्थ भी शिष्ट सभ्य और सृशिक्षित या भला करने वाला मंगल या कल्याण करने वाला है। बगाल म आज भी भद्र

लोग का बहुत प्रयोग हाता है ।

लखनऊ स चौदह मील दूर पर भदाई ग्राम एक ऊँचे टीले पर स्थित है । ग्राम म घुसने ही एक खण्डहर है जा भदेसर वाग्रा का मन्दिर कहलाता है ।

कुछ हल्के गुण वाले रद्राक्ष को भद्राक्ष कहते हैं ।

आय से उत्पन्न हुए शब्द मानक हिन्दी कोष म केवल आठ है ।¹ उधर भद्र से उत्पन्न शब्द अस्मी हैं ।² भद्र से वन दो नाम तो कृष्ण के भाइया के ह, दो कृष्ण क पुत्रा क है । भद्रवती कृष्ण की पुत्री का नाम है । भद्र-मीठ राजाजा या देवताओ के अभिषेक हाने वाले आसन को कहते हैं । भद्र काष्ठ देवदान कृष्ण का दूसरा नाम है । भद्र कुम्भ मंगल घट को कहते हैं ।

भदावर (भद्रवर) आधुनिक ग्वालियर प्रदेश का पुराना नाम था । मणिभद्र यक्ष की सबसे पुरानी मूर्ति ग्वालियर के पास पल्लम पवाया म मिली है जो प्राचीन एतिहासिक राजधानी पचावती है ।

भद्राक्ष पुराणा म लिए भूगोल म जम्बूद्वीप के नौ खण्डा या बर्षों म से एक था । यह सुमर पर्वत क पूरुब म था । यही हम यक्ष जाति किरात प्रजाति के जना का मूल पान ह । इसी बर्ष (खण्ड) म पुराणा मे भद्रा नाम की नदी बताई गई है जो गंगा की शाखा कही गई है ।

भद्र जीर भद्रानन्द संगीत की दो स्वर साधना प्रणाली ह ।

भद्र और भद्रक फलिन ज्यातिष म वृत्त को दिखलात हैं । भद्रा के छ'बीस अर्थ हैं ।

एक बडा रचिकर शब्द है भद्रास्तरण । इसका अर्थ है सिर मुडाना या मुडन । यह किस चीज की ओर इंगित करता है ?

सब स जाश्चयजनक बात तो यह है कि भद्र ने साथ भी वही घना है जा यक्षराज कुंवर या गणेश के साथ घटा है । देव अमुर प्रजाति न उन्हें पूज्य भी माना है जीर चोरा का राजा विघ्नकर्ता आदि भी कहा है । भद्र या भद्र यक्ष वाली क मूल शब्द का संस्कृतिस्तरण कर उन्होंने उसे आय के समान रूप दिया जीर जनता न उस तथा उसने अनक रूपा को दिल से जपनाया । लेकिन भद्र या भद्र का अर्थ यक्ष के बुर रूप म भी व्यवहृत किया । जस भद्र— किसी मोटा चीज क गिरने का शब्द मन्भद्र— बहुत मोटा भद्रगा— जिसका रंग पीका पड गया हा (क्या धरंग भी इसी स निकला है ?) भद्रश— खराब या बुरा देश भद्र— जपमान किसी का जपमान करना या मजाक उडना भद्रा— जिसकी बनावट म अग प्रत्यग की सापेक्षिक छाटाई बडाई का ध्यान न रखा गया हो जीर इसी लिय जो दखन म कुरूप या बढगा हो । भद्रा जश्नील और फूटड के रूप म भी

1 मानक हिन्दी कोश पन्ना सखंड पृ० 284

2 मानक हिन्दी कोश चौदा सखण्ड पृ० 193-195

प्रयुक्त हाता है ।

भद्र का प्राकृत ही भद्रुर है जो ब्राह्मणा की निम्न श्रेणी की जाति है । इस जाति व लोग फलित ज्यातिष या सामुद्रिक ज्ञान जाति की सहायता से लोग का भविष्य बताकर अपनी जीविका चलाते हैं ।

एक अन्य शब्द भद्रत है जिसका अर्थ पूजित सम्मानित सयम्न है जो बौद्ध भिक्षु का आदरगूचक शब्द है ।

भट्ट भाट, भट्टा, भट्टी भडार जादि जय मन्डा शब्द भा इसी प्रकार यक्ष जाति से अपना सम्बन्ध दर्शाते हैं ।

यथा की भद्र मणि बहून प्रसिद्ध है जो मणिभद्र यथा व पाम रहती है ।

ऊर

मरठ के पास एक गाँव में जितन हरिजन परिवार थे वे मरठ जन्म लेने लगे हुए गिने गए थे । बड़ी गरम खबर थी जिससे अपनी ओर ध्यान खींचा । गाँव ही गाँव व नाम पर ध्यान लिया ता दिमाग में घण्टी बज गई— नगला हरण । मरठ व पास भा हरण । इन्दिरा गांधी जब चित्रमगनूर में जीतकर ससद में आई थी तब पता चला था कि कुछ प्रसिद्ध ऊर स्थानों का छोड़कर और भी कोई ऊर भारत में है । मरठ के पास ही दूसरे गाँव हैं बगीर और मगौर । मुजफ्फरनगर के पास बडगौर ।

उपरोक्त उत्तर प्रश्न की राजधानी ताम्रग की बसाई कही जाती है । इस पर कुछ यह भिडाई गई कि इसका असली नाम ताम्रगवाती होगा जो त्रिगडन त्रिगडन लखाऊ रह गया । मरठ पर लिखी गई एक मराठी पुस्तक में ताम्रग नाम ताम्रनूर दिया हुआ है जो त्रिगडन पर लखाऊ था गया । यह समझ में भी बटता है । इसी तरह व अन्य नाम हैं लखनऊ के आम पाम व शहरा व बानामऊ, पापामऊ जाजमऊ डलमऊ भगऊ घाटमऊ आदि । ताम्रनूर में तम्रग द्वारा बसाई गई गांधी भी अधिष्ठित मिट्टी गता है । ताम्रग का नगर । ताम्रग ताम्र ही जबही रा जयती नाम है ताम्र मरठ व अन्य ताम्रग पर लिखा गया है ।

ताम्रग व गाँव शहर है तातपुर । उमर अमरी ताम्र की भी ताम्रग बसाई जाती है । एक गाँव है कि अमरी ने लखाऊ पर इच्छित स्थान व त्रिगडन स्थान पर अपनी गता रखी थी ताम्रग ताम्रग ताम्र व ताम्रपुर पहा जा ताम्र व त्रिगडन व तातपुर है गया । दूसरी ताम्र है कि यह तातपुर ताम्र का गाँव था जो उमरी गता रहने व कारण प्रमुखाता था गया और बाद में त्रिगडन व तातपुर हा गया । ताम्रग इस ताम्र की पुत्री इसका उमरी व गतिता में लिखी है—
Cawnpore । अमरी व अमरी आम्र वर का उमर वर लिखा है अम्र वर जो

‘जी’ को दर्शाता है। इसका पुराना नाम वीनपूर था।

वानपुर के पास मगा व तट पर प्रसिद्ध नगर विठूर बसा है जहाँ पशवा बाजीराव द्वितीय ने पूना से जलाबतन होने पर अपना निवास बनाया था। यह धार्मिक स्थल है और यहाँ के मन्दिर प्रसिद्ध हैं। उस समय विठूर वीनपूर से बड़ा नगर था। यह शताब्दिया तक अपना मूल नाम विठूर स्थिर रखने में सफल रहा परन्तु आजकल के विद्वान् टिप्पण भिन्न हैं कि इसका मूल नाम ब्रह्मावत था जो विगडकर विठूर हो गया। इसी तरह व अवध में अनवर नगर है जुगुूर (जुगुूर) मल्हूर (मल्हौर)।

यही आक्रमण विचारे विराडू(र) को भलना पडा है। उमका असली नाम विरातकूप बताया गया है। विराडू राजस्थान के पश्चिमी भाग में बाडमेर से लगभग तीस किलोमीटर दूर स्थित है। इसमें ध्वस्त अवशेषों का देखकर इस नगर की विशालता का अनुमान लगाया जा सकता है। विराडू में आज भी शिल्प का बेजोड नमूना लिये पांच मन्दिरों के खण्डहर विद्यमान हैं। विशेषतः सोमेश्वर मन्दिर जिसका कोई भी पत्थर ऐसा नहीं है जो कलाकार के हाथों में न गया हो। महाभारत के समय भी राजस्थान और हरियाना में यज्ञ और राक्षसों के राज्य थे। वन पर्व ११ अध्याय में काम्यक वन में राक्षसों का राज्य था जिसमें वनचारी जीर तापस लोग भी घुमने हुए डरते थे। वहाँ भीम ने राक्षसराज विभीषण का मारा था। मुख्य साम्राज्य नीचे जिसके पर भी राक्षस शक्ति के छोटे छोटे टापू सार भारत में रह गये थे। इन्हीं पर अधिकार कर जीर दह अपनी मत्ता का सहारा बनाकर रावण ने अपना महान् साम्राज्य स्थापित किया था।

ऊर शब्द द्राविड भाषा का शब्द है जिसका जय नगर है। दक्षिण में इसमें जन्त होने वाले जनेक प्रसिद्ध नगर हैं मायनूर बगलूर तजाऊर मगनूर गतूर गुदूर चित्तूर गुम्बयूर त्रिचूर। किन्तु इन पर भी यह सूची समाप्त नहीं हाती। ये अनेक हैं —

जहूर	बेरलूर (बेलोर)	वागहूर
अम्नूर	तिरुचे दूर	विहंरम्बूर
अतूर	जलजदूर	विहंरिमरुदूर
कानानूर	माबूर (केरल)	पुनालूर (केरल)
चगालूर	द्विव्जालयूर (काचीन के निकट)	दिय्यूर
कुनूर	पुलियानूर ()	श्रीपेरुदुदूर (रामानुज का जन्म-स्थान)
कड्डालूर	वजहूर (केरल)	
होसूर	इरुगूर	ताडनूर (श्रीरगम के पास)
इलुसूर(र)	पोदुनूर	त्रंगनूर (केरल का बदरगाह)
कम्पूर	कोयम्बनूर	विहविल्लिपुतूर

चित्तूर	चेंगलपत्तूर	तिरुमात्तूर
कोव्वूर	अम्बर	त्रियम्बूर } मद्रास महा
वल्लूर	चेम्बवथूर	नवालूर } बलिपुरम् के
जात्तूर	गौरीप्रिदानूर	त्रिपत्तूर } रास्त म
परम्भावूर	कोल्लेत्तूर(र)	तानुक्क(र) (आंध्र प्रदेश)
पनमवूर	अरडू(र)	चेम्बत्तूर
पुत्तूर (थीलका)	पालर	अजवन्नूर
मुल्लटिवू(र),	थिम्दत्तूर	थिरुवनमियूर
नायात्(र),	विल्लीयूर	नगनत्तूर
भुगातिवू(र),	तुमवूर	पगन्नूर
थिम्बलवन्नूर(र)	सात्तूर	मददूर
पलयन्नूर	बत्तूर	मलक्कदेनसूर
मुनियूर	निदूर	अडजूर
नदगुडूर	थिरुवरूर	वोविलूर
मेनक्कदव(र)	कोलाथूर	काक्कियालूर
विडातलमडू(र)	नगलूर	एलुक्कर (आंध्र प्रदेश)
रनवन्नूर	वञ्जुयूर	जरियान्नूर (तमिलनाडु)
सत्तूर	कम्पू	तिरुत्तयात्(र)
सुत्तूर	वोदीनयक्कन्नूर	अयूर
तिरुवल्लर	आरियालूर	

यही नहीं आज का मद्रास भी पुराना मायलापूर और एगमूर का अपन में समेट स्थित है जस कन्नक्ता वेलर का। यह थीलका तमिलनाडू केरल आंध्र प्रदेश और कर्नाटक की सूची व्यापक नहीं है केवल उन नगरों की है जो चुनाव के समय जखियारा में वर्णित हुए हैं या बस बहुत प्रसिद्ध हैं।

दक्षिण तक ठीक था किंतु जब उत्तर में भी ऊर पाए गए तो मेरा माथा ठनका (दखिए लेख का आरम्भ)। एक भाषाविज्ञान की पुस्तक में यह पढ़ने पर कि तिबती भाषा (यक्षभाषा) में ऊर का अर्थ नगर होता है मतलब साफ़ हा गया। साथ ही मेरे इस सिद्धांत का चल मिला कि यक्ष व्यापारियों ने ही और राक्षस साम्राज्य निमानाथा ने दक्षिण को घन घाय (द्रामिळ) में भर दिया था। इस पर अनुसंधान करने की आवश्यकता है कि तिबती जवधी और द्रविड भाषाओं का मूल एक है, वैसे दो हजार से अधिक साल के अंतराल में अंतर आना अवश्यम्भावी है। अमृन्लाल नागर रामविलास शर्मा तथा हिंदी के कुछ अजय जाने माने साहित्यकार जब विजयवाड़ा गए तो उन्हें ऐसा लगा जैसे अबघवासी आदमी ही यहां पर रहते हैं।

उत्तर और मध्य भारत में स्वयं शन, गुजरात आभीर दृण अन्तगान, मगात, तुम जात्रमणा और आधिपय के कारण बड़ नगर के नामानिधान मिट गए और सबका नाम बर्तन गए। फिर भी आज तक अनेक नाम उर में मिलते हैं।

यथा व्यापारी हिमालय में उतर कर उत्तर प्रदेश पश्चिमी त्रिगण होत हुए दक्षिण की जात्र बट और पूर्वी मध्य प्रदेश आध्र प्रदेश और तमिऱनाडु प्रांत हुए श्रीनवा तक चल गए यह इन प्रदेशों में और मध्य प्रदेश में पाए गए नामों में पता चलता है। इजारी बाग के पास पनामू(र) जिला है। निपाद राजधानी शृंगवरपुर का तुमाताम के समय भी जमाना नाम मिंगरौर (मिंगर) था जमा त्रि तुमगी ने स्वयं लिखा है। निपाद उम शृंगवरपुर का कर नहा पुनार करने यह अवश्य मिंगर का ससृतीकरण है। ऊर बोत-वानत अनेक जगत् और में बर्तल गया है या र तुप्त होकर उ रह गया है।

ऊपर लिए गए मण्डल जिन के नामों के अनिरिक्त कुछ नाम य ह — त्रिजनीर त्नीर कन्नीर काण्णीर, कागू बगू(र) गन्नौर मिराव(र) (प्लाहाप्रात निता) गीरामज(र) जुगौर जानगू(र) वागरमज तगण(र) भुपियामाज(र) भच्चू(र) भट्ट(र) भरु भनीर मल्लौर म्पामज(र) रोशनमज(र)।

मध्य प्रदेश की महु(र) छावनी प्रसिद्ध है। अग्रजा के समय प्रसिद्ध सागीर नगर था जिसका नाम आजकल सागर कर दिया गया है। रावपुर ह। मन्दसौर बड़ा प्राचीन प्रसिद्ध नगर है। सीहोर है। नीर है जहां बड़े गणेशजी का प्रसिद्ध मन्दिर है।

यथा की दूसरी शाखा यह थी जिसमें अनेक जनजातियां के साथ मिलकर कार्तिकेय के नेतृत्व में ईगन के अमुग के विरुद्ध समराजनी (पाभीर— पायमेर के दक्षिण में) इन्द्र का सहायता दी थी। बय रक्षामि के नाम के कारण वे राक्षस बहनाए। यह दूसरी यक्ष शाखा राज्य फताने के लिए स्वान, चिनाल गिलगित कश्मीर होती हुई पंजाब उत्तरी तथा हिमाचल प्रदेश होती हुई हरियाना उत्तरी और फिर राजस्थान महाराष्ट्र बर्नाल करल में बस्ती बसाती हुई स्वर्ण लका तक चली गई। (रावण की स्वर्ण लका उज्जैन की देशांतर रखा जहां विपुवत् रक्षा का काटती है वहां बसी हुई थी और लगभग १४०० ईसा पूर्व में जब द्वारका सागर चलने से डूब गई थी तभी डूब गई थी। उमने कुछ ऊंचे भाग आज भी मालद्वीप और लक्षद्वीप के रूप में विद्यमान हैं। श्रीलका अलग द्वीप था। पुष्पक विमान से जयोध्या नीटत हुए राम ने सीता को दिखाया था कि दाए हाथ पर यह श्रीलका का द्वीप है कसा सुन्दर लग रहा है।) इन सब प्रदेशों में ऊर अतित नगर पाए जाते हैं आजकल के पाकिस्तान के प्रदेशों को मिलाकर।

जम्मू के अखनूर और पंजाब के मगहर कलानूर और सचूर को वीन नहा

जानता, व अपने पुराने हिंजे म स्थित हैं। जम्मू स्वय और उसक पास ही बनूर गांव हैं। हिमाचल प्रदेश के जिलामपुर जिले म कदर है, चम्बा के निकट ब्रह्मौर है, शिमला के निकट जाबू(र), परवान, मुवाबू, सपाडू हैं। हिमालय म मन्थूरी है जो कार्तिकेयपुरी का अपभ्रंश है। मिरमौर है, मिन्नौर है, जामू है।

पञ्जाब म सगर के अतिरिक्त जमूतसर के माड इलाके म घर साहब है फिराजपुर जिले म मन्थू(र) है बाबा पृथ्वीसिंह जाजाद की जमभूमि ललर है, बनूर ह पुलिस ट्रेनिंग का फिल्लौर है। हरियाना म करनाल व पास घेरी नार(र) है, लाडू(र) है। अय स्थान लात(र), लूनसू(र), लोहा(र) सराय हर(र) सामराऊ है।

राजस्थान म मिराडू के निकट बाहडम(र) है जिनका पुराना नाम बाण्डाऊ है। प्रसिद्ध नगर जालौर है। जैसलमेर के निकट घोटार(र) है।

महाराष्ट्र म चेमूर है, लाडूर है, दहाणू(र) है और भगूर है। गुजरात म पेरालू(र) है।

प्राचीन भारत के पाकिस्तान राज्य म भी ऊर पर अत होने वाले नामा भी कभी नहीं है। स्वात घाटी मे बजूर है सडू(र) भगलूर है उपू(र) है। पास फलश घाटी म रम्बूर है, बगान घाटी म शिन्(र) है। तनाजा बाघ के निकट खौर है। बानिस्तान म बलटोगी सलटारौ है। वही लद्दाख से स्वडू क भाग पर खपल(र) है। स्व(र) स्वय है। गिलगित म द्यू(र) है। अधिष्टन कश्मीर मे अष्टौर है। पाणिनि व्याकरण का जन्मस्थान लहूर है। अटक के निकट हजरी है। हुजा घाटी म गगश नाम का नगर है। तक्षशिला के निकट हरी है। बनू उग्र प्रसिद्ध है ही।

पजाव मे लाहौर (लाहूर) है। सिंध म कश्मूर है। प्रसिद्ध नगर अलोर (जलर) है। थटा के निकट भील हडिये(र) है। कराची के मधू पीर का स्थान है। कराची से ही ४० मील दूर पुराना पत्तन बनमूर है।

ये सब नगर मैं A Traveller's Guide to Pakistan, Hilary Adamson and Isobel Shaw The Asian Study Group P B No 1552 Islamabad (394 pages Rs 125/) से लिये है। यदि वहाँ के रहने वाला से बातचीत होनी या लगातार समाचारपत्र पढ़ने को मिलत, तो यह सूची विस्तृत हाती।

भारत के बाहर भी उत्तर मे मंगालिया की राजधानी उलन बनूर है। उससे तिब्बत जोर यक्षो का सम्बन्ध अभी खाज की राह देख रहा है। इधर मध्य पूव मे इराक (मगापोटामिया) की सुमेर सभ्यता गुनाई के वाप आज के इतिहासना द्वारा ससार की सबसे पुरानी पात सभ्यता कही जाती है। इसके रिक्वाड से पता चलता है कि सुमेरी जाति पूव से इरान म जाई थी और वहाँ उसन सभ्यता स्थापित की थी। उनके फारस की खाड़ी पर स्थित दो प्रसिद्ध

नगर जिनकी खुदाई से वह सभ्यता प्रकाश में आई ऊर और उरु है। 'ऊर नगर और 'उरुक छोटा नगर साथ ही सुमेर नाम—क्या कुछ राक्षस साम्राज्य से सम्बन्ध की घटी नहीं बजाता। पर अभी बहुत खोज करनी बाकी है।

नारद मुनि

भारत में वच्चो से लेकर बड़ा तक कौन ऐसा है जिसमें नारद मुनि का नाम न सुना हो। वे विद्याओं का जानने वाले सब स्थानों पर विद्यमान और गिगडी को बनाने वाले थे। साथ ही कुछ स्थानों पर वे उनकी को विगाड़ने वाले भी थे।

इन्द्र आदि देव उनका सम्मान करते थे परन्तु वे देव जाति के नहीं थे। वे विष्णु के सहचर थे। यक्षा से अमृत देवा का दिलवाने में और गंधर्वों द्वारा सोम द्रव्य को बेचने में उनका हाथ था— यह हम वेद से पता होता है। सम्भवतः वे यक्ष या गंधर्व वंशी थे। अथर्ववेद में कई स्थानों पर उनका वर्णन किया है।¹ य हरिश्चन्द्र राजा के पुरोहित थे और उन्हें पुरुषमेघ घन करने की राय देहान दी थी।² पूजा की यह प्रथा यक्षा में बहुत प्रचलित थी। यथा धेनु का मांस ब्राह्मण को पाना चाहिये या नहीं इस पर भी इनकी राय अथर्ववेद में कई बार आई है।

महाभारत में नारद को ब्रह्मा का मानस पुत्र कहा गया है।³ ब्रह्मा (अमा) यक्षा के कुलदेवता थे और उनको हम भारतीय सजक मानते हैं। नारद को धर्म तत्त्वन बदात्तन, राजनीतिन एवं संगीतन बताया गया है। य जहा जी चाहे वहाँ भ्रमण करते रहते थे।

नारद ब्रह्मा के मानसपुत्र और विष्णु के तीसरे अवतार थे।⁴

नारद भी वृहस्पति के समान या वसिष्ठ विश्वामित्र परशुराम के समान आचार्यों का कुल था जहा सबश्रेष्ठ शिष्य को नारद के पद पर बिठाकर उसकी परम्परा को आगे चलाया जाता था। तभी हम सबको वेप के यज्ञघान में समय समय पर इनका नाम पाते हैं। आरम्भ में इनकी सहायता से इन्द्र गंधर्वों से साम प्राप्त करते दिखाए गए हैं। अथर्ववेद में स्थानों पर वर्णन के उपरान्त हम राम के समय में (लगभग १६५० ईसा पूर्व) में इनका उल्लेख पाते हैं। तदुपरान्त महाभारत काल में (लगभग १५०० से १४०० ईसा पूर्व) में तो इनका जगह जगह उल्लेख जाता है। पवता में अजुन के जन्म के समय ये उपस्थित थे।⁵ (मन्त्रलय य पवनवासी किरात (यक्ष) कुत्र के थे।) द्रौपदी के स्वयंवर में गंधर्वों

1 अथर्ववेद 5 19 9 12 4 16 4 41 मैत्रयानी संहिता 1 58

2 ऐतरेय ब्राह्मण 7 13

3 महाभारत आदि पत्र 1 111

4 भागवत पुराण 1 3 8 मत्स्य पुराण 3 6 8

5 आदि पत्र 114 40

नारद का वदिक विद्याजा के आचाय के रूप म छात्ोग्य उपनिषद् म भी वणन हुआ है । इनके नाम की प्रतिष्ठा प्राचीन वौद्ध साहित्य म भी थी जहा इह मह ब्रह्मा कहा गया है । ये दोनों शब्द यक्षा से सम्बन्धित है । मह बडा और ब्रह्मा या बरह्म रूप म आज भी यथ गाव गाव मे पूजा जाता है ।

मुनि शब्द स्वय यक्ष जनजाति का धानक लगता है । देव जनजाति म विद्वान् को ऋषि कहा जाता था शिव के पूजक को तपस्वी या योगी, और ब्रह्मा कुबेर के पूजक को मुनि । नारद सब म मुनि करके प्रसिद्ध हैं सिवाय कुछ स्थता के जहा उह ऋषि बताया गया है । लेकिन आज भी जनता उह मुनि करके पहचानती है ।

नाट्यवेद के लिखने वाले जिमे पाँचवा वेद कहा गया है भरत मुनि के । उह कहा ऋषि नहीं कहा गया है । दसी प्रकार मतग मुनि ने संगीत शास्त्र रचा था । हम जानत हैं कि यक्ष, गन्धर्व कित्तर जादि किरात जनजातिया नाट्य संगीत नृत्य की बहुत प्रेमी थी । नृत्य अप्सराओ से चला है ।

अगस्त्य ऐसे व्यक्ति हैं जिह ऋषि और मुनि दोनों कहा गया है । वे एक अद्भुत महापुरुष थे जिनका विश्वकोषाय नान था अनुपम मेधा थी । भारत म घूम घूम कर उहोने सब जनजातियो की सस्कृति, रीति रिवाज को एकत्र किया था और फिर दक्षिण म धम का प्रचार किया था ।¹ अथ जनजातिया से व्यवहार करने के कारण मानवा ने उहे सप्तर्षियो म मान नहीं दिया । फिर भी उहे मानना पडा कि यथ सस्कृति और देव सस्कृति दोनों का मेल अगस्त्य ने किया ।²

इसी प्रकार कपिलस्थान (हरद्वार) के कपिल मुनि थ जो साध्य दशन के प्रणेता है और जिनका सगर क पुत्रो से भगडा हुआ था । शाक्या की राजधानी कपिलवस्तु उनके शिष्या ने बसाई थी ।

एक अन्य प्रसिद्ध मुनि पालकाप्य थ जिहोन हस्ति पालन पर पुस्तक लिखी थी । वे भी पूव म रहने वाले सम्भवत यक्ष कुल के थे ।

ऋक्संहिता के केशि-सूक्त म केशधारी, मले गेरुए' बस्त्र धारण किए हवा म उडते विप पीते मौनय से उमदित और देवेपित 'मुनियो का चित्रण किया है । मुनियो का उल्लेख एक दो जगह और भी ऋग्वेद म है । एसा लगता है कि चमत्कार लिखाने हुए मुनिया के दशन से सूक्त के ऋषि विभ्रम मे पड गए हैं कि व उमाद अथवा जावेश म हैं । उनका निवृत्तिपरक जीवन वदिक जीवन स भिन्न था इसी कारण मुनिया का जाचरण ऋषिया को अद्भुत लगता था । कात्यायन की सवानुक्रमणी के अनुसार इस सूक्त म निम्न 'वातरशन मुनिया के नाम द—जूति वातजूति विप्रजूति, वृषाणक करिव्रन एतश और ऋष्यशृग । ऋष्यशृग

1 अथ भारतीय पुरा इतिहास कोश

2 बाल्मीकि रामायण अरण्य काण्ड 11 | 93

नाम पररतीं साहित्य म अनक स्थला पर आया है और उनकी कथा जानी पहचानी है। एतरेय ब्राह्मण म एक एतश का उमत्त मुनि के रूप म उल्लेख आया है।¹

ताण्ड्य ब्राह्मण म 'तुरा देवमुनि' का वणन है।² ऋक्संहिता के अरण्यानी सूक्त के द्रष्टा एरम्मद त्वमुनि थ। ताण्ड्य ब्राह्मण म ही 'मुनिमरण' नामक स्थान का उल्लेख है और यतिया का इद्र का शत्रु बताया गया है।³ शतपथ ब्राह्मण म तुर कावपय की मुनि कहा गया है।⁴ शक्राचार्य शारीरकभाष्य म एक यति का उद्धरण देने हैं जिसके अनुसार कावपय ऋषि वदाध्ययन और यन के समर्थक नहा थ।⁵ यह विदित है कि कवप ऐलूप सरस्वती तट पर हो रहे यन म ब्राह्मण होने के कारण निकाल दिए गए थे।⁶ तुर कावपय उनके पुत्र थे। तत्तिरीय आरण्यक म गगा-यमुना के मुनिया को नमस्कार किया गया है।⁷

मुनि शब्द का अर्थ क्या है यह खो गया है। संस्कृत के अनुसार मुनि शब्द की व्याख्या महाभारत में दस प्रकार की गई है —

मौनादि स मुनिभवति नारण्यवसनामुनि।⁸

(कोई भी साधक मौन व्रत का पालन करने से मुनि बनता है केवल वन में रहने में नही।) यह ठीक प्रतीत नहीं होता इस व्याख्या पर नारद जस घाचाल व्यक्ति घर नहा उतरते। यह यक्ष बोनी का शब्द है जो उससे संस्कृत और हिन्दी आदि भाषाओं में आ गया है। इससे अच्छी उपनिषदा की व्याख्या है। उपनिषदा के अनुसार अध्ययन यन व्रत एवं श्रद्धा म जो ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करता है उसे मुनि कहा गया है।⁹

मुनि शब्द से एक जय रुचिकर तथ्य पता लगता है। तीमर दशक में एक इतिहासकार ने मायता रखी थी कि शाक्य मत्तल बज्जि आदि जाजातिया यथ बुद्ध की थी। उनके जाचार विचार और व्यवहार अलग थे, तथा बुद्ध और महावीर के मूतिया की मुख्यांगति बिल्कुल पाई गई यथ मूतिया के समान था। विन्मार में कभी पुस्तक में अर्थन देखिये। इस बात पर वन हम इस राक्षस तथ्य से मिनता हैं कि बुद्ध को शाक्यमुनि कहकर पुकारा गया है महावीर को जिनमुनि (जाज भा जन मुनि प्रसिद्ध है) ऋषि तपस्वी या योगी कहकर नहीं।

1 वैदिक इंडेक्स भाग 2 पृ० 167

2 ताण्ड्य ब्राह्मण भाग 2 पृ० 601

3 ताण्ड्य ब्राह्मण भाग 1 पृ० 208

4 शतपथ ब्राह्मण भाग 2 पृ० 10-11

5 ब्रह्मसूत्र 3 4 9

6 ऐतरेय ब्राह्मण 8 1

7 तैत्तिरीय भाग 1 पृ० 166

8 महाभारत उद्योग पर्व 43 35

9 बृहदारण्यक उपनिषद् 3 4 1 4 4 25 तैत्तिरीय आरण्यक 2 20

विवाह पद्धतिया

हमारे धम ग्रन्था म जाठ प्रकार क विवाह का वणन ह ।

महाभारत आरण्यक पत्र १०२ अध्याय म भीष्म न जाठ प्रकार की स्वीकृत विवाह पद्धतिया बतलाद थी —

(१) ब्राह्म विवाह— गुणी पात्र का पुत्रारण यथाशक्ति गन्न और धन दकर कन्या देना ।

(२) आप विवाह— एन गाय और एक बल नेकर विवाह ।

(३) जामुर विवाह— धन दकर कन्या लेना ।

(४) राजस विवाह— बलपूरन कन्या का हरण करना ।

(५) गधक विवाह— आपस की राजी स माला डाल कर विवाह करना ।

(६) पशाच विवाह— जसावधान कन्या का छन से ले जाकर विवाह करना ।

(७) प्राजापत्य विवाह— दाता क घर स्वय जाकर कन्या मागना ।

(८) दक विवाह— यन म कन्या ग्रहण करना ।

इनम ब्राह्म विवाह और दक विवाह और आप विवाह अलग अलग है । यदि देवा म ब्रह्मा होने ता एना का एक ही नाम हाना और एक ही रूप होना जोकि नही है । सब स पहले नम्बर पर ब्राह्म विवाह का आख्यान है । अथ है यह सवम पुराना है और यन (स्र मा या ब्रह्मा) कुन म प्रचलित था । इसन साथ इसी प्रजाति के गधक और राक्षस विवाह का उल्लेख है । राक्षस विवाह एक युद्ध प्रिय कुल का विवाह बन गया था जहा पुंशु का प्रधानता मिली और स्त्री कवल भोग्या या अपहरण की वस्तु समझी गई । जहा रामायण काल (१६५०-१६०० ईसा पूव) म प्राचीन रीतिया को मायता था और रावण का काम धम विरुद्ध समझा जाता था वहा महाभारत काल (१५००-१४०० ईसा पूव) तक वह भारतीय समाज की माय नीति बन गया था उदाहरण के रूप म भाष्म का अम्बा, जम्बिका जम्बालिका का हरण है कृष्ण का रविमणी हरण और अजुन का कृष्ण की सलाह पर सुभद्रा हरण ।

गही आज कमकाण्ड बन गया है । विवाह क समय तेल घडाना उदटन या हल्दी लगाना प्राचीन काल के वस्त्र पहनाना और मोर (मुकुट) लगाना सहारा वाघना घोडे पर जाना तलवार स तारण मारना, दहेज लना अर्थात् लूट का माल लकर लौटना आदि सब राजस विवाह के प्रभाव ह जिनम जग्नि की शपथ और फेर लगाना दक विवाह के रूप म मिल गया है ।

सक्क

बौद्ध और जन धर्मा म इद्र का सक्क नाम अत्यन्त प्रचलित है । राइस

द्विभक्त का मत है कि शत्रु जलम था, इन्द्र का स्थान उसी न ल लिया था ।
शत्रु कुमेर और नाग देवता की भांति था ।

अमा हम जानते हैं इन्द्र एक पद था जिस पर चुनाव हाता था । पुराणा
स हम समय समय पर इन्द्र वने व्यक्तियों के नाम जानते हे । ययातिपुत्र नहुप
भा इन्द्र चुना गया था । यशगज स्कन्द भी इन्द्र चुना गया था । इसी कारण
जब किता मर्हिपि या राजा का अधिक नाम हाता था तब इन्द्र अप्सराया को
भेजकर उने टिगाने का प्रयत्न करता था कि कही उसका इन्द्र पद ल छिन जाए ।

भर विचार स उत्तर पूर्वी भारत म यश प्रभाव बहुत अधिक होने के कारण
मयक या तो स्कन्द का ही इन्द्र पद याद किया गया होगा या किसी और यश का
नाम होगा जा इन्द्र चुना गया हागा ।

काम का भस्म होना

यह सक्ल्पना यथा से राक्षसा के जलम हान पर प्रवर्तित हुई । यक्ष कामदेव
का पूजा करते थे मातृ-पूजा करते थे । लेकिन कार्तिकेय के अधीन यक्षा के एक
भाग का अथ गणा के साथ सम्मिलन हान पर उनम पुरुष पूजा का प्रभाव बढा ।
प्राचीन ग्रन्था के अनुशीलन करन पर पता चलता है कि राक्षसा के शक्तिशाली
ज्ञान पर लिंग पूजा का प्रभाव बढा और महादेव का प्राधाय हुआ । इसी सधप
का कामदेव के भस्म हान की सक्ल्पना दशानी है । महादेव के गणा और मार
या कामदेव के पूजका मे लडाई हुई जिमम मार भस्म हो गया । लेकिन वह अलग
वनर भी जीन गया । पर्वत पुत्री पावती की शिव पर विजय हुई या मार भी
ग्रन्थचय पर विजय हुई ।

इस प्रकार राक्षसा की दक्षिण विजय पुराण म दा हुई एक कहानी दशानी
है । इसम गोदावरी तट पर नृपिया के आश्रम स उर्वरिग किण शिव के
गुजरन का वणन है । उह दक्षिण ऋषि पत्निया कामातुर हानर उनर पाछ
भागी । ऋषियो ने उह बहुत रोगा परन्तु ब नहा मानी । अतत ऋषिया को
भा शिव का पूजक बनना पडा ।

इच्छारूप होने की सक्ल्पना

यश राक्षस, गधक, किन्नर वानर उक्ष आदि निरात प्रानि की जानिया
की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता थी उनका इच्छारूप होना । व जसा यह रूप धर
लन थ । इसका अथ मास्क या मुद्राट से था । व अपन मुख पर एक नन्दी
बेहरा बना लेन थ । इसका एक रूप दक्षिण भारत के कबरलि नृत्य म ही नहा
बचा रह गया है आजकल भी सार उत्तरी भारत म त्योहार पर दक्षी त्रिजीन वाने
वाण्ड ने मुद्राट बनाकर बचना का वचन है । बच्चे दूध मूट पर लगा कर वान

पर खड फँसा लत है जोर आपस म एक दूसर का टरा कर चलत है । एन समय यह प्रथा पूर भारत म ही नहीं, स्पन सन म प्रचलित थी ।

गंगा

गंगा नाम एक तिरान निवार धातु म तिरता है— वग (वग > गग) । गंगा का मौलिन अथ आज भी हिमालय की भारतीय तिरान (यग) भूमि म नती हाना है और यह शत्रु अनन नदिया स जुटा हुआ है कश्मीर की वृष्णगंगा स लवर धौली गंगा, दूध गंगा, नील गंगा आदि सन ।

रामायण के बालकाण्ड म लिखा है कि तिस प्रवार गंगा का सान धाराएँ— तीन पश्चिम की ओर सान पूर की ओर और एक मध्य-भाग का— पवित्र और समृद्ध बनाती हैं ।

यह ध्वनि गग > वग > त्रिआड > का हिमालय जाग उतकी पृष्ठभूमि तिचत म तिरली नदिया स नाम म है । जस मोराना ना हिमालय म तिचत स निचलती है और दक्षिण-पूर्व एशिया की सबम बडी नती है । मी या म का तिरान भापाओ म अथ है माना । अर्थात् गंगा मया । यह गंगा मया (मीकान) २६०० मील लम्बी है हमारे दश की हर नदी (सिधु १८८० मील ब्रह्मपुत्र १८०० मील तथा गंगा १५६० मील) म लम्बी । याग-टो-ना त्रिआड तिचत म तिरनी चीन की बडी नती म भी त्रिआड ध्वनि है ।

गाड का दूसरा ध्वनिरूप साड या शत्रु होता है जिसका अथ भी वनी है । यह भी तिचत की अनन नदिया स जुडा है । ब्रह्मपुत्र का तिचत म नाम है साड पो (तिचती नती) । अथ है साड या (बाली नती) साड काई (लाल नती) और चीन की प्रसिद्ध हाड हा (तिरान नती या पीली नती) ।

सरस्वती देवा की पूय नती थी गंगा यक्षा का नती थी और आज वह ही परम-स्मरणीय और पापनाशन है । इसी प्रकार गौड ब्राह्मण सारस्वत ब्राह्मण स ऊचे समझे जान है । गौड प्राचीन काल म हरिद्वार के पास का गंगा-यमुना का प्रदेश कहलाता था ।

प्रयाग

मैं प्रयाग का अथ दा नदिया के मिलन स्थल पर बस हान व कारण सगम समभता था । गन्धाल म ता य चप्पे चप्प पर स्थित है देवप्रयाग रद्रप्रयाग वणप्रयाग नदप्रयाग, विष्णुप्रयाग आदि । और गंगा यमुना के सगम पर बसा प्रयाग है ही । किन्तु मानव हिंदी काश के तीसरे खण्ड म प्रयाग का अथ देयन पर मुक्त असलियत का पता चला । प्रयाग का अथ है वह स्थान जहा बहुत यन हुए हो । फिर काशी का ऐतिहासिक भूगोल शाध ग्रन्थ म श्री ठाकुर प्रसाद वर्मा के 'प्राक्खनन म पढा ' वाराणसा प्राचीन काल स ही यन्मा के लिए प्रसिद्ध रही है । जहा पर प्रबुष्ट याग (यक्ष) होते हैं उस स्थल का प्रयाग कहा जाता

है। वाराणसी में भी कम से कम तीन प्रयाग के उल्लेख मिलने हैं। एक प्रयाग आदि केशव मन्दिर के समीप वरणा-गंगा संगम पर बताया जाता है। दूसरा प्रयाग घरणा नदी के तट पर मथिया और कवरहा घाटा के बीच अवस्थित था और तीसरा प्रयाग दशाश्वमेध घाट पर स्थित है। इस तीसरे स्थान का अब प्रयागलिंग कहा जाता है जो यथा पर शिवगणा की विजय दशाता है। इसका दूसरा नाम ब्रह्मेश्वर है यानी ब्रह्मा (ब्रह्मा — यक्षो) का श्वर।

यज्ञगान

यज्ञगान दश के दक्षिण-पश्चिमी तट का लोकनाट्य है। लगभग वारहवीं या तरवीं शताब्दी में इसका अस्तित्व स्थापित हुआ। इसके कथानक महाभारत रामायण व भागवत से चुन जाते हैं व जिन उपन्यासों में युद्ध की प्रमुखता है उन पर आधारित किया जाता है।

यज्ञगान रात्रि भर हान वाला प्रदर्शन है। अगर किसी कारण से चुनी हुई उपन्यास समाप्त हो जाती है तो दूसरा कथा शुरू हो जाती है और यदि दूसरी कथा सूर्यास्त तक पूरा नहीं हो पाती है तो उस मक्षिण कर दिया जाता है।

यज्ञगान का राक्षस पात्र हनुमानायक या कान्हाजी हाता है उसकी पोशाक कान्हा से भिन्न समसामयिक होती है उसका कर्तव्य दशका को हँसाना भी है। वह प्रमुख पात्रों की धोपणा करता है और एक दृश्य का दूसरे दृश्य से व एक उपन्यास को दूसरी उपन्यास से जोड़ता है।

समस्त मूलपाठ कविता व संगीत में हाता है जिसका पाठ भागवत करता है। नाट्य शुरू होने से पहले नगाड़े की चाट और गायन द्वारा प्रमुख पात्रों का परिचय कराया जाता है।

इसमें दृश्य की आज्ञापूर्ण शक्ति वीरान्वित है प्रेम दया जस सबेगा की अभिव्यक्ति अल्प मात्रा में हुई है। इसलिए इसके लिए स्त्री पात्र उपयुक्त नहीं। पात्रों का संवाद जलियन हाता है। दमे याद नहीं करा जा सकता। यह अभिनय की क्षमता पर निर्भर है।

इस लोकनाट्य का अत्यधिक प्रभावशाली अंश है इसकी मजबूत रूपसज्जा व भण्डोंन रंगा की पोशाक। एक विरोध में नीले व लाल परिधान, सीन पर गुनटरी पट्टी व गज में आभूषण पहने जाते हैं। मिर पर भङ्गील रंगा का मुकुट होता है। नीचे का वस्त्र चमकाला, अरुण एक ही रंग का हाता है व किनारा सिरापी रंग का होता है। दानव व बुरी जातियों में मुखाट लगाने हैं जिनमें गुण्यता का भाव उत्पन्न होता है। गंधर्व आदि आँखा के नीचे लाल व काली लकड़ें घातकर छवि चित्तामय बना लेते हैं।

छऊ वृत्य

भारघण्ट म मयूरभज और तीन जय स्थाना का यह युद्ध वृत्य है। इग कहेते है अशाक के काल म दन्ताजा न रिया था।

यह वृत्य मुघो लगारर या मुघ लीग पातकर क्रिया जाता है।

छउ(र) स रसना सम्बध यक्ष प्रजाति स प्रताग हाता है। इसम गिव का पूान हाता है। गान बटना स यह आरम्भ हाता है। इसम चाले हाती ह— वीर (य) गान अमुर चान राभस चान वानर हय, मयूर तथा राधी चाल जाति।

नन्दा की राज जात

उत्तराघण्ट हिमालय म आयाजित पावती (नन्दा-ग्रा रग्न व कारण नन्दा नाम) का अपन मायरा स गिर र स्थान पट्टचान व त्रिए हर वारह वष बाद यह यात्रा आयाजित हाती है— गटवान व एग गान नीती म सुदूर हम दुण्ट १ ५०० फुट) स जाग नन्दापुरी पतत शिखर की ओर। उम पट्टचान राजवती ववर जात है। राज यथा का दूमरा नाम था।

विभिन्न गांव स स्थाना म दक्षिया की छत्तात्रिया जाकर इस नन्दा की यात्रा म मिलती हैं। इन सभी त्थी दन्ताजा की छत्तात्रिया व साथ एग बयाट्टद व्यक्ति रहता है जिसे जाख कहन ह। हम जात्रणाय पात्र का वशभूषा अलग हाती है। जाख—जवन्—यग की माण तिलाता है। ययोवृद्ध का जाख कहन का जय यह है त्रि प्राचान का म यह य ग का उत्साव था।

मछली

आज भी लखनऊ व प्रत्येक पुरान मरान के द्वार पर दा घूमि हुई मछलिया का चिह्न मिलता है। यही उत्तर प्रन्ध सरकार का चिह्न ह। जबध म घर घर जब भी यात्रा पर जात समय जीर दशत्र पर सयर जाँव मुलत ही त्थी मछली का पबुन दपने का रिवाज है।

वही मछली प्राचीन काल म सुदूर दक्षिण व सबसे पुरान पाडय राज्य का राज्यचिह्न था।

प्राणवान् भापा

नापा वही प्राणवान् हाती है जो जनता म बाली जाती है। जनता जनादन अपने प्रतिनि के जीवन अनुभवा को शदा के टाक म डालत रहती है जीर वे भापा का भण्णर बटात रहत है। यहा कुछ जनता द्वारा गट रचिन्तर श द एक्कन त्रिए गण ह जविन्तर प्रमिद्ध भापाशास्त्री डा इन्द्रचन्द्र शास्त्री द्वारा वताए हुए। वसी जजीव युत्पत्ति है।

अशोक ने देवानाप्रिय का पद गृहण किया था। उसन सब स्तम्भ लघा

आर शिशुनाथ म उसका इमो पत्नी न बगन ह । जाज चाह वल्म जादि
 र्निहामकार उस मसारका मवस महान् राना कर्ने कितु जनताकी व्यावहारिकता
 प्रकसा-याग्य है । वाज के माहिय म उस पल का जय 'मूत्र' हा गया ।

महामा बुद्ध के मूठे अनुयायियो न जनता को और कई नाम निर्माण करने
 का अवसर दिया । बुद्ध का मानन वाज म बुद्धू गन बना । भन स भाद्रू । दरान
 का उत्तर-पूर्वी भाग मोगद (मम्हन म मुग्र) था जहा प्राचीन कान म सजम
 विशाल बौद्ध विहार था आर वना उतून बाढ़ रहत थे । उनन खा के कारण
 फार्मी का चुग (मुग्घ) शन गाली के रूप म जाज तक प्रयुक्त हाना है । पाखण्ट
 मून म धम का पयाय था । पर धम की भूठी टुहा दन वाले पाखण्टी कहलाए
 और पाखण्ट और पाखण्टी टाग और टागी क अथ म प्रयुक्त हान लग ।

जन मुनि अपन का लुचित करत थ मा उर सानर बुचा बना जाना था ।
 फिर जय क मानना प्रलिया आ रा लीखा स्वर बाज लुचन करन लग ता वह
 तथा—फिर बुचा गाता प्रन गया और उनन जान ही योग वाल वच्चा का घर
 म छिपान लग । पाखनाथ क चन हा पामत्या कहा जान लग ।

वाज स रावला गद बना महत्तर म मेहत्तर भाट म भून । आन क
 म रानन का अमनी जय अनान कुल म था । भगतन हा आज बधना क अथ म
 प्रयाग किया जाना है गायद दवदामी के कारण ।

विहार क छाया नागपुर की पहाडिया म चुटिया नाम नाम क आदिनामी
 रन है मीने-मा मगल प्रकृति । चुटिया नाम रा जरप्रश छाटा नाग(पुर) का
 गया और चुटिया गाता बवकूप क लिए प्रयाग म उनी क रागण आई ।

इसा प्रकार एक शब्द क अर्थ— विधि क अनुमान चनन जाना । परन्तु
 रन मूत्र क लिए प्रयाग किया जाना है । जमान पर कितना अच्छी टिप्पणी है
 जा विधि क अनुमान बलगा वह मूत्र नहीं ता क्या है ।

कुछ शब्द एम है जा प्राचीन समय म उनी रूप म काम आ रन क दन क
 मामन म । शिद्रू कान म जोसे क मिसरे का रोष्य (चाँदा म बना) बना गाता
 था जा भी वर रपया रहताना है । टरा टका बनताता है । और मिकन हानन
 क र्जात का टकशाता कन थ वर आज भा टकशात बनानी है ।

एक वना गुटर शब्द है जामाना वर जापशा हा ता हुआ अणना रन गया ।
 रितना भाठा, मरा मरा का पी ट उवता रजा ।

दरान दरान हा अगुर सम्भवा म सरकारा का म्तेचू रन व अिनना
 परवता रूप दरानो साध य म मवत या मरिन हा गया जा म्भुतामाना की
 दरान तथा भागत का विषय क वाज म्भुता उत्तर पश्चिमी भागन म भा आ
 गया । महान का म्बुछ म्भुता गो का भागताय रूप है जा जा म्भु म अ-द

जावा तथा नेपाल में मिलता है। ब्रह्मा (मन्ना) में भी यह पाया जाता है। पश्चिमी भारत से इसका कोई सम्बन्ध नहीं।

रद्राण से शिव का पूजा जाता है। इसकी खपत दक्षिणी भारत में बहुत अधिक है। एकमुखी रद्राक्ष अत्यन्त दुर्लभ दाना है जो केवल नेपाल में मिलता है। दो दाने जुड़े हुए 'गौरीशंकर' कहलाते हैं जिनका विशेष धार्मिक महत्त्व है। यह भी केवल नेपाल में दाना में मिलता है।

जच्छे दाने का रद्रा कहते हैं सादे दाने का भद्राक्ष कहते हैं।

रद्राण का त्रिखिसकीय मूल्य बहुत है परन्तु हमारे वक्ष्य ग्रन्थों में चरम मुशुन, वाभट, धवनरि से लेकर नरहरि (१२वीं शताब्दी ई०) और भाग मिथ (११वीं शताब्दी ई०) तक इसका कोई वर्णन नहीं है।

भोजपत्र— भोजपत्र का वृक्ष बड़ा होता है और ठण्डे स्थान पर स्थित होता है। सस्कृत में इसे भूज कहते हैं। इसकी छाल (त्वचा) नरम होती है और आसानी से उतर जाता है। यह हिमालय पर्वत में पाया जाता है।

पुरातन काल में भोज की छाल का लिखने के काम में लाने थे। आज भी भोजपत्र पर लिखने अनेक ग्रन्थें दश आर विदेशों के ग्रन्थालयों में सुरक्षित हैं। दम्भावेष्ट आदि भी इसी पर लिखे जाते थे। इसी कारण समृद्ध में दम्भावेष्ट को भूजम् कहते हैं। इसकी छाल अपने आप ही उतरना रहती है और बत्ता में खूब सारा बिछा पड़ी जाती है। बहुत सारा काम में जाये बिना नष्ट हो जाती है।

भोजपत्र वल्कल के रूप में शरीर पर भी धारण किया जाता था। दम्भा पर की छान छाई जाती थी। त्रिछीन में गद्दे के काम जाता था। डडिया में बाधकर छाना बनाया जाता था। मोटों लकड़ी के फल पर चलने में सहायता करती थी। जहां से यक्ष जनजाति का उद्भव माना जाता है वही ये वृक्ष प्रचुर मात्रा में मिलता है। जपितु यक्ष और वृक्ष में भी ध्वनि साम्य के कारण सम्बन्ध लगता है। सबसे पुराना सद्म प्राचीन साहित्य में उर्वशी द्वारा पुनरवा को भोजपत्र पर प्रेम से दश लिखकर भोजन का भिजना है।

चन्दन— चन्दन के पेड़ केवल दक्षिण भारत में मिलते हैं। यह बहुत सुगन्धित होता है तथा शीतलता प्रदान करता है। यह द्राविड देश में अपना भक्ति के साथ हमारी पूजा का एक भाग बना है। जसा हम ऊपर लिखा चुके हैं दक्षिण में यक्ष राजा और नागा के आग पर ही द्राविड (अनवान्) मस्कृति का जन्म हुआ।

बेल— यह छोट या मध्य आकार का पेड़ है। सार भारत में पाया जाता है। इसका फल सुगन्धि दाना है मुस्वाटु होता है तथा बहुत नाम पत्रचाता है।

हिन्दू दम्भ उतरता का प्रतीक मानते हैं माय ही पवित्र तथा अत्यन्त समृद्धि दान वाता। इसमें पत्तों तीन पणका में विभक्त हात ह जा सत्त्व, रजस और

तमम क प्रतीक ह जाग्रत सुपुप्त जीर स्वप्न अरस्था दिखलात है और भूत, वतमान जीर भविष्य ताना काल दशात ह ।

वेलपत्र शिवजी की पूजा की सबसे आवश्यक सामग्री है । इनका त्रिना शिवजी की आराधना जजुरी समभी जाती है । य शकर का आहार मान गए हैं । इस प्रकार यह वृक्ष हमारा धम म नाग गरुड तथा जय जादिनासिया द्वारा सम्मिन्धन किया गया है ।

नारियल— हिन्दुओं के मागनिक अवसरा पर नारियल सबसे प्रमुख सामग्री है । विवाह के समय विदा के समय सतान के जम क समय जनि सत्र समया पर इसकी मट ली जाती है ।

यह वृक्ष भी अधिकतर त्रिभिणी जीर पूर्वी भारत म पाया जाना है । इसका जय है कि यह जाया की बजाय जय जनजातिया की हमारी मस्तिष्क को देन है ।

पीपल— पीपल का पेड़ हिन्दू धम और बौद्ध धम म बहुत पूज्य है । इसी कारण हमका वनानिक नाम पाइक्स रिलिजिओसा रखा गया ह । इसका तमिळ मलग कन्नड जीर तिगती म अलग जलग नाम पाए जाते हैं । सिंहली म हम वा कन्त हैं जा बुद्ध क बाधि वृक्ष का सक्षेप म रह गया है । संस्कृत म भी इसके बीस स अधिक नाम ह जा इसकी पवित्रता क छातक हैं । वेद जीर गाता म इस जश्वत्य कहा गया है (सरा जय है एसा लखडी जो कल तक भी नहीं टिकगी) जा इसकी लखडी क घटिया जीर हल्की शान का सगीक वणन है । यह पूर त्रिभिणी एशिया म वन्तायत स जाना है ।

पद्म पुराण म पीपल जीर वरगण की उत्पत्ति इस प्रकार दी है । एन वार शिव जार पावता क रति मुख म जग्निव न त्रिन टाला । इस पर पावती ने मव देवा का वृण वन जान का शप दिया । ब्रह्मा पीपल वन गए जीर विष्णु वट वन गए । इस प्रकार पीपल का ब्रह्मा का रूप बताया गया है जा यशो क मूला पुरुष का नाम (अमा) है ।

माहनजोदडा की माहरा पर मा पीपल पर पूजा क सात दवीन्वना खुन हुए है । मिथु सम्भना का अधिकतर विद्वान अर्थतर मानत ह ।

शाक्य मुनि शातम (मुनि का शब्द दशस्ता है कि बुद्ध का यक्ष जाति स सम्बन्ध था ब्याकि मुनि शब्द यथा क साथ जाया है जस ऋषि देवा क साथ और तपस्वा शिव क साथ) न गया क पाम पापल क पड क नीच समाधि लगाकर बाधि नान प्राप्त किया था, इसी कारण पीपल को माधारणत बोधि वक्ष का नाम सस्त्रुत जीर बौद्ध साहित्य म दिया जान लगा । कुछ विशेष पर्वों पर इसका सम्बन्ध धन की दवी लक्ष्मी स जोडा गया है जा यथा न पूज्य थी जीर आज हर भारताय की । इसकी जड के चारा जार शिनाएँ लगाई जाती थी जो यक्ष चत्य का एक रूप था ।

पीपल के चारों ओर मात्र पत्तन हुए पर लगाए जाते हैं तागा वाजत हुए । हमें तब पर सिद्ध का उप किया जाता है शायद प्राचीन पशु-धर्म का धारण हो । सत्तान प्राप्ति के लिए किया इस पर भट चलती है । मृत जामाया की तुष्टि के लिए इसकी गाथा पर पाना भरा पात्र गढ़ाया जाता है । हमें मृत तापों का निवास पद्म पुगण में किया है । मुष्ण आदि सम्मान हमें नीचे उतराए जाते हैं । हम विशान वृक्ष के नीचे मँकला यात्री विश्राम पाते थे । पूजा की ओर भी किया म यत् सिद्ध है कि यक्ष आदि आर्षेतर जनजातियाँ का यत् प्रिय वृक्ष है ।

पापल के वृक्ष के समान पूजित और सम्मानित पत्त सत्तार में उतरता ही होगा । भाग्यान् मुद्ध न एव जातक कथा में हम कथा का राजा बताया है । पद्म पुगण में पीपल का वृद्धा का रूप तथा वृक्षराज कथा है । श्रीमद्भगवद्गीता में वृष्णिजी ने इस मृत वृक्षा में श्रद्धा बताया है । एक प्राचीन कवि ने कथा है कि पीपल की जड़ में श्रद्धा है तब में विष्णु और पत्त पत्त में दखतला का बान है । पीपल की छान से निरान हुए रंग की ही वापाय रंग उहते हैं जिगमे भिगुआ के चौरर रंग जाते थे ।

भरहुत स्तूप का मूर्तियाँ अगावरातीन हैं । हमें हमें उखन है कि भक्तगण पीपल की पूजा कर रहे हैं और अक्सरएँ उा पर पूजा की भागाएँ बना रही हैं ।

घट— वरगड के पड का अमरता का प्रतीक माना गया है । और अमरता तथा अमृत का सम्बन्ध ऋषि और यक्षवल्ग में यथा से जाड़ा गया है ।¹ पर-भीरा की तुलिया में वृक्ष वृक्ष सवग धिनता और चीला पत्तियाँ का होता है । हमें बड़ा और पत्ता हुआ पत्त अपनी भारी भक्तम शाखाओं का कम समान हमें प्रसन्न प्रकृति में बनी कुपततापूर्वक किया है । जय शायी कुछ बड़ा हा जाती है ता उमर में एव जय निरन्तर भूमि की ओर हुन आती है । यत् भूमि तक पत्त कर अन्तर घुग जाती है और जड का रूप धारण कर लेती है । यह पाया का मँकला का एव स्तम्भ बन जाती है । हमें प्रकार मृत वृक्ष के चारों ओर दोन स्तम्भों का पद्म बनता बना जाता है फिर दूसरा पद्म, तीसरा पद्म । चौथे मृत जय मृत पाय, परन्तु ये मन्वारी जय वृक्ष का समान रखती हैं । हमें प्रकार यत् एव अमरता है कभी मरना नहीं । हमें जय घट नाम कितना उपयुक्त है ।

कुछ घट वृक्ष भारतीय मान्दिय में उहते प्रतिष्ठ हैं ।

(१) प्रयाग का जय वृक्ष जो गाताका का विष्णुट जात हमें मित्त का और त्रिगाती उहते पूजा की थी और निरिपता म प्रयाग म उहते का यत् मीन का । जय राम-भीता बनतान में मीन रहे थे जय वृक्ष यत् समान तात

फला से प्रदीप्त हो रहा था। महर्षि वाल्मीकि के बाद कविकुलमुक्त कालिदास और भवभूति ने भी इसी वृक्ष का वणन किया है। तुलसीदास जी ने भी मगम के अक्षय वट का उल्लेख किया है।

(२) गया का अक्षय वट भी बहुत प्रसिद्ध था। महाभारत में इसके कई उल्लेख आए हैं। कश्मीर के महानवि क्षेमाद्र (१०४०-१०६० ईसवी) ने गया के अक्षय वट का वणन किया है। वायु पुराण में आश्वि ऋतु पर इसका उल्लेख हुआ है।

(३) ब्रह्म पुराण (अध्याय १६१ ६६ ६७) में गालावरी माहात्म्य के अंतर्गत विष्णु पर्वत के उत्तर में एक अक्षय वट का उल्लेख है।

(४) वन जाज भी कलकत्ते और जलद्वार में महाविशाल वट वृक्ष खड़े हैं किंतु जात्र घाटी के एक प्रसिद्ध वट वृक्ष के सामने कुछ भी नहीं। यह पड़ ३१० मीटर की परिधि में फैला हुआ था जिसकी तीन हजार में अधिक जटाएँ थीं। इसकी छाया के नीचे बीस हजार लोग पत्थर डालकर रत्न मंत्र पढ़ते थे।

(५) इसी प्रकार का एक पेड़ भारत के कोइ बीच सिनामीटर उत्तर पूर्व की ओर नमदा में स्थित एक टापू पर खड़ा था। इसको कबीर वट कहते थे। कहा जाता था कि सत्त कबीर ने दांतुन करके उसका टुकड़ा यहाँ गाल दिया था। यही वट पेड़ बन गया। हिन्दू दमकी पूजा करते थे। जंगल लोग इस पर मुग्ध थे इसकी छाँह में आमोद प्रमोद मनाते थे। इस पर जनक कविनाएँ रची गईं। थमेशी रीडर में इसका एक सबक पढ़ाया जाता था। १८४४ में फोम ने जपान रोग में इससे बचने का विधान है 'इस अद्भुत वृक्ष के अधिकतर भाग को (नमदा की) उँधी बाँटे न बना दिया है। किंतु अब भाँजा जा कुछ बचा है वह परिधि में

पुरारा गया है। पद्म पुराण में इसे विष्णु का रूप बताया है।¹

पापल और बरगद हमारे वृक्ष पूज्य पद हैं। इनका काटना घार अपराध और पाप में गिना गया है। दुष्मंत्र जानक में उल्लेख है कि लाग यश धन पुत्र और पुत्रिणा की प्राप्ति के लिए बट वृक्ष के देवता का पूजा करत व। हृत्थीपात्र जानक में एक निघन स्त्री रताती है कि बट वृक्ष के देवता की पूजा से उस सान पुत्र प्राप्त हुए।

आवला— तुलसी और बल के ममान ही जावला पवित्र माना जाता है। एमक पत्ता से विष्णु आर विवल्गना की पूजा होती है। विष्णु की पूजा से सम्बद्ध हान पर इसका यश जनजाति में भी सम्बन्ध प्रतीत होता है। पडा के फल पूत्र, जहां वृत्तिया का यश न थना के अनुसार प्रसार किया था और हरड, बड़ेडा आवला वरक के मूत्रभूत उपाय हैं।

अशोक— अशोक का बरहमिन्दिर न शुभ और मगनकारी वृक्षा में गिनाया है। इसे राजभवना में रमणीयता के लिए लगाया जाता था। भगवान बुद्ध तुम्बिनी वन में एक अशोक वृक्ष के नीचे उत्पन्न हुए व इस कारण बौद्ध इसे पवित्र मानत हैं। दुगा पूजा के महात्सव में अशोक के पत्ता का प्रयोग होता है। मन्दिरा का सान में और मागलिन वाय के लिए मण्डप बनान में भी यश काम जाता है। इसमें फूल धार्मिक वृत्त्या में चलाए जात ह।

मारत्रिवाग्निमित्र में महात्रिवाग्निमित्र न जोष की पूजा का विशाल वाग्नि किया है। अशोक वृक्ष की पूजा यथा और गधर्वों की दन है। प्राचीन माहिय में अत्र न स्यता पर इसका 'मदनामव नाम से सरम वाग्नि है। वास्तव में, यह पूजा जगाव की नीचे उमरे जन्म अधिष्ठापित तन्दप देवता की पूजा यथा और गधर्वों का पूज्य था। वाम नाम में महातपस्वी शिव न इस भस्म कर लिया था किन्तु पावनी के रूप में जगन शिव पर फिर विजय प्राप्त की। मार नाम में बुद्ध न इस पर विजय पाई था किन्तु अत्र न यश बौद्ध भिक्षुओं का वज्रयान तत्पात्र रूप में स्वामा वन बटा। इस जोष शक्त गाधना का दुगा भुक्ता किया। वीर गाधना और पराशक्ति मंत्र पता प्रमाण पर गए। रूप का रत्नावली में मन्त्रोमव का बरा मा, मंत्र विषय है। गगा भाव के सम्बन्धी उल्लेखण के अनुसार यह मन्त्रोमव के शक्ति मन्त्राया जाता था।

प० अथाप्रमाण द्विदनी त य ।। पर लवित्र विषय विषय है उगक तुष्ट वायव्य पनी उदित है — वं मा त वं मा म तीन पत्र तरता था और मनावमा तरता त एष त्ता पर म फर उटाया था। इसकी सूत्र के प्रारम्भ के आठ नाम अशोक का शक्ति पुत्र भाग्याय धम गाहिय जोष विषय में अशोक महिगा के शान जाया था। उगी समय त्ता विषय के परिचित यथा

पत्ता न प्रतीक ही रहा था। मरिचि वाग्मरि के वाग्मरिचिचुनपुर वाग्मरिचिचुनपुर जीव भवभूति न भाग्मरी वृत्त का वपन किया है। गुणगीतग जी न भी मगम व जगम वट न उत्तर किया है।

() गगा का जगम वट ही वग्म प्रमिद्ध था। महाभारत म मगत कई उत्तरग तग है। तग्मोर न मगाग्मि धमग्म (१०००-१००० मग्मरी) न ग्या व जगम वट का वपन किया है। वाग्म पुगण म गगत स्वगा पर गगा उत्तेग्म गगा है।

(२) वग्म पुगण (जग्मय १९१ ६६ ६३) म गगाग्मरी मगाग्मय न गगाग्म विग्म पवत व उत्तर म गग जगम वट का गगग्म है।

(६) वम जाज भा वग्मरक्त थीर अग्मय म मगाग्मरक्त वग्म गग गड है, विग्म आग्म घाटी व गग प्रमिद्ध वग्म गग न सामा व कुछ भा गगी। वग्म पड १ मीटर की परिधि म पत्ता वृग्म था जिग्मरी तीन गगग म अधिग्म जग्मों था। गग्मरी छागा न गग वीन गगग नग पग्मग टाग्मग गग गगत थ।

(१) गगा प्रग्मर का गग पड भग्म व वार्ड वीम विग्मामाटर उत्तर-गूव की आग्म नग्मग म स्थिग्म गग टागू पर गग्म था। गगगरी वीर वट वग्म थ। वहा जाग था वि गगत वगीर न गगगुग वग्म उग्मगा टाग्मग यहाँ गगग किया था। वही गग पड वग गग्म। विग्म गगगी पूगग गगत थ। जग्मग तगग गग पर मुग्म थ गगगी छाग्म म आमोग्म प्रग्मग मगाग्म थ। इस पर अग्म वग्मिताग्म रची गग्म। जग्मगी रीग्मर म गगग गग सवग पग्मया जाग था। १८२५ म पग्मग न जग्मग तगग म इसग वग्म म किया है। इस गग्मगुग वृत्त वं अग्मिग्मर भाग गो (नग्मदा री) उग्म वीग न वहा किया है। विग्म अग्म भी गग कुछ वग्म है वग्म परिधि म नग्मभग छह मी दस मीटर है। इसगे नीगे धरीप तथा दूसरे पग्मो व अग्म वग्म उग्म है। गग मगाग्मका वे वडे तन गगगे तीन मी है जीर छाट तना की मग्मया तान गगार से उग्मर है। यग्म तो टूट गूग्म पड का वपन है जग्म यह साग्मगत छडा हागग तव आग्म घाटी का पड भी गग्मक सामन वीना गोगा।

विग्मगी गगगगाग्म का वट वृक्ष डग्म एग्मड म पत्ता हुआ है। वग्मलार व विग्म चुचनगुग म वग्मग पाँच मी सात पुराना है जीर लगभग तीन एग्मड म पत्ता है। वग्मरक्त म गिग्मपुर के वाग्मनिक्मल गगडन म सन् १७६२ म वीजारापण के बाद वग्मग का पड जाज ५१ मीटर से अधिग्म तन का है जीर उग्मकी लगभग १००० जग्मों हैं। यह चार एग्मड म फला है। सतारा के वग्मगद वी सन् १८८२ म आग्मिरी वग्म माग्म गग्म था तव उसगा तगा ४८३ मीटर निक्मला था।

वग्म वृग्म की मग्मता भी गग और गग्मव जग्मजाति व वारण है। प्राचीन काल म यग्म और गग्मन इन पेडा को धर वनाग्मर रहती थी। इसी कारण सग्मग्म साग्मिग्म म वग्मगद वी यग्मवास यग्म वासग' तथा यग्म तग्म वग्मग्म

पारा गया है। पद्म पुगण में इसे विष्णु का रूप बताया है।¹

पीपल और बरगद हमारे बहुत पूज्य पेड़ हैं। इनको काटना घास अपराध के पाप में गिना गया है। दुम्भघ जातक में उल्लेख है कि लोग यश, धन पुत्र और पुत्रियाँ की प्राप्ति के लिए बट वृक्ष के देवता की पूजा करते थे। हथीपान जातक में एक निघन स्त्री बताती है कि बट वृक्ष के देवता की पूजा में उस समय प्राप्त हुए।

आवला— तुलसी और वन के समान ही आवला पवित्र माना जाता है। मक पत्ता से विष्णु और शिव दोनों की पूजा होती है। विष्णु का पूजा से सम्बद्ध होने पर इसका यश जनजाति से भी सम्बद्ध प्रतीत होता है। पडा के फल, तेल, जड़ी बूटियाँ का यश न केवल अनुमान प्रसार दिया था और हरण बड़ा आवला वृक्ष के मूलभूत उपाय है।

अशोक— अशोक का बराहमिहिर ने शुभ और मंगलकारी वृक्षा में गिनाया है। इस राजभवनो में सम्मणीयता के लिए लगाया जाता था। भगवान् बुद्ध तुम्हिनी में एक अशाक वृक्ष के नीचे उत्पन्न हुए थे, इस कारण बौद्ध धर्म पवित्र मानते हैं। दुर्गा पूजा के महोत्सव में अशाक के पत्तों का प्रयोग होता है। मन्दिरों में सजान में और मागलिक कार्य के लिए मण्डप बनाने में भी यहाँ काम आता है। इसके फूल धार्मिक कृत्यों में चगाए जाते हैं।

मालविकाग्निमित्र में महाशक्ति कानिदाम ने जगोत्र की पूजा का विशद वर्णन किया है। जगोत्र वृक्ष की पूजा यश और गन्धर्वों की दान है। प्राचीन महिष्य में आव स्थला पर इसका मदनोत्सव नाम से सरस वर्णन है। वास्तव में यह पूजा जगोत्र की नहीं उसका ज दर अधिष्ठापित वादप देवता की है जो यश और गन्धर्वों का पूज्य था। काम नाम में महातपस्वी शिव ने इस भस्म कर लिया था किन्तु पावती के रूप में इसने शिव पर फिर विजय प्राप्त की। मात्र नाम से बुद्ध ने इस पर विजय पाई थी लेकिन जन्त में यह बौद्ध भिक्षुओं का वज्रयान तंत्रयान रूप में स्वामी बन बठा। शिव और शक्त साधना को इसमें भुक्ता दिया। कौन साधना और वापानिर्गमन इसका प्रमाण बन गए। रूप की 'रत्नावली' में मन्नात्सव का बड़ा मनाहर वर्णन है। राजा भाज के सम्मन्तीकष्ठाभरण के अनुमान पर यद्योदयो के दिन मनाया जाता था।

५० चक्राप्रसाद द्विवेदी : अशोक पर ललित निबन्ध लिखा है उसका कुछ वाक्य यहाँ उद्धृत हैं — यह महाशक्ति के मत में शोभ पदा करता था और मनात्सव दाना के एक दशाह पर से फट उठा था। ईश्वरी सन्त के प्रारम्भ के पास अशाक का गान्धार पुत्र भारतीय धर्म साहित्य और शिल्प में अद्भुत महिमा के साथ आया था। उसी समय शताब्दियों के परिचित यथा

और गद्यों में भारताय धर्म साधना गोपक नए रूप में बदल गिया था। पत्तिता न शायद टीक समभाया ह रि ग धन और कल्प एव ही शब्दों के भिन्न भिन्न उच्चारण हैं। कल्प देवता न यदि जशाक चुना है तो यत् (जगाव) निश्चित रूप से आर्योतर शम्भ्यता की नेत्र है। शिव से भिडने जाकर एव वार य पिट तुक थ विष्णु से उरन रहन थ जीर बुद्ध त्व से भी टवकर लेकर लौट आए थ। ललिन कल्प देवता हार मानन काल जीव नहीं थे।

कृपाण काशीन गित्य देखन के उपरांत महद्र मिह रघावा आइ सी एग भू० उप-कृतपति पजात्र कृपि विश्वविद्यालय अपनी पुस्तक गुणावन उद्यान में लिखते हैं जशाक बदम्ब जीर चम्पक पूना में श्रीडा करती कृपाण-यतिगिया को स्थान में मुझ तम वात का बोध हुआ रि हमारा पूवज शोभाकर कृपा में कितना प्रम करन थ।¹

रामायण में वरा में जशोत्र वाटिका का वणन है। उसमें तम शिवजी का प्रिय कृप माना गया है।

शिल्प में यक्ष

लोक में शिल्प कला का प्रसरण वगैरे विचार उडीसा मध्य भारत और उत्तरी भारत में प्राप्त छोटी मूर्तियाँ से पता चलता है। ये अधिातर यश और यशिया की आकृति हैं और उनकी बना दरवारी शिल्प के गुण चमत्कार शिल्प से मिल्लुन अलग अलग है। जिस पत्थर से ये बनाई गई है वह उडीसा से लेकर गुजरात तक और पटना से लेकर मथुरा तक इपरात में उपलब्ध है। वे प्राचीन तम शिल्प के नमून ह। विशाल आकृति छोड़ी हुई किसी गुरगिन सायमान के नीचे या गुले गगन के नीचे। इनमें से कुछ मूर्तियाँ निम्न हैं —

- (१) मथुरा जिले के परछम गाँव का यश मूर्ति
- (२) , , के वरोणा गाँव की यश्री मूर्ति
- (३) ,, भीम का नगरा की यक्षा मूर्ति
- (४) भरतपुर जिले के नोह गाँव की यश मूर्ति
- (५) भोपाल के निजट वसनगर की यश्री मूर्ति
- (६) पवाया (प्राचीन पदमावती) की यक्ष मूर्ति
- (७) दीदारगज, पटना की प्रसिद्ध धामरशाहिणा यश्री की मूर्ति
- (८) पटना की यक्ष मूर्ति
- (९) की दूसरी यक्ष मूर्ति
- (१०) वसनगर की तलियाँ नाम से प्रसिद्ध यश्री मूर्ति
- (११) राजघाट (प्राचीन वाराणसी) से प्राप्त त्रिमख यक्ष का मूर्ति
- (१२) सम्भवतः सोपारा (बम्बई के पास) से प्राप्त यक्ष मूर्ति

(१३) भिलसा व पाम वेतवा नदी म मिली यक्ष मूर्ति

(१४) उड़ीसा म शिशुपालगढ़ की मुदाई म मिली यक्षा की अनेक विनाल मूर्तियाँ

(१५) फगु बिहार से प्राप्त अञ्चिछत्रा यक्ष की मूर्ति

(१६) कुरुक्षेत्र के पास अमीन की यक्ष मूर्ति ।

यह डॉ वासुदेवशरण अप्रवाल की पुस्तक Indian Art म ली गई सूची है । इनका विस्तृत विवरण इस पुस्तक म पृष्ठ ११०-११८ पर लिया है ।

य मूर्तियाँ महाकाय और महाप्रमाण हैं और अत्यन्त ओज दिखाती हैं ।

य गोल बनाई गई हैं (चतुर्मुख दशन) इसलिय अपन म पूण खड़ी हैं किन्तु केवल सामने से ही देखने के लिए बनाई गई हैं ।

उनके सिर पर उष्णीष (पगड़ी) है, ऊपर बन्धा और हाथा पर उत्तरीय पडा है या सीने पर बन्धा है और नाचे घाती टखना तक पन्न हैं जिस पर कमर घानी बधी है ।

गहना म भारी कान के भुमके भारी कण्ठा, एक चौरस तिरौना नक्लेस और बाहुआ मे भुजन्द हैं ।

और इन मूर्तिया को बुछ तुन्विल लिखाया गया है ।

इनम कई मणिभद्र यक्ष की हैं ।

महाभारत म यक्ष को महाकाय, ताल समुच्छत (ताड के समान ऊचा) पवतोपम और अघृश्य (मूय और अग्नि व समान चमकदार) बताया है ।^१ और उन्हें अत्यन्त बलशाली (महाबल) कहा है । इन मूर्तिया म यह वणन चरिताथ हाता है । य मूर्तिया आग चलकर बनी बोधिसत्वा बुद्ध, तीर्थकरा और विष्णु की मूर्तिया की पूवज हैं ।

हरियाणा मे यक्षो का प्रभाव

महाकाव्यो तथा पुराणो व काल म कुरुक्षेत्र के आस पास यक्षा का अत्यन्त प्रभाव था । यह हम महाभारत वामन पुराण और माकण्डय पुराण से पता चलता है ।

कुरुक्षेत्र के ईशान (पूर्व उत्तर) कोण पर तरतुक यक्ष है । कुरुक्षेत्र स अग्नि कोण (पूर्व दक्षिण) सीमा पर धरतुक यक्ष है । कुरुक्षेत्र मे नक्षत्र कोण (पश्चिम दक्षिण) पर रामहृद है । तरतुक यक्ष से सरस्वती तट पर चलकर चालीस कोस पर वायु कोण (उत्तर पश्चिम) पर द्वितीय अरतुक यक्ष है । उत्तर सीमा म अरतुक यक्ष से कुछ ही कम चालीस कोस पर रामहृद है । दक्षिण सीमा रामहृद स उत्तर भाग म चालीस कोस स कुछ अधिक दूरी पर अरतुक यक्ष है । प्रत्येक निशा म कुरुक्षेत्र की रक्षाथ भगवान विष्णु न चन्दन यक्ष पद्मगराज

वागुक्ति, विद्याधर शङ्ख-वण, रागमराज मुग्धी, महाराज अजाबलि और महान्व नाम की अग्नि को नियुक्त किया है। यह सब अपने सबका सहित कुत्र की रक्षा करत हैं। महापारम्प आठ सहस्र धनुधर कुशभेन मत्स्यमा पापिया का स्थिर नहीं हान करत और उह इम क्षेत्र से बाहर निकाल करत हैं।^१

तरनुवारतुरयापत्तर ।

रामहृदाना व मचक्रुत्स्य थ ॥

एतत् कुशभेनसमनपञ्चक ।

पितामहस्यात्तरधन्विच्यत ॥^२

तरनुव और अरतुव व तथा रामहृद और मचक्रुव (यथा) व बीच का जो भूभाग है वही कुशभेन एव समतपञ्चक है उस ग्रह्या जी की उत्तरवेणी कहते हैं।

बाणभट्ट ने अपने हृषचरित में धानश्वर का बणन करत हुए लिखा है कि धानश्वर (कुशभेन से १/२ मील दूर धानसर्) व चारा ओर चार यथो व स्थान थ जो उस नगर व द्वारपाल थ। महाभारत वामन पुराण और बाणभट्ट व शिप नामा के यथो से आज भी कुशभेन की परिभ्रमा करत समय भेंट होनी है। उत्तर यथ ग्राम म रत्नुव यथा रमानु ग्रह्य। इसके जानय कोण म अरतुव यथा है इसको यथा तीथ कहत हैं। इसी परिभ्रमा म रामहृद ग्राम है जिसम चार यथा निवास करत है— महापिणी रमारद कपिल यथा उलूखना यथिणी। फिर कनायत ग्राम आता है जहाँ बड़े प्रसिद्ध मन्त्रि हैं यह कपिल या का स्थान है। बराह ग्राम म द्वारपाल वागुक्ति यथ है।

काल गणना

भारत म नी प्रकार की काल गणना प्रचलित है —

ब्राह्म पित्र्य दव प्राजापत्य, गौरव गौर सावन चाद्र और नाभत्र। गौरव गुरु (वृहस्पति) से बना है। इम बाहस्पत्य भी कहत हैं।

इस गणना म भी ब्राह्म और दव अलग-अलग हैं और ब्राह्म पहले आता है दव तीसरे नम्बर पर है।

ब्रह्मपि

हमार पुराणा म महपि देवपि और ब्रह्मपि का बणन आया है। इनम महपि हरेक को कहा गया है किन्तु ब्रह्मपि बहुत ऊचा पद है और इस पर केवल वसिष्ठ पहुँचे थे। विश्वामित्र ने भी इस पद को प्राप्त करने के लिए अथक प्रयास किये। अन्त म वसिष्ठ के मान लने पर उह भी ब्रह्मपि पद प्राप्त हुआ। इस पर अनेक मनोहर गाथाएँ हैं— देखिए अरुण भारतीय पुरा इतिहास कोश।

१ वामन पुराण अ० २२ श्लोक ४० से ४३

२ महाभारत वन पर्व अध्याय ८३ श्लोक २०८

ब्रह्मिण शब्द पर राज करती है। प्रह्ला को सब जान का उद्गम कहा गया है। क्या ब्रह्मिण से यही तात्पर्य है कि वह ऋषि जो सब जाना का जाता है।
 त्वयि रचल नारद मुनि को कहते हैं।

चम्पा का पूणभद्र यक्ष का चतय

जना क औपनिन्द मूर्त में चम्पा नगर का सुन्दर वन है। उसी में बनाया है कि चम्पा नगरी में पूणभद्र यक्ष का एक प्राचीन चतय था जहाँ महावीर ठहरा करते थे। यह चतय ध्वजा छत्र और घण्टियों से भण्डित था, बदिना से प्राभिन था। भूमि यहाँ की गोबर से लिपी हुई थी गणेश चन्दन क चापे लग हुए थे, चन्दन बलश रखे हुए थे, द्वार पर तोरण बधी थी, सुगन्धन मालाएँ लटकी हुई थी, रंग विरग सुगन्धित पुष्प बिखर हुए थे, सब में धूप महक रही थी तथा नट, नतक गायक, वादक आदि का यह निवास स्थान था।

यह वन एसा लगता है जसा दक्षिण के किसी मंदिर का किया जा रहा है।

इसी प्रकार जन सूत्रा में बगाली के उत्तर पूर्व में कोल्लाग के निकट अट्टिय गाम नाम के गाँव का वन है। इस वधमान भी कहते थे। यहाँ बगवती (गण्डकी) नाम की नदी बहती थी। इस गाँव में शूलपाणि यक्ष का बड़ा मंदिर था। महावीर ने अट्टियगाम में प्रथम चातुर्भास बिताया था।

द्वारका के पास यक्ष चतय

गुजरात में द्वारका के उत्तर पूर्व में रवतक पर्वत था जिसके आस-पास का प्रदेश गिरिनगर या गिरि नार पुकारा जाता था। रवतक की पहचान जूनागढ़ के पास गिरिनार से की जाती है। रवतक अनेक पक्षिया और लताओं से सुशोभित था इसमें जनक भरने थे। यान्त्रे यहाँ प्रतिवर्ष गिरिमह उत्सव मनाने के लिए इकट्ठा हाते थे। यहाँ नन्दन वन नाम का वन था जिसमें सुरप्रिय यक्ष का सुन्दर चतय था।

रथ यात्रा

उत्तर भारत में अन्तरीय क्षेत्र के दिा हर नगर में जिनियों की रथ यात्रा निकलती है। इसी प्रकार पुरी में जगन्नाथ जी की रथ-यात्रा निकलती है जो उत्तमव हरे कृष्ण आदोलो के कारण सारे विश्व में फल गया है। दक्षिण में भी सब हिंदू मंदिरों से विशाल रथों में देवमूर्तियों की निकाला जाता है।

प्राचीन काल में जिनप्रभ सूरि के अनुसार श्रावस्ती में समुद्रवशी राजा राज्य करते थे। ये बुद्ध के परम उपासक थे और बुद्ध के सम्मान में बरघोडा निकालते थे।

हैं। इन विभिन्न धर्मों में समान रथ यात्रा निकालना यक्षों के प्रभाव का एक अत्यंत प्रमाण लगता है।

दाढ़ी

जितने भी हमारे ऋषि हैं देव कुल गुरु वृहस्पति हा या मरीचि, जगद्व्य वसिष्ठ विश्वामित्र आदि इन सबके दाढ़ी थी यह हम साहित्य शिल्प और चित्रा से पता चलता है। उधर जितने मुनि हैं सब दाढ़ी मूछ विहीन हैं चाहे वे नारद मुनि हों या शाक्य मुनि या जो मुनि।

इससे यह पता चलता है कि ऋषि और मुनि अलग यनग जाति के थे। यह हम आज भी देखते हैं कि किरात प्रजाति के मुख पर बाल बहुत हल्के हों हैं। दूसरे उनकी जनजातियों में मुछौटे लगान का प्रचलन था और दाढ़ी मुछौटे लगाने में बाधक थी।

शिव और विष्णु के भी दाढ़ी नहीं है राम और कृष्ण के भी दाढ़ी नहीं है। इसका क्या काई अर्थ है ?

कुबेर और लक्ष्मी का योग

श्री शाशभूषण दास गुप्त अपनी पुस्तक श्रीराधा का ब्रह्मविकास में लिखते हैं 'श्री सूक्त' के सप्तम मंत्र में कुबेर से लक्ष्मी का योग लिखाई पडता है पुराण तत्रादि निर्दिष्ट लक्ष्मी पूजा और कुबेर पूजा में योग भी इसी प्रसंग में लक्ष्मीय

